अयोध्या का इतिहास

अयोध्या का इतिहास

साहित्यरत्न, हिन्दी सुधाकर,

राय बहादुर

श्री अवधवासी लाला सीताराम, बी॰ ए॰,

संकलित ।

प्रयाग

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, यू॰ पी॰

१९३२

वक्तव्य

सैकड़ों बरस से ऐसे परदेशियों के अधीन रहकर जिनको न हमारे साथ कोई सहानुभूति थी न हमारी प्राचीन सभ्यता को जानने की परवाह करते थे हम लोग अपने को भूल गये, और हमारे पुराने नगर जिनके आगे रोम, कार्थेज, और बग़दाद कल की बस्तियाँ हैं अब तीर्थ बन गये और वहाँ यात्री इसी विचार से यात्रा करने जाते हैं कि संसार के बन्धन से उनकी मुक्ति हो जाय। हमारे पास अब न धन बचा है न वैभव। केवल इतने ही पर सन्तोष करते हैं कि जिस समय हम लोग सभ्यता की पराकाष्ठा को पहुँच गये थे, उस समय आजकल की बढ़ी-चढ़ी जातियों का या तो अस्तित्व ही न था या पशुप्राय थीं। हमारे पास इस बात का प्रमाण है कि हमारे देशवासियों ने संसार में सभ्यता का सूत्रपात किया था। विचारने को बात है कि हमारा देश क्या है? और जिस देश का नाम हिन्दुस्थान है वह इस प्रायद्वीप का कौन सा भाग है? साठ वर्ष हुए हम लखनऊ में अमीनाबाद में कुछ मित्रों के साथ टहल रहे थे। एक पंजाबी लड़का पहाड़ी छड़ियाँ बेच रहा था। हमने उससे दाम पूछे तो उसने कुछ ऐसे दाम बताये जो हमको अधिक प्रतीत हुए। हमने कहा कुछ कम करोगे? वह बोल उठा कि झूठ बोलना हिन्दुस्थान के लोगों का काम है। यह कलंक बुरा तो लगा परन्तु अवसर न था कि हम उसको दंड देते। परन्तु हिन्दुस्थान शब्द ने हमको चक्कर में डाल दिया। हमारे बंगाली महाशय भी हमको हिन्दुस्थानी कहते हैं। विन्ध्याचल के दक्षिण की तो कोई बात

ही नहीं। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, हमारी समझ में यह बात आगई कि मुख्य हिन्दुस्थान (Hindustan Proper) हिमालय के दक्षिण विन्ध्याचल के उत्तर दिल्ली और दिल्ली के पूर्व और पटने के पश्चिम के भूखंड को कहते हैं और किसी प्रान्त को हमसे सहानुभूति न रही। हिन्दुस्थान के भाग्य का निर्णय इस हिन्दुस्थान के पश्चिम पानीपत के मैदान में हुआ। पंजाबी अपने को कितना ही वीर कह लें, आक्रमणकारियों को न रोक सके।

इस देश का प्राचीन नाम उत्तरकोशला है, जिसकी राजधानी अयोध्या थी। यों तो चन्द्रवंश का प्रादुर्भाव प्रयाग के दक्षिण प्रतिष्ठानपुर में हुआ ; परन्तु जैसे मनु पृथ्वी के प्रथम राजा (महीभृतामाद्यः) कहे जाते हैं वैसे ही उत्तरकोशला की राजधानी अयोध्या भी सबसे पहिली पुरी है। इसी उत्तरकोशला में विष्णु भगवान के मुख्य अवतार राम, कृष्ण और बुद्ध अयोध्या, मथुरा और कपिलवस्तु में हुए। तीर्थराज प्रयाग, मुक्तिदायिनी विश्वनाथपुरी काशी इसी कोशला में हैं। वेदों में जिन पांचालों का नाम बार बार आया है वे इसी कोशला के रहनेवाले थे। इसी कोशला में अयोध्या के राजा भगीरथ कठिन परिश्रम से गंगा को ले आये। यहीं से निकलकर क्षत्रियों ने तिब्बत, श्याम और जापान में साम्राज्य स्थापित किये। जैन लोग २४ तीर्थंकर मानते हैं। उनमें से २२ इक्ष्वाकुवंशी थे। यों तो ५ ही तीर्थंकरों की जन्मभूमि अयोध्या में बताई जाती है, परन्तु जैनियों की धारणा यह है कि सारे तीर्थंकरों को अयोध्या ही में जन्म लेना चाहिये। विशेष बातें इस ग्रन्थ के पढ़ने से विदित होंगी। ऐसे प्राचीन नगर का इतिहास जानने की किस सहृदय भारतवासी को अभिलाषा न होगी।

चार बरस हुये हमने फैजाबाद के लोकप्रिय डिपुटी कमिश्नर श्रीमान् आर० सी० होबार्ट महोदय की आज्ञा से अयोध्या का एक छोटा सा

इतिहास अंग्रेज़ी में लिखा। यह प्रयाग विश्वविद्यालय के वाइस चैन्सलर श्रीमान् महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल-एल० डी० की अनुमति से Allahabad University Studies Vol. IV में छपा। सर जार्ज ग्रियर्सन, सर रिचर्ड बर्न आदि अंग्रेजी के बड़े बड़े विद्वानों ने इसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। उस छोटी सी पुस्तक का अनेक मित्रों के आग्रह से हिन्दी में अनुवाद किया गया। परन्तु वह ग्रन्थ छोटा था। इससे जब हिन्दुस्तानी एकेडेमी की ओर से इसके प्रकाशन का प्रस्ताव किया गया तो श्रीमान सर शाह मुहम्मद सुलेमान महोदय की अनुमति यह हुई कि ग्रन्थ बढ़ाकर २५० पृष्ठ का कर दिया जाय।

अयोध्या के इतिहास की सामग्री प्रचुर है, परन्तु बड़े खेद की बात है कि यद्यपि महात्मा बुद्धजी यहाँ १६ वर्ष तक रहे और यहीं उनके सारे सिद्धान्त परिणत हुये तो भी उनके यहाँ निवास का पूरा विवरण नहीं मिल सका। कदाचित् लङ्का में सिंहली भाषा में कुछ सामग्री हो। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत, गजेटियर आदि के अतिरिक्त रायल एशियाटिक सोसायटी के जर्नल में प्रसिद्ध विद्वान् पार्जिटर के लेखों से इस ग्रन्थ के सम्पादन में विशेषरूप से सहायता मिली है। अयोध्या में जैनधर्म का वर्णन कलकत्ते के सुप्रसिद्ध विद्वान बाबू पूरनचन्द नाहार और लखनऊ के ऐडवोकेट पं० अजित प्रसाद जी के भेजे लेखों के आधार पर है। गोंडा जिले के तीर्थों का वर्णन हमारे स्वर्गवासी मित्र बाबू रामरतन लाल का संकलित किया हुआ है। अयोध्या के शाकद्वीपी राजाओं के इतिहास की सामग्री स्वर्गवासी महाराजा प्रतापनारायण सिंह अयोध्यानरेश से प्राप्त हुई थी। बड़े शोक की बात है कि महाराजा साहब ऐसे गुणज्ञ रईस अब संसार में नहीं हैं, नहीं तो इस ग्रन्थ का रूप भी कुछ और होता। अस्तु, जो कुछ मिला वह पाठकों की भेंट

किया जाता है। इसमें छापे की अशुद्धियाँ बहुत हैं। पढ़ने से पहले उन्हें शुद्ध कर लेना चाहिये।

अयोध्या में इतिहास की सामग्री दबी पड़ी है जो पुरातत्त्वविज्ञान की खोज से निकलेगी परन्तु जो कुछ इस ग्रन्थ में लिखा गया है उससे यदि इतिहास के मर्मज्ञों का ध्यान इस पुरानी उजड़ी नगरी की ओर आकर्षित हो तो मैं अपना परिश्रम सफल समझूँगा।

धरि हिय सिय रघुबीर पद, विरच्यो मति अनुरूप।
अवधपुरी-इतिहास यह, अवधनिवासी भूप॥
निज पुरुषन को सुजस तहँ तेज प्रताप विचारि।
पढ़ैं मुदित मन सुजन तेहि मेरे दोष बिसारि॥

प्रयाग
आश्विन कृष्ण ११
सं० १९८८

श्री अवधवासी भूप उपनाम सीताराम।

सूची-पत्र

उपसंहार | पृष्ठ

अयोध्या स्वर्गद्वार

अयोध्या का इतिहास

———:o:———

पहिला अध्याय।

अयोध्या की महिमा।

अयोध्या जिसे अवध और साकेत भी कहते हैं अत्यन्त प्राचीन नगर है। यह पहिले उत्तरकोशल की राजधानी थी जिसमें "सुख समृद्धि के साथ हिन्दू लोग जिस वस्तु की आकांक्षा करते या जिसका आदर सम्मान करते हैं वह सब प्राप्त हो चुका था जैसा कि अब मिलना असम्भव है और जो उस तेजधारी राजवंश का निवास-स्थान था जो सूर्यदेव से उत्पन्न हुआ और जिसमें ६० निर्दोष शासकों के पीछे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र का अवतार हुआ। इस वीर को ऐतिहासिक समालोचना पीछे से मनुष्य की कल्पना का सर्वोत्तम निसर्ग सिद्ध करे या अर्द्धऐतिहासिक स्थान दे, इस पर विचार करना व्यर्थ है। इतिहास का उस प्रभाव से सम्बन्ध है जो इनके चरित्र का इस बड़ी आर्यजाति के सामाजिक और धार्मिक विश्वास पर है और इतिहास यह भी देखता है कि इनकी जन्म-भूमि की यात्रा को बड़ी श्रद्धा और भक्ति से यात्रियों की ऐसी भीड़ आती है, जैसे किसी दूसरे तीर्थ में नहीं।"*

अयोध्या का नाम सात तीर्थों में सब से पहले आया है:—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

---

* Oudh Gazetteer. Introduction, page xxxi.

कहनेवाले कह सकते हैं कि छन्द में अयोध्या का नाम पहिले आना उसके प्राधान्य का प्रमाण नहीं। परन्तु यह ठीक नहीं; एक प्रसिद्ध श्लोक और है जिससे प्रकट है कि अयोध्या तीर्थ-रूपी विष्णु का मस्तक है:—

विष्णोः पादमवन्तिकां गुणवतीं मध्ये च काञ्चीपुरीन्
नाभिं द्वारवतीन्तथा च हृदये मायापुरीं पुण्यदाम्।
ग्रीवामूलमुदाहरन्ति मथुरां नासाञ्च वाराणसीम्
एतद्ब्रह्मविदो वदन्ति मुनयोऽयोध्यापुरीं मस्तकम्॥

शेष छः तीर्थों में से अनेक की बड़ाई इसी कोशल-राजधानी के सम्बन्ध से हुई है। श्रीकृष्ण जी के जन्म से बहुत पहिले मथुरा को शत्रुघ्न ने बसाया था, जिनको श्रीरामचन्द्र ने यमुनातट पर बसे हुये तपस्वियों के सतानेवाले लवण को मारने के लिये भेजा था। माया या मायापुरी हरिद्वार का नामान्तर है जहाँ अयोध्या के राजा भगीरथ की लाई हुई गङ्गा पहाड़ों से निकल कर मैदान में आती है और काशी अयोध्या की श्मशान-भूमि है।

इन दिनों भी अयोध्या जैन-धर्मावलम्बियों का ऐसाही तीर्थ है जैसा हिन्दुओं का। अध्याय ८ में दिखाया जायगा कि २४ तीर्थंकरों में से २२ इक्ष्वाकुवंशी थे और उनमें से सबसे पहिले तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभ-देव जी) का और चार और तीर्थंकरों का जन्म यहीं हुआ था।

"बौद्धमत की तो कोशला जन्मभूमि ही माननी चाहिये। शाक्य-मुनि की जन्मभूमि कपिलवस्तु और निर्वाणभूमि कुशिनगर* दोनों कोशला में थे। अयोध्या में उन्होंने अपने धर्म की शिक्षा दी और वे सिद्धान्त बनाये जिनसे जगत्प्रसिद्ध हुये और कुशिनगर में उन्हें वह पद प्राप्त हुआ जिसकी बौद्धमतवाले आकांक्षा करते और जिसे निर्वाण कहते हैं।"†

---

* आजकल की कसिया (गोरखपुर ज़िले में)।

† Oudh Gazetteer, Vol. I. page 4

अयोध्या
उत्तर
पूरब
पश्चिम
दक्षिण
सरयू नदी
कटरा
कनक भवन
हनुमान गढ़ी
दतुन कुंड
सुर्वे मक्का
रेलवे लेन
गोलाघाट
लक्ष्मण घाट
नया घाट
जानकी घाट
राम घाट
सरयू नदी

सूर्यवंश के अस्त होने पर ८० वर्ष तक अयोध्या शक्तिशाली गुप्तों की राजधानी रही जिसका वर्णन अध्याय १० में है।

सोलङ्की राजाओं के विषय में कुछ ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे विदित होता है कि यह लोग अयोध्या ही से पहिले दक्षिण गये और वहाँ सोलङ्की* (चालुक्य) राज्य स्थापित किया। वहाँ से गुजरात आये जहाँ अन्हलवाड़े को राजधानी बनाकर बहुत दिनों तक शासन करते रहे। परन्तु यह अभी तक निश्चित नहीं हुआ कि सोलङ्की जो अपने को चन्द्र-वंशी मानते हैं अयोध्या के सिंहासन पर कब बैठे थे।

राजा साहेब सतारा के पास की एक वंशावली से विदित होता है कि चान्द्रसेनीय कायस्थ सरयूतट पर अयोध्या (अजोढा) और मणिपूर (आजकल का मनकापूर ?) से गये थे।

अध्याय ९ में दिखाया जायगा कि पटने से दिल्ली तक एक भाषा (common language) का आविर्भाव कोशला की राजधानी से हुआ।

प्रसिद्ध इतिहास-मर्मज्ञ सी० वाई० वैद्य जी ने 'हिन्दू भारत के अन्त' में लिखा है कि अत्यन्त प्राचीन काल में अयोध्या में हिन्दी साहित्य की उत्पत्ति हुई। †

हमारे हिन्दू पाठकों को यह सुन कर आश्चर्य होगा कि मुसलमान भी अयोध्या को अपना बड़ा तीर्थ मानते हैं। मदीनतुल-औलिया नाम के उर्दू ग्रन्थ में जो थोड़े दिन हुये अयोध्या से प्रकाशित हुआ है यह लिखा है कि अयोध्या में आदम के समय से आजतक अनेक औलिया और पीर हुये हैं।

---

* रीवा के बघेल भी सोलङ्कियों की एक शाखा हैं।

† पृष्ठ ७१२।

मुसलमान नवाब वज़ीरों के राज में अयोध्या ही का एक अंश फ़ैज़ाबाद के नाम से तीन नवाब वज़ीरों की राजधानी रहा। शुजाउद्दौला के शासन में इसकी शोभा देख कर यूरोपीय यात्री चकित होते थे। *

आजकल इसमें राष्ट्र-सम्बन्धी कोई बड़ाई नहीं रही। अब यह मन्दिरों का नगर है; परन्तु अब भी यह रामानन्दी सम्प्रदाय का केन्द्र है जिसकी शिक्षा गोस्वामी तुलसीदास के रामायण में झलक रही है। यह ग्रन्थ अयोध्या ही में सं० १६३१ में प्रकाशित किया गया था। रामानन्दी सम्प्रदाय ने सारे उत्तर भारत को बहुत थोड़ा अदल-बदल कर धर्म-नीति और समाज-नीति दोनों सिखाई हैं।

---

* Oudh Gazetteer, Vol. I, page 406.

दूसरा अध्याय ।

उत्तरकोशल और अयोध्या की स्थिति ।

किसी जगह का इतिहास जानने से पहिले उसकी स्थिति जानना परमावश्यक है। इस लिये पुराने कोशलदेश और अयोध्या—पुरानी और नई—दोनों का कुछ वर्णन लिखते हैं।

अयोध्या उत्तरकोशल की राजधानी थी। उत्तरकोशल के नाम ही से एक दूसरे कोशल का ध्यान आता है। पाणिनि के एक सूत्र में कोसल* शब्द आया है।

वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ् । ४ । १ ॥ १७१ ॥

बंबई के सुप्रसिद्ध विद्वान डाक्टर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर ने अपनी History of the Deccan (दक्षिण के प्राचीन इतिहास) में लिखा है कि विन्ध्य पर्वत के पास के देश का नाम कोशल था। वायु-पुराण में लिखा है कि रामचन्द्र जी के पुत्र कुश कोशल देश में विन्ध्य पर्वत पर कुशस्थली या कुशावती नाम की राजधानी में राज करते थे। यही कालिदास की भी कुशावती प्रतीत होती है क्योंकि कुश को अयोध्या जाते समय विन्ध्यगिरि को पार करना पड़ता था और गङ्गा को भी:—

व्यलंघयद् विन्ध्यमुपायनानि पश्यन्पुलिन्दैरुपपादितानि ।
तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात् प्रतीपगामुत्तरतोऽथगङ्गाम् ।

—रघुवंश १६ सर्ग

रत्नावली में लिखा है कि कोशल देश के राजा विन्ध्यगिरि से घिरे हुये थे।

विन्ध्यदुर्गावस्थितस्य कोशलनृपतेः [अंक ५]

---

* कोशल और कोसल दोनों रूप शुद्ध हैं।

† Bombay Gazetteer, Vol. I page 138.

ह्वानच्वांग भी कलिङ्ग से कोशल देश को गया था। इससे स्पष्ट है कि न केवल एक कोशल देश दक्षिण में भी था।परन्तु उसी कोशल देश का राजा पुलिकेशिन् प्रथम की शरण में।भी गया था। उस देश का नाम केवल 'कोशल' लिखा है।

उत्तरकोशल की भी वही दशा है। कालिदास ने उसे कई बार उत्तर-कोशल कहा है जैसे रघुवंश के पाँचवें सर्ग में।'

पितुरनन्तरमुत्तरकोशलान्।

रघुवंश के दसवें सर्ग में भी:—

श्लाघ्यं दधत्युत्तरकोशलेन्द्राः।

आनन्दरामायण और तुलसीदास को दूसरे कोशल का पता ही नहीं। भागवत पुराण में उसे कोशला और उत्तर कोशला दोनों लिखा है। पंचम स्कन्ध के १९ वें अध्याय के श्लोक ८ में तथा नवम स्कन्ध के दसवें अध्याय के श्लोक ४२ में इस देश को उत्तरकोशला कहा है।

भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं।
य उत्तराननयत् कोशलान्दिवम्॥
धुन्वंत उत्तरासंगां पतिं वीक्ष्य चिरागतम्।
उत्तराः कोसला माल्यैः किरंतो ननृतुःमुदा॥

नवम स्कन्ध के दसवें अध्याय के बीसवें श्लोक में राम को कोशलेश्वर कहा है।

इस देश की मिथिला के सदृश अतीत काल से कोई सीमा निश्चित है। साधारणतः यह माना जाता है कि इसका प्रसार घाघरा से गङ्गा तक था। कुछ विद्वानों का मत है कि घाघरा नदी के उत्तर भाग को उत्तरकोशल कहते थे यद्यपि साकेत का फैलाव गङ्गा तक था। राम और उनके पीछे अयोध्या के कुछ गुप्तवंशीय राजाओं ने बड़े बड़े साम्राज्य पर राज किया है। राजा दिलीप के संबंध में भी कहा जाता है कि उसने पृथ्वी पर एक नगरी के समान राज किया था जिसके चारों ओर समुद्र

को खांई और उत्तुङ्ग पर्वत जिसके क़िले की दीवारें थीं। श्रावस्ती कोशल देश की राजधानी थी। प्रतापगढ़ ज़िले के तुशारनविहार भी जिसे कर्नल वोस्ट ने साकेत कहा है कोशल देश में था।

वाल्मीकि ने का रामायण के आरम्भ में कोशल इस प्रकार वर्णन किया है।

कोसलो नाम विदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान्॥

अर्थात् कोशल सरयू के किनारे एक धन-धान्यवान देश था, "निविष्ट" शब्द से ज्ञात होता है कि यह देश सरयू के दोनों किनारों पर था।

कनिंघम का कहना है कि कोशल का प्राचीन देश सरयू अथवा घाघरा द्वारा दो प्रान्तों में विभक्त था; उत्तरीय भाग को उत्तर कोशल और दक्षिण भाग को बनौध कहते थे। फिर इन दोनों के और दो भाग थे। बनौध में पच्छिम राठ और पूरब राठ थे और उत्तरकोशल में राप्ती के दक्षिण में गौड़ और राप्ती या जिसे अवध में रावती कहते हैं उसके उत्तर को कोशल कहते थे। इनमें से कुछ के नाम पुराणों में भी पाये जाते हैं जैसे वायुपुराण में लिखा है कि रामचन्द्र जी के पुत्र लव कोशल में राज करते थे; और मत्स्य, लिङ्ग और कूर्म पुराणों में लिखा है कि श्रावस्ती गौड़ में थी। ये परस्परविरुद्ध कथन उसी क्षण समुचित रीति से समझ में आजाते हैं जब हम जानते हैं कि गौड़ उत्तरकोशल का एक भाग था और श्रावस्ती के खंडहर भी गौड़ में (जिसे अब गोंडा कहते हैं,) मिले हैं। इस प्रकार अयोध्या घाघरा के दक्षिण में बनौध या अवध की राजधानी थी और श्रावस्ती घाघरा के उत्तर में उत्तरकोशल की राजधानी थी।

ह्वानच्वांग ने इस देश की परिधि ४००० ली (६६७ मील) बतलाई है। कनिंघम के कथन की हम आगे चलकर आलोचना करेंगे।

* Cunningham's *Ancient Geography of India*, page 408.

अभी हमारे लिये इतना ही कहना काफ़ी है कि कोशलराज्य की उत्तरीय सीमा हिमालय तक थी।

जब हम वा० रामायण अयोध्या-काण्ड को देखते हैं तब हम अयोध्या के निर्माता मनु की इक्ष्वाकु को बताई हुई दक्षिणी सीमा का पता पाते हैं। स्यन्दिका जिसे आज-कल सई कहते हैं इस राज्य की दक्षिणी सीमा थी। यह नदी प्रतापगढ़ में बहती है और इलाहाबाद, फ़ैज़ाबाद रेलवे लाइन को फ़ैज़ाबाद से ६१ वें मील पर काटती है। इस प्रकार राज्य की चौड़ाई ८ योजन हो जाती है। एक योजन कुछ कम ८ मील का होता है। हमें कोई भी ऐसा प्रमाण नहीं मिला जिससे हम कनिंघम के कथन का अनुमोदन कर सकें कि घाघरा के उत्तर का देश कोशल कहलाता था। सई और गङ्गा के बीच का प्रान्त बाद में मिलाया गया होगा क्योंकि वाल्मीकि ने साफ़-साफ़ कहा है कि सई और गङ्गा के बीच के ग्राम कुछ अन्य राजाओं और कुछ निषादराज के राज्य में थे। गुह निषादराज एक स्वाधीन राजा था यद्यपि उसने कहा है कि:

नहि रामात् प्रियतरो ममास्ति भुवि कश्चनः।

"रामचन्द्र से बढ़कर मेरा और कोई प्रिय नहीं है"

पूर्व और पश्चिम की सीमा निर्धारण करना उतना सुगम नहीं है। मालूम होता है कि मिथिला और कोशल के बीच में और कोई राज्य नहीं था। बौद्धधर्म के दीघनिकाय और सुमगंलविलासिनी आदि ग्रन्थों के अनुसार १९०६ के* रायल एशियाटिक सुसाइटी के जर्नल में शाक्यों की उत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

("ओकाकु इक्ष्वाकु) से तीसरे नृप के बहिष्कृत पुत्रों ने जाकर हिमालय पर्वत पर कपिलवसु (कपिलवस्तु) नाम नगरी बसाई। कपिल ऋषि ने जो बुद्धदेव के पूर्वावतार माने जाते हैं उन्हें यह भूमि (वसु वस्तु) बताई थी। कपिल मुनि इन्हें हिमालय की तराई में सकसन्ध

* *J. R. A. S.*, 1906.

कोशल-राज्य।
सीमा बूंदी-दार रेखा में दिखाई गई है।
पैमाना
मील
पश्चिम
पूर्व
दक्षिण
हिमालय पर्वत
मिथिला
विशाला
पाञ्चाल
महाकान्तार
मलद
कारूष
गंगा नदी
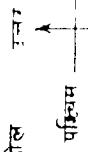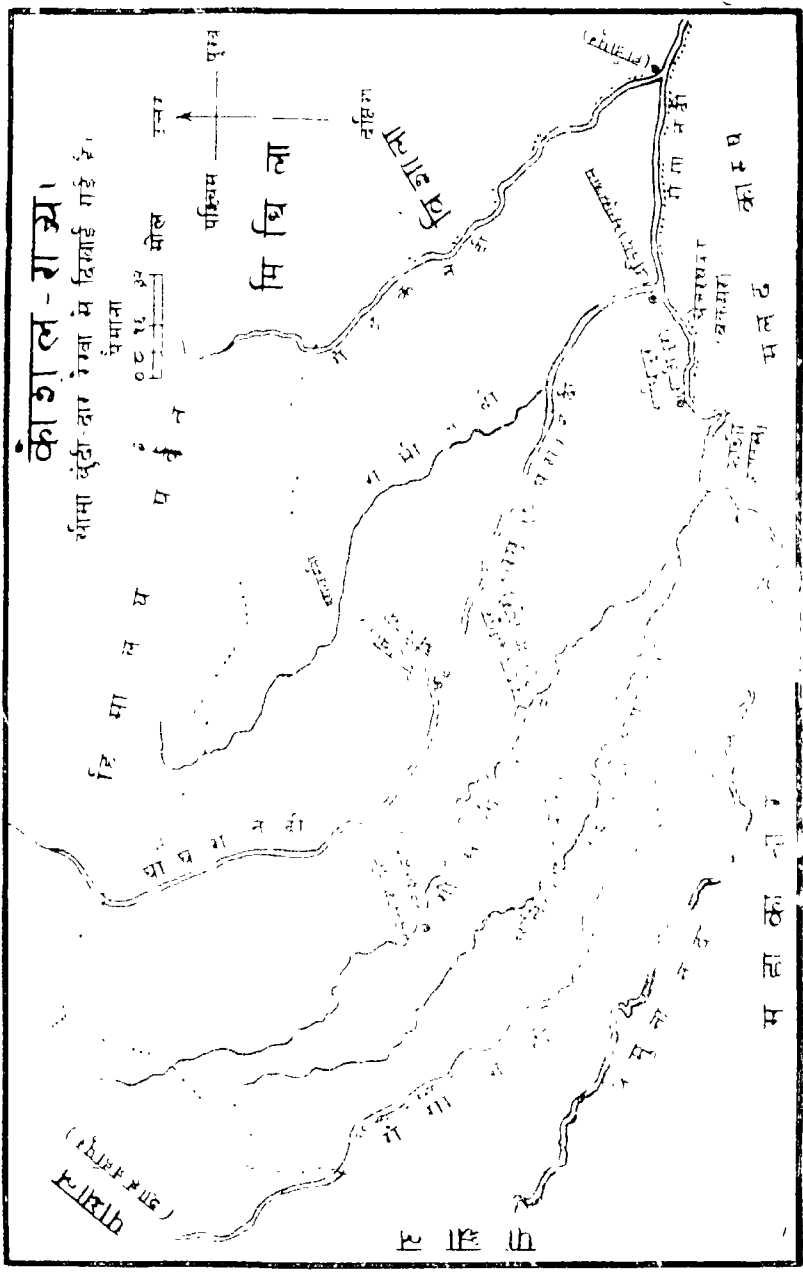
या सकवनसन्ध में सागोन के जगंल में एक पर्णकुटी में दिखाई दिये थे। नगरी बसाकर उन्होंने कपिल की पर्णकुटी के स्थान पर एक महल भी बनाया और कपिल ऋषि के लिये उसी के पास एक दूसरे स्थान पर कुटी बना दी"।

ये इक्ष्वाकुओं के तीसरे राजा विकुक्षि हो सकते हैं। इससे प्रकट है कि सारे उत्तरीय भारतवर्ष में इक्ष्वाकु के वंशज ही जहाँ-तहाँ राजा थे, एक कोशल में, दूसरे कपिलवस्तु में, तीसरे विशाला में और चौथे मिथिला में। कपिलवस्तु का वर्णन रामायण में नहीं है। संभव है कि वह उस समय रहा ही न हो; यदि रहा भी हो तो कहीं हिमालय के कोने में। यदि वह और कहीं इधर उधर रहा होता तो वाल्मीकि उसका वर्णन अवश्य करते। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कोशल देश की पूर्वीय सीमा गण्डक नदी थी और देश का पूर्वीय भाग सरयू के किनारे-किनारे सरयू और गङ्गा के संगम तक विस्तृत था। यहाँ पर यह कह देना उचित जान पड़ता है कि विश्वामित्र को बक्सर में सिद्धाश्रम को जाते समय रास्ते में कोई और राज्य नहीं मिला था। बृहत्संहिता में मध्यप्रदेश के राज्यों में केवल पांचाल, कोशल, विदेह और मगध ही का उल्लेख है। विशाला मिथिला के दक्षिण-पश्चिम कोने में थी। इस से हम कह सकते हैं कि उत्तर कोशल देश की सीमा सई के किनारे-किनारे गोमती के संगम तक थी। बीच में राजा गाधि का राज्य था। यह राज्य यद्यपि कन्नौज का राज्य कहलाता था, तथापि इसके आधीन गाजी-पुर और बक्सर नगरों के आस-पास का देश भी था। इस सीमा की रेखा फिर एक विशाल वन में से होती हुई बलिया के समीप सरयू और गङ्गा के संगम तक जाती है और फिर वहाँ से मुड़ कर उत्तर की ओर गण्डक से मिलती है।

कोशल देश की पश्चिमी सीमा पांचाल देश से मिली हुई थी जो बाद में दो भागों में विभक्त हो गया; उत्तरीय प्रान्त की राजधानी

अहिछत्र थी और दक्षिणी भाग में कम्पिला मुख्य नगर था। कभी-कभी यह विचार भी होता है कि कदाचित् रामगङ्गा ही कोशला की पश्चिमी सीमा रही हो क्योंकि रामगङ्गा के नाम ही से उसका रामचन्द्र जी के साथ सम्बन्ध होने का अनुमान होता है। परन्तु हम अवध की ही आजकल की पश्चिमी सीमा से कोशला की भी पश्चिमी सीमा मिला कर संतुष्ट हो जाँयगे।

कनिंघम का कहना है कि उत्तरकोशल घाघरा के उत्तरीय प्रदेश को कहते थे। अवध गजेटियर ने उसे राप्ती के ही उत्तर तट तक सीमाबद्ध कर दिया है। किन्तु जब हमें स्पष्ट मालूम है कि उत्तरकोशल का राज्य श्रावस्ती से तुशारनविहार तक विस्तृत था और विन्ध्यगिरि में एक दक्षिण कोशल भी था तो यही विचार होता है कि उत्तरकोशल घाघरा नदी के दोनों किनारों पर था और घाघरा के उत्तर का प्रदेश गौड़ कहलाता था। परगना रामगढ़ गौरा में अभी तक गोंडा बस्ती और गोरखपुर के जिले थे। अयोध्या के उत्कर्ष के बाद प्रतीत होता है कि इस भाग का महत्व बढ़ गया था। कहा जाता है कि लव ने अपनी राजधानी श्रावस्ती और उनके ज्येष्ठ भ्राता कुश ने अपनी राजधानी कुश-भवनपुर अयोध्या से दक्षिण में २० कोस दूर गोमती के किनारे बनाई थी।

उत्तरकोशल की सीमा निश्चित हो गई। अब हम इसकी मुख्य नदी घाघरा (सरयू) का पहिले वर्णन करके इस देश का दिग्दर्शन करा के राजधानी का वर्णन करेंगे।

भक्तलोग सरयू को मानसनन्दिनी और वसिष्ठ-कन्या कहते हैं। मानस-नन्दिनी से यह अभिप्राय है कि यह नदी मानस सरोवर से निकली है और वसिष्ठ-नन्दिनी का अर्थ यह है कि महर्षि वसिष्ठ जी की तपस्या से इसका प्रादुर्भाव हुआ। वसिष्ठ सूर्य-वंश के गुरु थे इस कारण वसिष्ठ-कन्या की महिमा भगीरथ-कन्या (गङ्गा) से बढ़ कर है।

घाघरा की उत्पत्ति घुरघुर शब्द से बतायी जाती है।

"श्रीनारायण जगतपति जगहित जगत अधार।
धारे वपु बाराह जब आदि पुरुष अवतार॥
शब्द घुरघुरा तब भयो घाघर सरित प्रवाह।"

परन्तु हमको सरयू से प्रयोजन है जिसका नाम ऋग्वेद में भी आया है।

अवध प्रान्त में यह नदी नैपाल से निकल कर बहराइच में आती है। अल्मोड़े में इसे सरयू ही कहते हैं। बहराइच में तीस कोस बहकर कौड़ियाला से मिल जाती है परन्तु इस बात का प्रमाण मिला है कि सरयू पहिले कौड़ियाला से भिन्न धारा में बहती हुई घाघरा में गिरती थी। कहते हैं कि एक अंगरेज ने जो लट्ठों का व्यापार करता था सरयू की धारा टेढ़ी मेढ़ी देखकर उसे कौड़ियाला में मिला दिया। पुरानी धारा अब भी छोटी सरयू के नाम से प्रसिद्ध है और बहराइच से एक मील हटकर बहती है और बहराइच से निकल कर गोंडा जिले में घाघरा में गिरती है। इस संगम का वर्णन आगे किया जायगा।

सरयू घाघरा के संगम के बाद यह नदी घाघरा ही के नाम से प्रसिद्ध है; केवल अयोध्या में इसे सरयू कहते हैं।

अब हम इसी नदी के दोनों तटों पर उत्तरकोशल के आधुनिक खंडों में जो प्रसिद्ध स्थान है उनका वर्णन करेंगे।

लखनऊ—यह आजकल के अवध प्रान्त का सब से बड़ा नगर है और गोमती के तट पर बसा है। लखनऊ लक्ष्मणावती या लक्ष्मणपुर का अपभ्रंश है और प्रसिद्ध है कि इसे लक्ष्मण जी ने बसाया था। मेडिकल कालेज के पास अब भी एक स्थान लछमन-टीला कहलाता है।

बाराबंकी—इस जिले में कोटवा लिखने योग्य स्थान है, यद्यपि उसका रामायण या अयोध्या के इतिहास से संबंध नहीं है। यहाँ भगवद्-भक्त जगजीवनदास हुये थे जिनसे जगजीवनदासी पंथ चला।

बहराइच—यह पहिले गन्धर्ववन का भाग था और कुछ लोगों का विश्वास है कि बहराइच ब्रह्मयज्ञ का अपभ्रंश है। किसी किसी का यह भी कथन है कि यहाँ पहिले "भर" बसते थे। यह भी सुना गया है कि बहराइच "बहरे आसाइश"* का बिगड़ा रूप है। यह पहिले सूर्य-पूजन का केन्द्र था और यहीं बालार्क का मन्दिर और कुण्ड था और इसी जगह पर सैयद सालार ग़ाज़ी मसऊद (बाले मियाँ) पीछे से गाड़े गये थे।

कहते हैं कि बाले मियाँ की क़ब्र के नीचे अब भी बालार्क कुण्ड है जिसका जल मोरियों द्वारा निकलता है और उससे कोढ़ी और अन्धे अच्छे हो जाते हैं।

इस ज़िले में एक और पवित्र स्थान है जिसको सीताजोहार कहते हैं।

गोंडा—सम्भव है कि यह गौड़ ब्राह्मणों का आदि स्थान रहा हो। ब्राह्मणों की दो श्रेणियां हैं, (१) पञ्च गौड़ (२) पञ्च द्राविड़।

पञ्चगौड़ में कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल, उत्कल और सारस्वत ब्राह्मण हैं।

सारस्वताः कान्यकुब्जाः गौड़मैथिलिकोत्कलाः।
पञ्च गौड़ा इति ख्याताः विन्ध्यस्योत्तरवासिनः॥

यह ध्यान में रखने की बात है कि केवल एक ही श्रेणी के ब्राह्मण इस ज़िले में अथवा परगना रामगढ़ गौड़ा में पाये जाते हैं। इन्हें सरयूपारीण कहते हैं जो कान्यकुब्जों की एक स्वतंत्र शाखा है और कहा जाता है कि इन्हें भगवान रामचन्द्र जी इस देश में लाये थे। गौड़ ब्राह्मणों, गौड़ राजपूतों एवं गौड़ कायस्थों की संख्या बहुत कम है और कम से कम गौड़ ब्राह्मण तो अपने को पश्चिम भारत के ही अधिवासी मानते हैं।

---

* بحر آسایش , Ocean of comfort.

यह भी कथा प्रसिद्ध है कि जब राजा मानसिंह बिसेन ने गोंडे को अपनी राजधानी बनाया तो सिवाय गोंडों के वहाँ उस जङ्गल में और कोई न था। यह भी कहा जाता है कि किसी समय उत्तर भारत का अधिकांश भाग गोंड जाति के लोगों से बसा हुआ था। यह भी संभव है कि अन्य लोगों ने जो वहाँ आकर बाद में बसे हों उन्हीं का नाम धारण कर लिया हो। महाभारत के समय यहाँ टाँगो नाम की एक जाति बसती थी जो यहाँ से घोड़े ले जाकर अन्य प्रान्तों के श्रीमान् पुरुषों को भेंट किया करती थी। अब उस जातिविशेष का लोप हो गया है परन्तु पहाड़ी छोटे टट्टू अब भी टाँगन कहलाते हैं।

एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि बङ्गाल का भी एक नाम गौड़ है और राजा आदि-सुर को जो उत्तर भारत से ब्राह्मणों और कायस्थों को ले गये थे. पञ्चगौड़ेश्वर कहते थे। परन्तु यह नाम बङ्गाल सूबे को नवीं शताब्दी तक नहीं दिया गया था। पञ्चगौड़ से तात्पर्य्य उन भागों से था जिनमें उस समय का बङ्गाल विभक्त था अर्थात उत्तरराढ़, दक्षिणराढ़ इत्यादि।

"सहेट महेट" भी गोंडा जिले के अन्तर्गत है। यह प्राचीन श्रावस्ती नगर का भग्नावशेष है जिसको भगवान रामचन्द्र जी के पुत्र लवजी ने अपनी राजधानी बनाया था। इस नगर ने बौद्धधर्म का एक केन्द्र बन-कर पीछे बड़ा महत्व प्राप्त किया था। कुछ काल पीछे श्रावस्ती नगर उजड़ गया। अब इसके खंडहर बलरामपुर से पश्चिम छः कोस पर सहेट-महेट के नाम से प्रसिद्ध हैं। यह नगर राप्ती और सीरगी नदी के बीच सात मील तक उजड़ा पड़ा हुआ है। क़िले की जगह पर एक ऊँचा टीला उसके पास मौजूद है जिसकी चोटी पर जैनियों का एक मन्दिर बना है और उसको 'ओडाभार' कहते हैं। जनश्रुति है, सूर्यवंशी शाक्यकुल के राजा यहाँ राज्य करते थे। वे दो भाई थे। बड़े भाई का नाम सहेट और छोटे का नाम महेट था। उनकी जाति सरावगी

में यह चलन है कि सूर्यास्त के पीछे भोजन नहीं करते। एक दिन बड़े भाई सहेट सूर्यास्त के समय मृगया से लौटे। उनके छोटे भाई की स्त्री दिव्या कोठे पर खड़ी थीं, उसके बदन के प्रकाश से उजाला हो रहा था। राजा ने यह समझ कर कि अभी सूर्यास्त नहीं हुआ है भोजन कर लिया। जब वह दिव्या वहाँ से हट गयी तब राजा को मालूम हुआ कि रात बहुत बीत चुकी है। उन्होंने अपने सन्देह को प्रकट किया तब सेवकों ने असली हाल उनसे कहा। अनन्तर राजा ने अनुजवधू को देखने की उत्कट लालसा प्रकट की, परन्तु कार्य्य धर्म-विरुद्ध था। तुरंत पृथ्वी फट गई और राजा का सम्पूर्ण परिवार उसमें समा गया और नगर उलट गया।

महाकवि कालिदास ने लिखा है कि महाराजा दिलीप जब यात्रा करते हुये गुरु वसिष्ठ के आश्रम को गये तब मार्ग में घोषों ने उन्हें ताज़ा मक्खन अर्पण किया। यह आश्रम हिमायल पर्वत पर कहीं था और वहाँ ग्वालों की आबादी रही होगी जो अब ग्वारिच परगने के नाम से प्रसिद्ध है। लोगों का यह भी विश्वास है कि यहाँ पाण्डव राजा विराट की गायों की रक्षा करते थे।

इस ज़िले के सरयू और घाघरा के संगम पर वाराहक्षेत्र है। लोग कहते हैं कि इसी स्थान पर विष्णु जी ने वाराह अवतार धारण किया था, यद्यपि इस प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिये अन्य तीन स्थान भी दावा करते हैं, तथापि इसमें संदेह नहीं है कि यही शूकरक्षेत्र है जहाँ श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण की कथा अपने गुरु से सुनी थी।

इसके बीच में पसका गाँव है जहाँ एक मन्दिर बना हुआ है और उसमें वाराह भगवान की मूर्त्ति स्थापित है। इसीके निकट संगम है, जिसको त्रिमोहानी कहते हैं। यहाँ सरयू और घाघरा मिली हैं और पौष भर यहाँ कल्पवास होता है, एवं पूर्णिमा को बड़ा मेला लगता है। दूसरी त्रिमोहानी केराघाट पर है जहाँ टेढ़ी और घाघरा का संगम है।

यहाँ यमद्वितीया को भी स्नान होता है। इस जगह फलाहारी बाबा ने एक मन्दिर बनवाया है। उनका कथन है कि श्रीहनुमान जी का जन्म-स्थल यही है।

गोंडा जिले में एक और छोटा तीर्थ है जिसे मनोरामा कहते हैं। यहाँ महाराज दशरथ ने अश्वमेध यज्ञ किया था। महाभारत के शल्यपर्व में लिखा है कि यहाँ उद्दालक मुनि के पुत्र ने जब वे अयोध्या में यज्ञ करते थे, मनोरामा के नाम से देवी सरस्वती का आह्वान किया था। इससे स्पष्ट है कि यह मनोरामा एक नदी का नाम है और उन ऋषियों का दिया हुआ है जो पश्चिम से महाराज दशरथ को यज्ञ कराने आये थे।

गोंडे के उत्तर-पश्चिम ७ कोस पर मनोरामा ताल है जहाँ उद्दालक मुनि की मूर्त्ति विद्यमान है। इस तीर्थ में कार्तिकी पूर्णिमा को गोंडा जिले का बड़ा मेला होता है। जो लोग अयोध्या जी नहीं जा सकते वे यहीं आते हैं। इसी स्थान पर उद्दालक मुनि के पुत्र नचिकेता ने समागत मुनियों और ऋषियों को नासिकेत पुराण सुनाया था। इसी ताल से मनोरामा नदी निकली हुई है जो गर्मियों में सूख जाती, बरसात में खूब बढ़ती और सरयू में गिरती है। इसी नदी पर दूसरा मेला होता है और यह तीर्थ मनवर मखोड़ा के नाम से प्रसिद्ध है। यह अयोध्या जी से सरयू पार करके ४ कोस पर सिकंदरपुर के पास है। यहाँ चैत्र की पूर्णिमा को नहान लगता है और अयोध्या-वासी संत महन्त पधारते हैं।

गोंडा जिले में अत्यन्त प्रसिद्ध स्थान देवीपाटन का मन्दिर है। यद्यपि रामायण में इसकी चर्चा नहीं है तथापि इसके विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। कहते हैं कि राजा कर्ण ने इसे बनवाया था। कर्ण को एक राजा ने यहाँ पड़ा हुआ पाया था और पुत्रहीन होने के कारण उसने उसे पुत्र के समान पाला था। राजा विक्रमादित्य ने

इस मन्दिर का जीर्णोद्धार किया। गोरखनाथ जी के शिष्य रत्ननाथ ने भी इस मन्दिर को बनवाया। मन्दिर के वामपक्ष पर हिन्दी में गोरख-नाथ जी का नाम खुदा हुआ है। सबसे पीछे औरङ्गजेब के राजत्वकाल में तुलसीपुर के राजा ने इसे बनवाया। इस स्थान पर एक जगह कुँवाँ बना हुआ है।*

कहते हैं कि सती जी जब जल गईं और शिवजी उनकी लोथ को कंधे पर डालकर पूर्व से पश्चिम की ओर दौड़े तो उनके अङ्ग जहाँ-जहाँ गिरे वहाँ-वहाँ देवी जी का एक स्थान सिद्धपीठ हो गया। यहाँ भवानी की दक्षिण भुजा गिरी थी इसीसे इसका नाम देवीपाटन पड़ा। "पाटन" का अर्थ भुजा है।

गोंडा ज़िले के निम्नलिखित स्थान भी जानने योग्य हैं —

सोहागपुर—गोंडे के उत्तर है। यह च्यवन† ऋषि की तपस्थली है। चमदई (चमनी) नदी इनके नाम से प्रकट हुई है। कन्नौज के राजा कुश ने अपनी कन्या इन्हें ब्याह दी थी और देव-वैद्य अश्विनी-कुमारों ने इन्हें युवावस्था प्रदान की थी। मुनि ने इन्द्र से बारह दिन के लिये जाड़े में वर्षा माँग ली थी ; माघान्त में छः दिन और फाल्गुनारम्भ में छः दिन। इसको च्यवनहार या च्यवन-झरहा कहते हैं।

पारासराय—यह पराशर जी की तपस्थली है किन्तु अब एक चबूतरा ही रह गया है।

---

* इसके बारे में लोग कहते हैं कि यहाँ से नव ग्रह और नक्षत्र अपने अपने स्थानों पर दिखाई देते हैं। सम्भव है कि यहाँ किसी समय मानमन्दिर रहा हो। यह मन्दिर जब बहुत प्रसिद्ध हुआ तब औरङ्गजेब ने एक सैनिक को भेज कर इसे तोड़वा डाला। "भगवती-प्रकाश" नामक ग्रन्थ में लिखा है कि वह सैनिक मारा गया और जहाँ वह गाड़ा गया उसे "शूर-वीर" कहते हैं।

† इन्हीं के जवान होने के लिये "च्यवनप्राश" दवा बनायी गयी थी।

बस्ती—इस जिले में प्रचीन राज्य कपिलवस्तु का एक अंश शामिल है। इस समय "पिपरहवा" कपिलवस्तु का भग्नावशेष बताया जाता है। परन्तु कुछ विद्वानों के मत से नैपाल की तराई में स्थित तिलौरा कोट ही प्राचीन कपिलवस्तु है। इसमें सन्देह नहीं कि लुम्बिनीबाग़ जहाँ भगवान बुद्ध पैदा हुये थे और जिसका वर्णन ह्वान्च्वांग ने किया है, नेपाल की तराई में है। अब इसको "रुमिनेदई" कहते हैं और यह अंगरेजी सरहद से चार मील उत्तर है।

जमथा—परशुराम जी के पिता जमदग्नि ऋषि की तपस्थली है।

सिंगिरिया—यह परसपुर के निकट है। पुत्रेष्टि यज्ञ के समय ऋष्य-शृंग यहीं टिके थे।

गोरखपुर—इसी ज़िले में कुशीनगर (कसिया) है जहाँ बुद्ध जी को निर्वाण प्राप्त हुआ था। चार वर्ष हुये यहाँ की भूमि खोदी गयी थी और जो कुछ प्राप्त हुआ था लखनऊ के अजायब घर में रक्खा है।

सीतापुर—इसी ज़िले में **नैमिषारण्य** तीर्थ है जहाँ अट्ठासी हज़ार ऋषि रहते थे और सूत जी पुराण सुनाते थे। यहीं भगवान् रामचन्द्र जी ने अश्वमेध यज्ञ किया था और उनके पुत्र कुश और लव जी ने महर्षि वाल्मीकि-रचित रामायण की कथा सुनाई थी। यहाँ से कुछ दूर पर वह स्थान बताया जाता है जहाँ महारानी सीता जी पृथ्वी में प्रवेश कर गई थीं। महाभारत के शल्य-पर्व में लिखा है कि यहीं ऋषियों ने सरस्वती का कञ्चनाक्षी नाम से आह्वान किया था। अब इस स्थान पर बहुत से ताल हैं जिनमें सब से प्रसिद्ध चक्रतीर्थ है। यहां ललिता देवी का मन्दिर है।

नैमिष से **मिसरिख** छः मील है। यहाँ सरकारी तहसील है और राजा दधीच का मन्दिर है। किसी समय राजा यहाँ तप करते थे और देवलोक में देवासुर-संग्राम हो रहा था। असुरों ने देवताओं को हरा दिया था। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि जब तक दधीच की हड्डियों का अस्त्र

न बनेगा तब तक तुम जीत नहीं सकते। देवताओं ने उनसे प्रर्थना करके उन्हें राजी किया। मरने से पहिले राजा ने सब तीर्थों का जल एक कुण्ड में डलवा दिया। इससे उस स्थान का नाम मिश्रित पड़ा। पीछे लोग उसे मिसरिख कहने लगे।

सुलतानपुर—कहते हैं कि यह प्राचीन नगर राम के पुत्र कुश के द्वारा बसाया गया था और उसे कुसपुर या कुशभवनपुर भी कहते थे। कनिघंम ने इसी स्थान को ह्वानच्वांग का कुशपुर कहा है। ह्वानच्वांग कहता है कि उसके समय में वहाँ पर एक नष्टप्राय अशोक का स्तूप था और बुद्ध ने वहाँ ६ मास तक उपदेश दिया था। आजकल भी सुलतानपुर के उत्तर पश्चिम में ५ मील की दूरी पर महमूदपुर नामक ग्राम में बौद्ध मठों के खँडहर मिलते हैं। प्राचीन नगर को अलाउद्दीन खिलजी ने नष्ट कर दिया था।

गोमती के किनारे पर सुलतानपुर के पास ही, सिविल लाइन के बाद ही एक स्थान है जिसे सीता-कुण्ड कहते हैं जहाँ सीता जी ने अपने पति के साथ वन जाते समय स्नान किया था।

फ़ैज़ाबाद—अयोध्या को छोड़कर इस ज़िले में चारों ओर रामचरित संबंधी तीर्थ हैं।

नंदिग्राम—जहाँ भरत जी १४ वर्ष तापस वेष में रहे थे।

तारड़ीह—वन-यात्रा में पहिले दिन श्रीरामचन्द्र तमसा तट-पर यहीं टिके थे। इसी से कुछ दूर पूर्व तमसा-तट पर वाल्मीकि का आश्रम था।

वारन—यहाँ एक बाजार और एक ताल है। यहाँ महाराज दशरथ के हाथी रहते थे (वारण-हाथी) और यहीं सरवन मारा गया था। वारन ताल तमसा (मड़हा) का एक भाग है। इसका पूरा वर्णन हमारी छपाई अयोध्या कांडकी भूमिका में है।

अब ज़िले भर के और रामायण-संबंधी स्थानों के वर्णन करने की कुछ आवश्यकता नहीं। इसलिये अब हम अयोध्या, अवध, साकेत

या विशाखा का वर्णन करेंगे। मेजर (अब कर्नल) वास्ट का कथन है कि यद्यपि साकेत कोशल में था, परन्तु परताबगढ़ का तुसारन विहार साकेत है। पुरातत्त्ववेत्ताओं ने चीनी यात्री ह्वानच्वांग के लिखे भ्रमात्मक स्थानों के नाम और उनकी परस्पर दूरी जान कर अयोध्या को लखनऊ, कुरसी (बाराबंकी), सुजानकोट (उन्नाव), डौंडियाखेड़ा (उन्नाव) से मिलाया है। किन्तु हम कनिंघम से सहमत हो कर यही मानने को तैयार हैं कि अयोध्या विशाखा, (पिसोकिया), साकेत (साची) आदि पर्यायवाची हैं। हम ह्वानच्वांग के आयुतो को भी अयोध्या ही मानते हैं। आगे हम कर्नल वास्ट के तर्कों का उत्तर देने का प्रयत्न करेंगे।

सब से प्रथम कर्नल वास्ट ने कालिदास को उद्धृत किया है और यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि मल्लिनाथ की टीका रहते भी साकेत का मतलब अयोध्या से नहीं था। इसके विपरीत हमें यही कहना है कि कालिदास के अनुसार साकेत और अयोध्या एक ही हैं।

पुरमविशदयोध्यां मैथिलीदर्शिनीनाम्।

(रघुवंश, दशम सर्ग, १६ श्लोक)।

साकेतनाथोऽञ्जलिभिः प्रणेमुः।

(रघुवंश, षोडश सर्ग, १२ श्लोक)।

अब हम यदि कर्नल साहब का कथन सत्य मान लें तो यह भी मानना पड़ेगा कि राम के विवाह के समय की राजधानी बदल कर तुसारन विहार (साकेत) चली गई थी जब वे वन से लौटे। जैनों के प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव आदिनाथ साकेत के राजा नाभि और मेरु देवी के पुत्र थे। जैन लोग बड़ी श्रद्धा से विश्वास करते हैं कि आदिनाथ अयोध्या ही में उत्पन्न हुये थे, और उनके स्मरणार्थ बनाये गये मन्दिर को शाहजूरान के टीले के पास बताते हैं जो हमारे घर से २०० गज की दूरी पर है।

परन्तु इससे बढ़कर एक बात जो हमारी राय के पक्ष में है वह बुद्ध जी के दतून के पेड़ का स्थान है। बुद्ध जी ने जब साकेत

(साची या पिसोकिया) में थे एक दतून का पेड़ लगाया था जो छः या सात फुट ऊँचा बढ़ा और जिसे फ़ाहियान और ह्वानच्वांग दोनों ने देखा था।

साची के संबंध में फ़ाहियान कहता है "नगर के दक्षिण द्वार से निकल कर सड़क के पूर्व में एक स्थान है जहाँ बुद्ध देव ने कटीले वृक्ष की एक डौंगी तोड़ कर भूमि में लगा दी थी जहाँ वह सात फुट तक बढ़ी और फिर न घटी न बढ़ी"। यह कथा बिल्कुल उसी के अनुकूल है जो ह्वान-च्वांग ने विशाखा के संबंध में कही है कि राजधानी के दक्षिण में और मार्ग की बाईं ओर (अर्थात पूर्व में जैसा फ़ाहियान ने कहा था) एक छः या सात फुट ऊँचा वृक्ष था जो पवित्र समझा जाता था जो न घटता था और न बढ़ता था। यही बुद्धदेव का प्रख्यात दतून का वृक्ष था।

कहा जाता है बुद्धदेव ने साकेत में १६ वर्ष तक निवास किया था। हनुमानगढ़ी के बाद जब हम अयोध्या से फैज़ाबाद की ओर पक्की सड़क पर चलते हैं तो मार्ग की बाईं ओर दतून कुण्ड पड़ता है। यद्यपि सर्व साधारण का विश्वास है और अयोध्या-माहात्म्य में भी लिखा है कि इस कुण्ड पर भगवान् रामचन्द्र दतून किया करते थे, तथापि विचार यही होता है कि कदाचित् यही स्थान है जहाँ बुद्धदेव ने दतून का वृक्ष लगाया था या जहाँ पर पास ही सरोवर खोदा गया था जिसमें भगवान् बुद्धदेव मुँह धोया करते थे और जो आजकल भी वृक्ष के सूख जाने पर भगवान् बुद्धदेव के अयोध्या के निवास का स्मारक है।

संभव है दक्षिण द्वार हनुमानगढ़ी के पास था। हनुमानगढ़ी से सरयू तक की दूरी एक मील से कुछ अधिक है, किन्तु नदी की गति बदलती रहती है और यात्री (ह्वानच्वांग) के समय में वह कुछ और उत्तर की ओर बहती रही हो। अभी मेरी याद में इस नदी ने बस्ती और गोंडे के ज़िलों की हज़ारों एकड़ भूमि काट डाली है और वही भूमि अयोध्या में मिल गई है।

ह्वानच्वांग कहता है कि पिसोकिया की परिधि लगभग १६* ली थी। इतना स्थान, एक शक्तिशाली राज्य की राजधानी के लिये कदापि काफी नहीं था। मेरा विश्वास है कि यह परिधि रामकोट की है जिसका आगे वर्णन किया जायगा। डाक्टर फ़ूरर का वचन है कि गोंडे के आदमी इस दतून के वृक्ष को चिलबिल का पेड़ बताते हैं जो छः या सात फुट से आगे नहीं बढ़ता। यह करौंदा भी हो सकता है जिसकी दतूनें आजकल भी अवध में और विशेष कर लखनऊ में काम आती हैं।

यहाँ यह भी बताना अयोग्य न होगा कि दतून के बढ़ने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। कानपुर ज़िले में घाटमपुर की तहसील से एक मील की दूरी पर एक महंत का कई मंजिल का मकान है जिसमें एक नीम का पेड़ एक दतून से निकला हुआ है जिसे एक साधु ने २०० वर्ष पूर्व लगाया था। इन बातों से कदापि यह मेरा मतलब नहीं है कि मेरे कथन से किसी को दुःख हो। समाधान यों भी हो सकता है कि बुद्धदेव भी विष्णु के अवतार थे।

कनिघंम कहते हैं कि अयोध्या की प्राचीन नगरी जैसा कि रामायणी में लिखा है सरयू नदी के किनारे थी। कहा गया है कि उसका घेर १२ योजन या लगभग १०० मील था। किन्तु हमें इसके बदले १२ कोस या २४ मील ही पढ़ना चाहिये। संभव है कि उस प्राचीन नगर को उपवनों के सहित माना हो। पश्चिम में गुप्तारघाट से * लेकर पूर्व में रामघाट तक की दूरी सीधी छः मील है और हम भी यही समझते हैं कि उसका घेर १२ कोस ही का रहा हो। आजकल भी यहाँ के निवासी कहते हैं कि नगर की पश्चिमी सीमा गुप्तारघाट तक और पूर्वी बिल्वहरि तक थी। दक्षिणी सीमा भदरसा के पास भरतकुण्ड तक बतायी जाती है। वह भी छः कोस है।

---

* चीनी माप एक ली अँग्रेजी $\frac{1}{6}$ मील के बराबर है।

आइने अकबरी में नगरी की लम्बाई १४८ कोस और चौड़ाई ३२ कोस है। इसका अभिप्राय घाघरा के उत्तर के अवध प्रान्त से है। ह्वानच्वांग ने इस प्रदेश का घेर ४००० ली या ६६७ मील बताया है।

कनिंघम के २४ मील के कथन की पुष्टि में एक बात और है कि अयोध्या की परिक्रमा जो कि प्राचीन धार्मिक नगर की सीमा मानी जा सकती है, १४ कोस अर्थात २८ मील या किसी किसी के अनुसार २४ मील की ही है। इस परिक्रमा के भीतर फैज़ाबाद का शहर और आस-पास के गाँव भी आ जाते हैं जैसा कि नक़शे में दिखाया जायगा। यह बसी हुई बस्ती की सीमा हो सकती है, किन्तु यह कदापि वाल्मीकि की प्राचीन नगरी का घेर नहीं था।

अयोध्या मनु ने निर्मित की थी और वह १२ योजन लम्बी थी और ३ योजन चौड़ी थी। वह सरयू से वेदश्रुति तक फैली हुई थी तो वह वेद-श्रुति अयोध्या से २४ मील की दूरी पर होनी चाहिये। इसे आजकल बिसुई कहते और यह सुलतानपुर जिले से निकल कर आजकल भी फैज़ाबाद जिले की सीमा बनाती हुई इलाहाबाद-फैज़ाबाद रेलवे लाइन को खुजरहट स्टेशन से दो मील की दूरी पर काटती हुई अकबरपुर के पास मड़हा से मिल जाती है और वहाँ से इसे टौंस (तमसा) कहते हैं।

अब पूर्वी और पश्चिमी सीमा के संबंध में यदि हम फैज़ाबाद जिले के नक़शे की ओर देखें तो मालूम होगा कि इसमें घाघरा के किनारे-किनारे की भूमि जो कभी २५ मील से अधिक चौड़ी नहीं है, आज़मगढ़ से बाराबंकी तक लगभग ८० मील तक फैली हुई है। कनिंघम जिन्होंने कदाचित् रामायण भी नहीं देखा, आइने अकबरी को उद्धृत करते हैं और फिर ब्राह्मणों की अत्युक्ति पर दो चार बातें कह कर मान लेते हैं कि नगरी आस-पास के भागों को लेकर १२ योजन लम्बी थी। इसमें

तो आजकल का लखनऊ शहर भी आ जायगा और फिर साधारण के विश्वास से लक्ष्मणपुरी (लखनऊ) अयोध्या का पश्चिम द्वार हो जायगी। यह भी कहा जाता है कि इस नगर का पूर्व द्वार फैज़ाबाद ज़िले में आजमगढ़ की सीमा पर बिड़हर में था, किन्तु नगरी की पश्चिमी सीमा बड़ी कठिनाई से निश्चित समझी जा सकती है।

तीसरा अध्याय ।

प्राचीन अयोध्या ।

(क) वाल्मीकि रामायण में अयोध्या का वर्णन ।

महर्षि वाल्मीकि जी की रामायण को देखने से यही सिद्ध होता है कि अयोध्या उस समय में मर्त्यलोक की अमरावती थी, अमरावती क्या—यदि अमरावती से बढ़कर कोई पुरी भूमण्डल पर थी तो अयोध्या थी । जो कुछ यहाँ विभूति या सुखसामग्री थी, उसका अत्यन्त प्रभाव था। जिस दैवी सम्पत्ति के कारण अयोध्या की शास्त्रों में भूयसी प्रशंसा की गई है उसका वर्णन करना हमारे आज के लेख का उद्देश्य। नहीं है, केवल अयोध्या की उस मानुषी सम्पत्ति को दिखाना चाहते हैं जिसे लिखे पढ़े लोग नवीन समझे हुये हैं ।

यह भूमण्डल की सबसे पहली लोकप्रसिद्ध राजधानी स्वयं आदि-राज महाराज मनु जी ने बसाई थी । यह दैर्घ्य (लम्बाई) में बारह योजन और विस्तार (चौड़ाई) में तीन योजन थी । सुतरां, अयोध्या अड़तालीस कोस लम्बी और बारह कोस विस्तृत (चौड़ी) थी । जैसा कि महर्षि वाल्मीकि जी ने रामायण के बालकाण्ड में वर्णन किया है ।

"अयोध्या नाम तत्रास्ति नगरी लोकविश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण पुरैव निर्मिता स्वयम् ॥
आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी ।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा नानासंस्थानशोभिता ॥"

ऊपर जो अयोध्या की लम्बाई चौड़ाई का वर्णन है। उस में नगरमात्र का समझना चाहिये । 'राजमहल' वा 'राजदुर्ग' इस से, भिन्न था । महर्षि ने दूसरी जगह लिखा है :—

"सा योजने द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते ॥"

अर्थात् द्वादश योजन लम्बी और तीन योजन विस्तृत महापुरी में दो योजन परिखादि द्वारा विशेष सुरक्षित हो "अयोध्या" (जिसे शत्रु जीत न सके) के नाम को अधिक सार्थक करता था। राजधानी अयोध्या पुरी के चारों ओर प्राकार (कोट) था। प्राकार के ऊपर नाना प्रकार के 'शतघ्नी' आदि सैकड़ों यन्त्र (कल) रक्खे हुये थे। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय में तोप की तरह क़िले के बचाने के लिये कोई यन्त्र विशेष होता था। 'शतघ्नी' को यथार्थ तोप कहने में हमें इस लिये सङ्कोच है कि उसमे पत्थर फेंके जाते थे। बारूद से काम कुछ न था। महर्षि वाल्मीकि बारूद का नाम भी नहीं लेते। यद्यपि किसी किसी जगह टीकाकारों ने 'अग्निचूर्ण' वा 'और्व्व' के नाम से बारूद को मिलाया है, पर उसका हमने प्रकृति में कुछ भी उपयोग नहीं पाया। अस्तु।

कोट के नीचे जल से भरी हुई परिखा (खाईं) थी। पुरी के उत्तर भाग में सरयू का प्रवाह था। सुतरां, उधर परिखा का कुछ भी प्रयोजन न था। उधर सरयू का प्रबल प्रवाह ही परिखा का काम देता था, किन्तु नदी के तट पर भी सम्भव है कि नगरी का प्राकार हो। नदी के तीन ओर जो खाईं थी अवश्य वह जल से भरी रहती थी। क्योंकि नगरी के वर्णन के समय महर्षि वाल्मीकि ने उसका 'दुर्गगम्भीर-परिखा' यह विशेषण दिया है। टीकाकार स्वामी रामानुजाचार्य्य ने इसकी व्याख्या में कहा है कि "जलदुर्गेण गम्भीरा अगाधा परिखा यस्याम्"। इससे समझ में आता है कि जलदुर्ग से नगरी की समस्त परिखा अगाध जल से परिपूर्ण रहती थी। सुतरां, इन परिखाओं में जल भरने के लिये जलदुर्ग किसी तरह का कौशल था। इस विषय में कुछ सन्देह नहीं।

संभव है कि नगरी के चारों ओर चार द्वार थे। सब द्वारों का नाम भी अलग अलग रक्खा गया होगा, किन्तु हमें एक द्वार के सिवाय और किसी द्वार का नाम नहीं मिलता। नगरी के पश्चिम ओर जो द्वार था उसका नाम था "वैजयन्तद्वार"। शत्रुघ्न सहित राजकुमार भरत जब मातुलालय (मामा के घर) गिरिव्रज नगर से अयोध्या में आये थे तब इसी द्वार से प्रविष्ट हुये थे। यथा—

"द्वारेण वैजयन्तेन प्राविशच्छ्रान्तवाहनः"।

नगरी से जो पूर्व की ओर द्वार था, उसी से विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण सिद्धाश्रम वा मिथिला नगरी को गये थे। किन्तु दक्षिण का द्वार राम-लक्ष्मण और सीता की विषादमयी स्मृति के साथ अयोध्या-वासियों को चिरकाल तक याद रहा था। क्योंकि इसी द्वार से रोती हुई नगरी को छोड़ कर राम-लक्ष्मण और सीता दण्डक-वन को गये थे। और इसी द्वार से रघुनाथ जी की कठोर आज्ञा के कारण जगज्जननी किन्तु मन्दभागिनी सीता को लक्ष्मण वन में छोड़ कर आये थे। उत्तर की ओर जो द्वार था उसके द्वारा पुरवासी सरयू-तट पर आया जाया करते थे।

इस प्रकार अयोध्या 'कोट खाईं' से घिर कर सचमुच 'अयोध्या' हो रही थी। पर हमारी अयोध्या की इन पुरानी बातों को दो चार व्यूहलर और वेबर आदि दुराग्रही विलायती पण्डित सहन नहीं करते। उनके लिये यह असह्य और अन्याय की बात हो रही है कि जब उनके पितर वनचरों के समान गुजारा कर रहे थे उस समय हिन्दुओं के भारतवर्ष में पूर्ण सभ्यता और आनन्द का डंका बज रहा था! लाचारी से हमारी पुरानी बातों का इन्हें खण्डन करना पड़ता है। लण्डन नगर का चाहे जितना विस्तार हो, 'पेरिस' चाहे जितनी बड़ी हो, यह सब हो सकता है, किन्तु अयोध्या का अड़तालीस कोस में बसना सब झूठ है! इतना ही नहीं, एक साहब ने कहा है, कि अयोध्या के चारों ओर कोट की जगह

काठ का बाड़ा बना हुआ था, जैसा अब भी जंगली लोग पशुओं से बचने के लिये जंगल में खड़ा कर लिया करते हैं। इसके सिवाय और सब ब्राह्मणों की कल्पना है!

वेबर को इस पर भी सन्तोष वा विश्वास नहीं हुआ कि "हिन्दुओं के पूर्वजों के पास एक बाड़ा भी रहा हो"। उसने लिख मारा "न अयोध्या हुई और न कोई राम! सब कवि-कल्पना है"। सीता को हल से जुती हुई धरती की रेखा और आर्य्यों की खेती ठहराई है, और रामचन्द्र तथा बलराम जी (अर्थात् हलभृत् और सीतापति) को एक ही ठहरा कर यह निगमन निकाला है कि लुटेरों से प्रजा की खेती की जो बलराम जी ने रखवाली की इस बात का रूपक बाँध कर रामायण में यों लिखा है कि सीता को राक्षस ने हर लिया और पीछे से सीता के पति रामचन्द्र ने ढूँढ़कर उन्हें राक्षसों से छुड़ा लिया।

वेबर के विचारों की दुर्ब्बलता वा निरंकुशता हम अपने दूसरे लेखों में दिखावेंगे। यहाँ केवल उन हिन्दू-कुलाङ्गारों से निवेदन है जो वेबर आदि को पुरातत्ववेत्ता मान कर उनके पीछे-पीछे अन्धकार में चले जा रहे हैं। वे एक बार रामायण को देखें और फिर विलायत वालों की धृष्टता की परीक्षा करें कि कितना अर्थ का अनर्थ कर रहे हैं। बाँस, लकड़ी आदि का जो अयोध्या का दुर्बल प्राकार बता रहे हैं वे अयोध्या के रामायण में इन विशेषणों की ओर ध्यान दें—'बहुयन्त्रायुधवती' 'शतघ्नी-शतसङ्कुला'।

अयोध्या नगरी की सड़कों और गलियों के सुन्दर और स्पष्ट वर्णन से कौन कह सकता है कि वह किसी बात में कम रही होगी? नगर के चारों ओर सैर करने की सड़क थी जिसका नाम 'महापथ' लिखा है। राजप्रासाद (राजमहल नगरी के मध्य भाग में किसी जगह था) के चार द्वार थे। इन द्वारों (दरवाजों) से सर्व्वपण्य-शोभित मार्ग पुरी में

चारों ओर जाते थे, इनका नाम 'राजमार्ग' अर्थात् सरकारी सड़क था। राजमार्ग और गलियों से नगर के मुहल्लों का विभाग हो रहा था। महापथ और राजमार्ग सब प्रतिदिन छिड़का जाता था। खाली जल ही से नहीं, सुगन्धित पुष्पों की भी मार्ग में वृष्टि होती थी; जिससे पुरी सुवासित रहती थी।

मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः।

नगरी में जब कोई विशेष उत्सव होता तब सर्वत्र चन्दन के जल का छिड़काव होता और कमल तथा उत्पल सब जगह शोभित किये जाते थे। मार्ग और सड़कों पर रात्रि के समय दीपक वा प्रकाश का कुछ राजकीय प्रबन्ध था कि नहीं, इसका कुछ स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता, किन्तु उत्सव के समय उसकी विशेष व्यवस्था होती थी; इस विषय में स्पष्ट प्रमाण मिलता है। राम-राज्याभिषेक की पहिली रात्रि को सब मार्गों में दीपक-वृक्ष (झाड़) लगाये गये थे और खूब रोशनी हुई थी। यथा—

प्रकाशीकरणार्थञ्च निशागमनशङ्कया।
दीपवृक्षांस्तथा चक्रुरनुरथ्यासु सर्व्वशः॥

ऐसे उत्सव के समय मार्ग के दोनों ओर पुष्पमाला, ध्वजा और पताका भी लगाई जाती थी और सम्पूर्ण मार्ग 'धूपगन्धाधिवासित' भी किया जाता था। राजमार्ग (सड़क) की दोनों ओर सुन्दर सजी-सजाई नाना प्रकार की दूकानें शोभायमान थीं। इसके सिवाय कहीं उच्च अट्टालिका, कहीं 'सुसमृद्ध चारु दृश्यमान' बाग था, कहीं 'चैत्यभूमि,' कहीं वाणिज्यागार और कहीं भूधर-शिखर-सम देवनिकेतन पुरी की शोभा बढ़ा रहे थे। कहीं सूतमागध वास करते, कहीं सर्वप्रकार शिल्पनिपुण (कारीगर) दृष्टिगोचर होते और कहीं पुरस्त्रियों की नाट्यशाला सुशोभित थी। कोई कोई स्थान हाथी घोड़े और ऊँटों से भरा था। किसी स्थान में सामन्त राजगण, कहीं वेदवित् ब्राह्मण लोग और कहीं ऋषि-

मण्डल निवास कर रहे थे। कहीं स्त्रियों का क्रीड़ागार, कहीं गुप्तगृह और कहीं सार्वभौमिक भवन विद्यमान था। कहीं विदेशीय वणिक जन और कहीं वारमुख्या (गणिका) बस रही थीं। कहीं आम्रवन, कहीं पुष्पोद्यान और कहीं गोचारण भूमि दिखाई पड़ती थी। किसी स्थान से निरन्तर मृदङ्ग वीणा आदि मधुर ध्वनि आती थी, कहीं सहस्रों नरसिंह सैनिक 'गुफा' की तरह अयोध्या की रक्षा कर रहे थे। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं, कि अयोध्या-वासी धर्म्मपरायण, जितेन्द्रिय, साधु और राजभक्त थे, चार वर्ण के लोग अपने अपने धर्म में स्थित थे। सभी लोग हृष्ट, पुष्ट, तुष्ट, अलुब्ध और सत्यवादी थे। अयोध्या के पुरुष कामी, कदर्य और नृशंस नहीं थे और नारी सब धर्मशीला और पतिव्रता थीं। अयोध्या के वीर पुरुष भी राजा के विश्वासपात्र और सरल थे। कम्बोज वाल्हीक, सिन्धु और वनायु देश से अयोध्या में अश्व आया करते और विंध्य, हिमालय से महापद्म ऐरावत प्रभृति भद्रमन्द और मृगजातीय नाना प्रकार के हस्ती। हाय! अब इनकी सत्यता पर विश्वास भी नहीं रहा! योगीश्वर वाल्मीकि की कविता केवल कल्पनामात्र समझी गई। पाठक! पुरानी अयोध्या का यही चित्र है।

[सं० १९०० के सुदर्शन से संपादक स्वर्गीय पं० माधवप्रसाद मिश्र के भाई पं० राधाकृष्ण मिश्र की आज्ञा से उद्धृत।]

(ख) और प्राचीन ग्रन्थों में अयोध्या का वर्णन

कालिदास का वर्णन—कालिदास ने रघुवंश के आदि में अयोध्या का वर्णन नहीं किया, यद्यपि अपने आश्रयदाता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के साथ अयोध्या आये थे। उस समय महाकवि ने अयोध्या की उजड़ी दशा देखी थी जिसका वर्णन उन्होंने सर्ग १६ में किया है। इसीसे हमें कुछ अयोध्या की समृद्धि का पता लगता है। अयोध्या की अधिष्ठात्री देवी महाराज कुश से कहती है—

वस्वौकसारामभिभूय साऽहं
सौराज्यबद्धोत्सवया विभूत्या। *
निशासु भास्वत्कलनूपुराणां †
यः संचरोऽभूदभिसारिकाणाम्॥
स राजपथः . . . .

---

* मैं सुराज संपदा जनाई।
मानी लघु कैलास बड़ाई॥
† निशि महँ बजत नुपुरन धारी।
चलीं जहाँ पिय खोजन नारी॥

अभिसारिका का लक्षण नायिकाभेद में यह है—

कान्तार्थिनी तु या याति संकेतं साऽभिसारिका।

अभिसारिका उसे कहते हैं जो अपने कान्त की खोज में संकेत (किसी नियत स्थान) को जाय। महाकवि कालिदास ने तो लिखा ही है आगे जानकीहरण महाकाव्य में भी अभिसारिकाओं का वर्णन है। हमारे पाठक यह न समझें कि यह सूर्यवंश की राजधानी के अयोग्य है। समृद्ध नगर में सब तरह के लोग रहते हैं। राजधानी जिसमें—

आस्फालितं यत्प्रमदाकराग्रैः *
मृदंगधीरध्वनिमन्वगच्छत् ।
तदम्भः . . . .
सोपानमार्गेषु च येषु रामाः †
निक्षिप्तवत्यश्चरणान् सरागान् ।
चित्रद्विपाः पद्मवनावतीर्णाः । ‡
करेणुभिर्दत्तमृणालभंगाः ।
स्तम्भेषु योषित् प्रतियातनानाम् ॥ §
उत्क्रान्तवर्णक्रमधूसराणाम् ।
आवर्ज्य शाखाः सदयं च यासाम् । ||

रिधि सिधि सम्पति नदी सुहाई ।
उमगि अवध अंबुधि कहँ आई ॥

योगी यतियों का निवास न था और न हो सकता था। नपुंसकों और यतियों से समृद्ध नगर नहीं बनता।

* लागत तरुनिहाथ जहँ नीरा।
बज्यो मृदङ्ग समान गंभीरा ॥

† जिन सीढ़िन पर सिन्धुर गामिनि।
डारत रंगि चरन वरभामिनि ॥

‡ बने चित्र महँ नाग विशाला।
लहत प्रिया सन मृदुल मृनाला ॥

§ खंभन मांहि चित्र तरुनिन के।
धूमिल भये रँग अब तिनके ॥

|| जाकी डार झुकाय संभारी।
तोरत फूल रहीं सुकुमारी ॥

पुष्पाण्युपात्तानि विलासिनीभिः ॥

(ता) उद्यान लताः ॥

वलिक्रियावर्जितसैकतानि । *

. . . सरयूजलानि ॥

परन्तु उसी समय का बना हुआ एक महाकाव्य और है जिसके आदि ही में अयोध्या का वर्णन है। इस ग्रन्थ का नाम जानकीहरण है और इसका निर्माता कवि कुमारदास है। यह ग्रन्थ सिंहल देश में मिला और स्वर्गीय धर्मारामनाथ स्थविरपाद ने उसे तीस वर्ष हुये सिंहली अक्षरों में छपवाया था।

"सिंहल में कुमारदास के लिये एक गलत धारणा है। यहाँ कहते हैं कि कालिदास के घनिष्ठ मित्र कुमारदास सिंहल के राजा थे। लेकिन महावंश में किसी सिंहल-राज का नाम कुमारदास नहीं पाया जाता। न यहाँ के पुराने इतिहास-ग्रन्थों में जानकीहरण ऐसे प्रौढ़ ग्रन्थ के रचयिता किसी महाकवि राजा का नाम आता है। सिंहल के राजा सभी बौद्ध थे। इसलिये भी जानकीहरण पर काव्य लिखना संदिग्ध समझा जाता है। यहाँ यह भी कहा जाता है कि कालिदास ने स्वयं इस काव्य को लिखकर कुमारदास के नाम से प्रसिद्ध कराया। वास्तविक बात यह जान पड़ती है—कालिदास और राजा कुमारदास दोनों घनिष्ठ मित्र थे। यह राजा कविता-प्रेमी भी था। किन्तु राजा के नाम में अनुप्रास के ही लिये 'दास' जोड़ा गया है। वस्तुतः यह कुमार सिंहल का राजा कुमार धातुसेन (५१५—२४ ई०) न हो कर 'गुप्त-साम्राट्' कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य

* वेदि विहीन होइ सरितीरा।
बिन सुगन्ध चूरन सुचि नीरा ॥

(रघुवंश भाषा, सर्ग १६)

(४१३—५५ ई०) था। नाम की समानता से ऐसी भ्रान्ति स्वाभाविक है।" *

हम अध्याय १० में दिखायेंगे कि महाकवि कालिदास गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य के आश्रित थे। कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य उसका बेटा था। जानकीहरण काव्य † रघुवंश के पीछे लिखा गया जैसा कि इस श्लोक से प्रकट है।

जानकीहरणं कर्तुं रघुवंशे स्थिते सति।
कविः कुमारदासश्च रावणश्च यदि क्षमः॥

जानकीहरण महाकाव्य में आदि ही में अयोध्या का वर्णन है। इसके कुछ अंश नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

आसीदवन्यामतिभोगभाराद्दिवोऽवतीर्णा नगरीव दिव्या।
क्षत्रानलस्थानशमी समृद्धया पुरामयोध्येति पुरी परार्ध्या॥

[अयोध्या पुरी क्षत्रियों के तेज की शमी धनधान्य से पूरित, एक दिव्य नगरी ऐसी जान पड़ती थी मानों भोग के भार से स्वर्ग से पृथिवीतल पर उतरी थी।]

कृत्वापि सर्वस्य मुदं समृद्धया हर्षाय नाभूदभिसारिकाणाम्।
निशासु या काञ्चनतोरणस्थरत्नांशुभिर्भिन्नतमिस्रराशिः॥

[वह अपनी समृद्धि से सब को सुख देकर अभिसारिकाओं को दुख देती थी क्योंकि उसके सुनहरे फाटकों में जड़े हुये रत्नों के प्रकाश से अँधेरा छट जाता था।]

स्वबिम्बमालोक्य ततं ग्रहाणामादर्शभित्तौ कृतवन्ध्यघातः।
रथ्यासु यस्यां रदिनः प्रमाणं चक्रुर्मदामोदमरिद्विपानाम्॥

---

* सरस्वती भाग ३१ संख्या ६ पृष्ठ ६८२ विद्यालंकार कालेज सीलोन के श्रीराहुल सांकृत्यायन के लेख से उद्धृत।

† यह ग्रंथ हमको इलाहाबाद म्यूनिसिपलिटी के विद्वान् इक्ज़िक्युटिव अफ़सर पंडित ब्रजमोहन व्यास की कृपा से प्राप्त हुआ है।

[अयोध्या के घर सब ऐसे पदार्थ के बने थे कि उनकी दिवारें दर्पण सी चमकती थीं। उस पर हाथी अपना प्रतिबिंब देखकर टक्कर मारते थे परन्तु जब उनमें से मद न निकलता था तो अपनी भूल समझ जाते थे।]

यत्र रक्तोद्‌हिततामसानि रक्ताश्मनीलोपलतोरणानि।
क्रोधप्रमोदौ विदधुर्विभाभिर्नारीजनस्य भ्रमतो निशासु॥

[(यहाँ फिर अभिसारिकार का वर्णन है।) रात को जो स्त्रियाँ अपने उपपतियों के पास जाने को निकलती थीं उन्हें कभी सुख होता था कभी क्रोध, क्योंकि लाल और काले पत्थर के फाटकों में लाल पत्थर की चमक से अँधेरा छँट जाता था और काले पत्थरों से अँधेरा बढ़ जाता था।]

कुमारगुप्त की राजधानी अयोध्या थी और यह सम्भव नहीं कि साम्राट् अपनी राजधानी की झूठी बड़ाई करता। हम यह समझते हैं कि उसने उस समय की अयोध्या का वर्णन किया।

यह तो हुई सनातनधर्मियों की बात, अध्याय ८ में यह दिखाया जायगा कि अयोध्या जैनों का भी तीर्थ है। कलकत्ते के प्रसिद्ध विद्वान् और रईस बाबू पूरनचन्द नाहार ने हमारे पास दो जैनग्रंथों से उद्धृत करके अयोध्या का वर्णन भेजा है। एक धनपाल की तिलकमंजरी (Edited by Pandit Bhavadatta Sastri and Kashi Nath Pandurang Paraba and publishedby Tuka Ram Javaji, Bombay) से लिया गया है और दूसरा हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्ठिशला का पुरुष चरित से। हमने पूरे पूरे दोनों उपसंहार में दे दिये हैं।

तिलकमंजरी का ग्रंथकार अयोध्या की प्रशंसा में मस्त हो गया है। जैसे महाकवि कालिदास ने अयोध्या के मुँह से कहलाया है कि मैंने कैलास को भी अपनी विभूति से अभिभूत कर दिया वैसे ही धनपाल आदि ही

में कहते हैं कि अयोध्या की रमणीयता से सारा सुरलोक निरस्त हो गया था। . . . यह भारतवर्ष के मध्यभाग का अलंकार स्वरूप थी। इसके चारों ओर ऊँचा कोट था इसके आगे जलभरी गहरी खाईं थी जिसे मनोरथों से भी कोई लाँघ नहीं सकता था और जिसमें ऊँचे कोट की परछाईं पड़ने से ऐसा जान पड़ता था मानों मैनाक की खोज में हिमालय समुद्र में घुसा हुआ है। इत्यादि।'

हेमचन्द्र जी अन्हलवाड़े के कुमारपाल सोलङ्की के गुरु थे। वे कहते हैं कि इंद्रदेव की आज्ञा से कुबेर ने १२ योजन चौड़ी और ९ योजन लंबी विनीता पुरी बनायी जिसका दूसरा नाम अयोध्या भी था और उसे अत्तय्य धनधान्य और वस्त्र से भर दिया। . . . उसके घरों के आँगनों में मोती चुनकर स्वस्तिका बनती थी—वहाँ जलकेलि में स्त्रियों के हार टूटने से घर की वावलियाँ ताम्रपर्णी * सी लगती थीं जहाँ चन्द्रमणि की भित्तियों से रात को इतना जल गिरता था कि सड़कों की धूर बैठ जाती थी . . . विनीता नाम की पुरी जम्बूद्वीप के भरतखंड में पृथिवी की शिरोमणि थी।

परन्तु जैन-धर्म का सब से प्रामाणिक ग्रन्थ आदिपुराण है। इस ग्रंथ को विक्रम संवत की आठवीं शताब्दी में जिन सेनाचार्य ने संस्कृत में रचा था। इसमें अयोध्या का वर्णन बारहवें अध्याय में दिया हुआ है।†

तौ दम्पती तदा तत्र भोगैकरसतां गतौ।
भोगभूमिश्रियं साक्षाच्चक्रतुर्वियुतावपि ॥ ६८ ॥

ऋषभदेव जी (आदिनाथ) के माता पिता मरुदेवी और राजा नाभि इसमें भोगभूमि से वियुक्त होने पर बड़े आनन्द से रहे।

तस्यामलंकृते पुण्ये देशे कल्पाङ्घ्रिपात्यये।
तत्पुण्यैर्मुहुराहूतः पुरुहूतः पुरीं दधात् ॥ ६९ ॥

---

* लंका जहाँ अब तक मोती निकलते हैं।

† यह लेख पंडित अजित प्रसाद जी एम्० ए०, एल-एल० बी०, अडवोकेट के भेजे हुये लेख के आधार पर है।

[कल्पवृक्ष के नष्ट होने पर उस देश में जिसे उन दोनों ने अलंकृत किया था उन्हीं के पुण्यों से आहूत होकर इन्द्र ने पुरी रची ।]

सुरा ससंभ्रमा सद्यः पाकशासनशासनात् ।
तां पुरीं परमानन्दाद् व्यधुः सुरपुरीनिभा ॥ ७० ॥

[देवताओं ने तुरन्त बड़े चाव से इन्द्र की आज्ञा पाकर एक पुरी बनायी जो देवपुरी के समान थी ।]

स्वर्गस्येव प्रतिच्छन्दं भूलोकेऽस्मिन्निधित्सुभिः ।
विशेषरमणीयैव निर्ममे साऽमरैः पुरी ॥७१ ॥

[देवताओं ने यह पुरी ऐसी रमणीय बनायी कि भूलोक में स्वर्ग का प्रतिबिंब हो ।]

स्वस्वर्गस्त्रिदशावासस्स्वल्प इत्यवमन्यते ।
परः शतजनावासभूमिका तान्तु ते व्यधुः ॥ ७२ ॥

[देवताओं ने अपने रहने की जगह का अपमान किया क्योंकि यह त्रिदशावास (अक्षरार्थ तीस जनों के रहने का स्थान) था * इससे इन्होंने सैकड़ों मनुष्यों के रहने की जगह बनायी ।]

इतस्ततश्च विक्षिप्तानानीयानीय मानवान् ।
पुरीं निवेशयामासुर्विन्यासैः विविधैः सुराः ॥ ७३ ॥

[इधर उधर बिखरे मनुष्यों को इकट्ठा करके देवों ने यह नगर बसाया और इसे सजा दिया ।]

नरेन्द्रभवनञ्चास्या सुरैर्मध्ये विवेशितम् ।
सुरेन्द्रनगरस्पर्धि परार्ध्यविभवान्वितम् ॥ ७४ ॥

[देवों ने इस पुरी के बीच में राजा का प्रासाद बनाया इसमें असंख्य धन भर दिया जिससे यह इन्द्र के नगर की टक्कर का हो गया ।]

---

* यह त्रिदश पर श्लेष है त्रिदश=देवता=तीस ।

सूत्रामा सूत्रधारोऽस्या शिल्पिनः कल्पजा सुराः ।
वास्तुजातामही कृत्स्ना सोद्यानास्तु कथम्पुरी ॥ ७५ ॥

[अयोध्या सबसे बड़ी पुरी क्यों न हो जब इन्द्र इसके सूत्रधार थे, कल्प के उत्पन्न देव कारीगर थे और सारी पृथिवी से जो सामान चाहा सो लिया ।]

संचस्कुरुश्च तां वप्रप्राकारपरिखादिभिः ।
अयोध्या न परं नाम्ना गुणेनाप्यरिभिः सुराः ॥ ७६ ॥

[फिर देवों ने कोट और खाई से इसे अलंकृत किया । और अयोध्या केवल नाम ही से नहीं अयोध्या थी बैरियों के लिये भी अयोध्या * थी ।]

साकेतरूढिरप्यस्या श्लाघ्यैव सुनिकेतनैः ।
स्वनिकेत इवाह्वातुंसाकूतैः केतबाहुभिः ॥ ७७ ॥

[इसको साकेत इस लिये कहते थे कि इसमें अच्छे अच्छे मकान थे, उन पर झंडे फहराते थे जिसमे जान पड़ता था कि देवताओं को नीचे बुला रहे हैं ।]

सुकोशलेतिविख्यातिं सादेशाभिख्यया गता ।
विनीतजनताकीर्णा विनीतेति च सा मता ॥ ७८ ॥

[इसका नाम सुकोशल इस कारण था कि उसी नाम के देश का प्रधान नगर था और विनीत जनों के रहने से इसका विनीता नाम पड़ा ।]

इन वाक्यों से अत्युक्ति हो परन्तु किसी को क्या पड़ी थी कि निरा झूठ लिख डालता ।

---

* जिसे कोई जीत न सके ।

(ग) सूर्यवंश के अस्त होने के पीछे की अयोध्या ।

अयोध्या कितनी बार बसी और कितनी बार उजाड़ हुई, इसका हिसाब करना सहज नहीं है । सच पूछिये तो भगवान् श्रीरामचन्द्र की लीला-संवरण के बाद ही अयोध्या पर विपत्ति आई । कोशलराज के दो भाग हुये । श्रीरामचन्द्र के ज्येष्ठ कुमार महाराज कुश ने अपने नाम से नई राजधानी "कुशावती" बनाई और छोटे पुत्र लव ने "शरावती" वा "श्रावस्ती" की शोभा बढ़ाई । राजा के बिना राजधानी कैसी ? अयोध्या थोड़े ही दिनों पीछे आप से आप श्रीहीन हो गई । अयोध्या के दुर्दशा के समाचार सुन महाराज कुश फिर अयोध्या में आये और कुशावती ब्राह्मणों को दानकर पूर्वजों की प्यारी राजधानी और उनकी जन्म-भूमि अयोध्या ही में रहने लगे ।

कविकुल-कलाधर महाकवि कालिदास ने रघुवंश काव्य के १६ वें सर्ग में कुशपरित्यक्ता अयोध्या का वर्णन अपनी ओजस्विनी अमृतमयी लेखनी से किया है जिसको पढ़कर आज दिन भी सरस रामभक्तों का हृदय द्रवीभूत होता है । यद्यपि महाकवि ने यह उस समय का पुराना चित्र उतारा है, पर हाय ! हमारे मन्द अदृष्ट से वर्तमान में भी तो वही वर्तमान है । भेद है तो यही है कि उस समय भगवती अयोध्या की पुकार सुननेवाला एक सूर्यवंशी विद्यमान था । अब वह भी नहीं रहा ।

जड़ जीव कोई सुने या न सुने । परन्तु अयोध्या की वह हृदयविदारिणी पुकार सरयू के कल कल शब्द के साथ "हा राम ! हा राम !" करती हुई अभी तक आकाश में गूँज रही है । उस प्राचीन दृश्य को विगत जीव हिन्दु-समाज भूले तो भूल सकता है, परन्तु अयोध्या की अधिष्ठात्री-देवी किस प्रकार भूल सकती है ।

महाभारत के महासमर तक * अयोध्या बराबर सूर्य्यवंशियों की राजधानी रही। उस युद्ध में कुमार अभिमन्यु के हाथ से अयोध्या का सूर्य्यवंशी महाराज 'बृहद्दल' मारा गया। इसके बाद इस राज्य पर ऐसी तबाही आई कि अयोध्या बिल्कुल उजड़ गई। सूर्य्यवंश अन्धकार में लीन हो गया। इस वंश के लोग दूसरे के अधीन हुए। प्राणों का मोह बढ़ा और स्वाधीनता नष्ट हुई। उदयपुर के धर्मात्मा राणा, जोधपुर के रणबंके राठोड़ और जयपुर के प्रतापी कछवाह इसी सूर्य्यवंश महावृक्ष की बची बचाई शाखा के अवशिष्ट हैं।

महाभारत तक का वृत्तान्त पुराणों में मिलता है और पीछे का कुछ वृत्तान्त जाना नहीं जाता कि अयोध्या में कब क्या हुआ और किसने क्या किया। परन्तु शाक्यसिंह बुद्धदेव के जन्म से फिर अयोध्या का पता चलता है और कुछ कुछ वृत्तान्त भी मिलता है। कारण बुद्धदेव कपिलवस्तु में उत्पन्न हुये, श्रावस्ती में रहे और कुशीनगर वा कुशीनर में निर्वाण को प्राप्त हुए। यह सब स्थान कोशल देश में विद्यमान थे। बुद्धमत के ग्रन्थों से जाना जाता है कि उन दिनों कोशल वा अवध की राजधानी का राज सिंहासन 'श्रावस्ती' में था जिसको श्रीरामचन्द्रदेव के कनिष्ठ पुत्र लव ने 'शरावती' के नाम से बसाकर अपनी राजधानी बनाया था। † इसीका नाम जैनों के प्राकृत-ग्रन्थों में 'सावत्थी' है। अब यह अयोध्या के पास उत्तर दिशा में महाराज बलरामपुर के इलाके, गोंडा के ज़िले में उजड़ी हुई पड़ी है। वहाँवाले इसे "सहेट-महेट" कहते हैं। ईसा की सप्तम शताब्दी में 'ह्वान्च्वांग' नामक प्रसिद्ध बौद्ध यात्री भारतवर्ष में आया था। उसने अयोध्या के साथ श्रावस्ती और कपिलवस्तु आदि की भी यात्रा पुस्तक में वर्णन की है। उसीके अनुसार अलेकज़ण्डर कनिंघाम साहेब ने "सहेट-महेट" के खंडहर खुदाकर अनेक ऐतिहा-

---

* और उसके कई पीढ़ी पीछे तक। —लेखक

† यह भी ठीक नहीं। श्रावस्ती राजा श्रावस्त की बसाई थी।

सिक बातों का पता लगाया जिनका वर्णन हम किसी दूसरे लेख में करेंगे।

बौद्धों के समय यद्यपि अयोध्या अवध की राजधानी थी, तथापि उसकी दशा ऐसी खराब न थी जैसी पीछे मुसल्मानों के समय हुई। तब तक पुराने राजमन्दिर और सुन्दर देवस्थान तोड़े नहीं गये थे और न अयोध्यावासी ब्राह्मणों का रक्त बहाया गया था। चीनयात्री के लेख में भी अयोध्या की पिछली दशा सुन्दर ही प्रतीत होती है। ईस्वी सन् से ५७ वर्ष पहिले श्रावस्ती के बौद्ध राजा को जीत कर उज्जैन के प्रसिद्ध महाराज विक्रमादित्य ने आर्य्य-राजधानी अयोध्या का जीर्णोद्धार किया। * पुराने मन्दिर देवालय और स्थान सब परिष्कृत किये गये और अनेक नवीन मन्दिर भी बनावाये गये। वह प्रसिद्ध मन्दिर जिसको बादशाह बाबर ने सन् १५२६ ई० में तोड़कर भगवान् रामचन्द्रदेव की जन्म-भूमि पर मसजिद खड़ी की, इन्हीं महाराज विक्रम ने बनवाया था। यदि अब तक वह मन्दिर विद्यमान रहता तो न जाने उसमें कैसी कैसी ऐतिहासिक वृत्तान्तों का पता लगता।

श्रावस्ती ने आठ सौ वर्ष तक स्वतन्त्रता का सुख भोगा। अन्त को वह भी जननी अयोध्या के समान पराधीन हो दूसरों का मुँह देखने लगी। कभी पटने के प्रतापशाली राजाओं ने इसे अपनाया और कभी कन्नौजवालों ने निज राजधानी की सेवा में इसे नियुक्त किया। अपने लोग चाहे कितने ही बुरे क्यों न हों अन्त को अपने अपने ही हैं। अपना यदि मारे भी तो भी छाया में रखता है। बौद्धों और जैनों के समय पहिले की सी बात न थी तो भी अयोध्या की इस समय दशा मुसल्मानों के राज्य से लाख गुनी अच्छी थी। क्योंकि दूसरों की राजधानी होने की अपेक्षा अपनों की दासी होना भी भला था, परन्तु विधाता को इतने पर भी संतोष नहीं हुआ इसके लिये और भी भयङ्कर समय उपस्थित

* हमारी जान में यह भी ठीक नहीं है।

कर दिया। प्रथम तो रघुवंशियों के विरह से यह आप ही मर रही थी दूसरे परस्पर की फूट ने इसे और भी हताश कर दिया था। वह घाव अभी तक सूखने भी न पाये थे जो राम-वियोग से इसके अर्चनीय और बन्दनीय शरीर में होने लगे थे, अकस्मात् महमूद गज़नवी के भाञ्जे सैयद सालार ने इस पर चढ़ाई कर 'जले पर नून' का सा असर किया। इसी सालार ने काशी के वृद्ध महाराज 'बनार' को धोखे से नष्ट कर काशी का स्वाधीन सुख अपहरण किया और इसीने अयोध्या को चौपट किया। कई लड़ाइयों के बाद सन् १०३३ में यह सालार हिन्दुओं के हाथ से बहराइच में मारा गया। 'गाज़ी मियाँ' के नाम से आजकल यही 'सालार' मूर्ख और पशुप्राय जीवित हिन्दुओं से पूजा करवा रहा है।

"किमाश्चर्य्यमतःपरम्।"

सन १५२६ ई० में बाबर ने हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की और दो वर्ष पीछे अर्थात सन १५२८ में अयोध्या के एक मात्र अवशिष्ट 'रामकोट' मन्दिर को विध्वंस कर रघुवंशियों की जन्म-भूमि पर अपने नाम से मसजिद बनवाई जो सही सलामत आजतक उसी तरह साभिमान खड़ी हुई है। मुसल्मान इतिहास-लेखकों ने बाबर को शान्त और दयालु बादशाह लिखा है; किन्तु बाबर की बर्बरता और अन्याय के हमारे पास अनेक प्रमाण हैं जिनको हम मर कर भी नहीं भूल सकते! अकबर के समय में धर्मप्रिय हिन्दुओं ने 'नागेश्वरनाथ' और चन्द्रहरि आदि देवों के दस पाँच मन्दिर ज्यों त्यों कर फिर बनवा लिये थे जिनको औरङ्गजेब ने तोड़ उनकी जगह मसजिद खड़ी की। सन १७३१ ई० में दिल्ली के बादशाह ने अवध के झगड़ालू क्षत्रियों से घबरा कर अवध का 'सूबा' सआदत खाँ को दिया तब से नवाबी की जड़ जमी।

अवध की नवाबी का बीज सआदत खाँ ने बोया था। मनसूर अली खाँ उपनाम सफ़दरजंग के समय वह अङ्कुरित और पल्लवित हुआ। नव्वाब

शुजाउद्दौला ने उसे परिवर्द्धित कर फल पाया। मनसूर अली खाँ के समय से अवध की राजधानी फ़ैज़ाबाद हुई। (फ़ैज़ाबाद वर्तमान अयोध्या से ३ मील पश्चिम ओर है)। अयोध्या की राजश्री फ़ैज़ाबाद के नाम से विख्यात हुई। यहाँ के मुसल्मान मुर्दों के लिये अयोध्या 'करबला' हुई, मन्दिरों के स्थान पर मसजिदों और मक़बरों का अधिकार हुआ, साधु सन्यासी और पुजारियों की जगह मुल्ला मौलवी और क़ाज़ी जी आरूढ़ हुये। अयोध्या का बिल्कुल स्वरूप ही बदल गया। ऐसी ऐसी आख्यायिका और मसनवी गढ़ी गईं जिनसे यह सिद्ध हो कि मुसल्मान औलिये फ़क़ीरों का यहाँ 'क़दीमी' अधिकार है। अब तक भी अयोध्या में 'मणिपर्वत' के पास नवाबी समय का दृश्य दिखलाई देता है। इसी समय नवाब सफ़दर जंग के कृपापात्र सुचतुर दीवान नवलराय ने अयोध्या में 'नागेश्वर नाथ महादेव' का वर्तमान मन्दिर बनवाया।

दिल्ली की बादशाही के कमज़ोर होने से अवध की नवाबी स्वतन्त्र हुई। दक्षिण में मरहठों का जोर बढ़ा। पंजाब में सिक्ख गरजने लगे। सबको अपनी अपनी चिन्ता हुई। प्राणों के लाले पड़ गये। इसी उलटफेर आर अन्धाधुन्ध के समय में हिन्दू-सन्यासियों ने अयोध्या में डेरा आ डाला। शनैः शनैः सरयू के तट पर साधुओं की झोपड़ी पड़ने लगीं। शनैः शनैः रामनाम की गूँज व मृदु मधुर ध्वनि से अयोध्या की वनस्थली गूँजने लगी। शाही परवानगी से छोटे छोटे मन्दिर बनने लगे। धीरे धीरे गोसाईं और स्वामियों के अनेक अखाड़े आ जमे और जहाँ तहाँ भस्मधारी हृष्ट-पुष्ट परमहंस और वैरागी दृष्टिगोचर होने लगे। अपने अपने नेता व गुरु की अधीनता में अलग अलग 'छावनी' के नाम सेइ नकी जमात की जमात रहने लगी। ये लोग आजकल के वैरागियों की तरह वृथा पुष्ट और विषयासक्त न थे। भगवद्भजन के साथ साथ भगवती योध्या के उद्धार की भी इन्हें चिंता थी। इस लिये कुश्ती करना,

हथियार बाँधना और विपत्ति के समय अपने बचाने को मुसल्मानों से लड़ना झगड़ना भी इनका कर्तव्य कार्य्य था।

यदि उस समय गुसाईं और बैरागियों में परस्पर ईर्ष्या और कलह की जगह प्रेम और सौहार्द होता तो ये लोग अपने किये हुये पुरुषार्थ के फल से वञ्चित न होते। यदि उस समय इन्हें सिक्खगुरु गोविन्दसिंह जैसा एक महाप्राण दूरदर्शी धर्मगुरु मिलता, तो ये लोग भी खाली भिखमंगे न होकर सिक्खों की तरह एक हिन्दू रियासत का कारण होते; पर विधाता को यह स्वीकार न था। इस लिये दरिद्र भारत में इनके द्वारा भिक्षुकों ही की संख्या-वृद्धि हुई। नवाब आसिफ़ुद्दौला के दीवान राजा टिकैतराय ने उस समय इनको बहुत कुछ सहारा दिया था। शाही खर्च से गढ़ीनुमा छोटे छोटे दृढ़तर कई मन्दिर भी बनवा दिये थे। प्रसिद्ध मन्दिर हनुमान गढ़ी भी इसी समय 'गढ़ी' के आकार में हुआ था। नवाब वाजिदअली शाह के समय अयोध्या में सब मिला कर तीस मन्दिर तैयार हो गये थे। अब कई सौ मन्दिर बन गये और प्रतिवर्ष इनकी संख्या बढ़ती ही चली जा रही है। परन्तु अभी तक अयोध्या में गृहस्थों का निवास नहीं हुआ। गृहस्थों के बिना पुरी कैसी, तथापि दिन दूनी रात चौगुनी अयोध्या की बाह्य शोभा बढ़ रही है, यह क्या कम आनन्द की बात है?

[सं १९०० के सुदर्शन के संपादक स्वर्गीय पं० माधवप्रसाद मिश्र के भ्राता पं० राधाकृष्ण मिश्र की आज्ञा से उद्धृत।]

चौथा अध्याय

आजकल की अयोध्या ।

अंगरेजी राज्य में अयोध्या पाँच छः हज़ार की आबादी का एक छोटा सा नगर सरयू नदी के बायें तट पर बसा है। इसका अक्षांश २६° २७′ उत्तर और देशान्तर लन्दन से ८२° १५′ पूर्व और बनारस से ७′ ३०″ पश्चिम है। परन्तु धार्मिक विचार से फ़ैज़ाबाद के अतिरिक्त और कई गाँव भी इसी के अन्तर्गत हैं। यह बात परिक्रमा से सिद्ध होती है जो किसी नगर की सीमा जानने के लिये सबसे उत्तम प्रमाण है।

यह परिक्रमा कार्तिक सुदी नवमी को की जाती है और सरयू के किनारे पर स्वर्गद्वार से आरम्भ होती है। यद्यपि परिक्रमा और कहीं से भी आरम्भ की जा सकती है, किन्तु जहाँ से आरम्भ की जाय वहीं अन्त होना चाहिये। स्वर्गद्वार से चल कर नदी के किनारे किनारे यात्री सात मील तक जाता है और वहाँ से मुड़ कर शाहनिवाजपूर और मुकारम-नगर * में से होता हुआ दर्शननगर में सूर्यकुण्ड पर ठहरता है। यह दर्शननगर बाजार के पास राजा दर्शन सिंह का बनाया हुआ सूर्य भगवान का सुन्दर सरोवर है। दर्शननगर से वह पश्चिम की ओर कोसाहा, मिर्ज़ापूर और बीकापूर से होता हुआ जनौरा को जाता है जो फ़ैज़ाबाद—सुल्तानपूर सड़क पर है।

यह गाँव अयोध्या से दक्षिण—पश्चिम में ७ मील पर और फ़ैज़ाबाद से दक्षिण की ओर १ मील पर है। इस गाँव में एक पक्का सरोवर है जिसे गिरिजाकुण्ड कहते हैं और एक शिवमन्दिर है। यह अयोध्या में एक पवित्र स्थान माना जाता है और बहुत से यात्री यहाँ प्रतिवर्ष कार्तिक में परिक्रमा करते हुये पूजा करने जाते हैं।

---

* इसका नाम नक़्शे में मुहस्सिमनगर है।

जिला फ़ैज़ाबाद के परगना हवेली अवध के एक भाग का नकशा ।
घाघरा नदी
सरयू नदी
कौसाहा
पयाग

इसे जनौरा (जनकौरा का अपभ्रंश) इस लिये कहते हैं कि जब महाराज जनक अयोध्या आते थे तो यहीं ठहरते थे। क्योंकि बेटी के घर हिन्दूलोग पानी तक नहीं पीते। इस गाँव में सूर्यवंशी ठाकुर रहते हैं जो अपने को रामचन्द्र जी के वंशज समझते हैं। उनके पूर्व-पुरुष कुलू पर्वत (पंजाब) से लाये गये थे। कहा जाता है कि जब राजा विक्रमादित्य ने अयोध्या को फिर से निर्माण कराना आरम्भ किया तो पण्डितों ने उन्हें रामचन्द्र जी के वंशजों को यज्ञ में भाग लेने के लिये बुलाने की सलाह दी थी। अन्यथा यज्ञ हो ही नहीं सकता था।

जनौरा से यात्री खोजनपुर और सिविल-लाइन के बीच में होता हुआ घाघरा के तट पर निर्मलीकुण्ड जाता है और वहाँ से गुप्तारघाट होता हुआ परिक्रमा को वहीं समाप्त कर देता है जहाँ से उसे आरम्भ करता है। इस प्रकार अयोध्या नगर की स्थिति निश्चित हुई।

अब हम अयोध्या के कुछ ऐतिहासिक स्थानों का वर्णन करेंगे। इन में सबसे अधिक उल्लेखनीय स्थान रामकोट (रामचन्द्र जी का दुर्ग) है। दुर्ग के भीतर बहुत अधिक भूमि है और प्राचीन पुस्तकों में लिखा है कि इस दुर्ग में २० फाटक थे और प्रत्येक फाटक पर रामचन्द्र जी के मुख्य मुख्य सेनापति रक्षक थे। इन गढ़-कोटों के नाम भी वही थे और हैं जो इन के रक्षकों के थे। इस दुर्ग के भीतर ८ राजप्रासाद थे जहाँ राजा दशरथ, उनकी रानियाँ और उनके बेटे रहते थे। अयोध्या माहात्म्य में निम्नलिखित अंश रामकोट के वर्णन में लिखा है।

"राजप्रासाद के मुख्य फाटक पर हनुमान जी का वास था और उनके दक्षिण में सुग्रीव और उसीके निकट अंगद रहते थे। दुर्ग के दक्षिण द्वार पर नल नील रहते थे और उनके पास ही सुषेण। पूर्व की ओर 'नवरत्न' नामक एक मन्दिर था और उसके उत्तर में गवाक्ष रहते थे। दुर्ग के पश्चिम द्वार पर दधिवक्र थे और उनके निकट शतवलि और कुछ दूर पर गन्धमान्दन, ऋषभ, शरभ और पनस थे। दुर्ग के उत्तर द्वार पर विभीषण

रहते थे और उनके पूर्व में उनकी स्त्री सरमा थी। उसके पूर्व में विघ्नेश्वर थे और उसके पूर्व में पिण्डारक रहते थे। उसके पूर्व में वीरमत्तगजेन्द्र का वास था। पूर्वीय भाग में द्विविद रहते थे और उसके उत्तर-पश्चिम में बुद्धिमान मयन्द रहते थे, दक्षिणी भाग में जाम्बवान और उनके दक्षिण में केसरी। यही दुर्ग की चारों ओर से रक्षा करते थे।"

इनमें से आज-कल ४ ही बचे हैं, हनुमान गढ़ी, सुग्रीव टीला, अङ्गदटीला और मत्तगजेन्द्र, जिसे सर्वसाधारण मातगेंड कहते हैं। हनुमान गढ़ी अब चार कोटवाला छोटा सा दुर्ग दिखाई पड़ता है। यह गढ़ी आसिफ़ुद्दौला के मन्त्री टिकैतराय के द्वारा पुराने स्थान पर बनी थी और एक बड़ी मूर्त्ति स्थापित की गयी थी। प्राचीन छोटी मूर्त्ति उसीके आगे स्थापित है।

अयोध्या प्रधानतः वैरागियों का घर है और हनुमान-गढ़ी उनका दृढ़ दुर्ग है। गढ़ी के वैरागी निर्वाणी अखाड़े के हैं और चार पट्टियों में विभक्त हैं। साधारण पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी समझते हैं कि वैरागी लोग बड़े उद्दण्ड होते हैं और उनका एक उद्देश्य खाओ पिओ और मस्त रहो है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। चेलों को पहिले बड़ी सेवा और तपस्या करनी पड़ती है। उनका प्रवेश १६ वर्ष की अवस्था में होता है यद्यपि ब्राह्मणों और राजपूतों के लिये वह बन्धन नहीं रहता। इन्हें और और भी सुविधायें हैं जैसे इन्हें नीच काम नहीं करना पड़ता। पहिली अवस्था में चेले को "छोरा" कहते और उसे ३ वर्ष तक मन्दिर और भोजन के छोटे छोटे बर्तन धोने को मिलते हैं, लकड़ी लाना होता है और पूजा-पाठ करना होता है। दूसरी अवस्था भी तीन वर्ष की होती है और इसमें उसे "बन्दगीदार" कहते हैं। इसमें उसे कुँये से पानी लाना पड़ता है, बड़े बड़े बर्तन माजने पड़ते हैं, भोजन बनाना पड़ता है और पूजा भी करनी पड़ती है। इसको इतने ही समय में (३ वर्ष) तीसरी अवस्था आरम्भ होती है जिसमें इसे "हुड़दंगा" कहते हैं। इसमें इसे मूर्त्तियों को भोग लगाना पड़ता है, भोजन
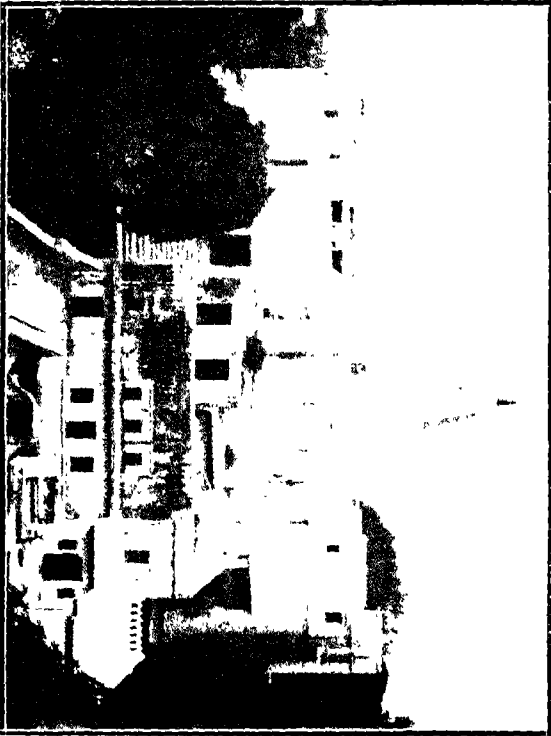
हनुमानगढ़ी

बाँटना पड़ता है जो दोपहर को मिलता है, पूजा करना पड़ता है और निशान या मन्दिर की पताका ले जाना पड़ता है। दसवें वर्ष में चेला उस अवस्था को जाता है जिसे "नागा" कहते हैं। इस समय वह अयोध्या छोड़ कर अपने साथियों के साथ भारतवर्ष के समस्त तीर्थों और पुण्य स्थानों का परिभ्रमण करने जाता है। यहाँ भिक्षा ही उसकी जीविका रहती है। लौट कर वह पाँचवी अवस्था में प्रवेश करता है और अतीत हो जाता है।

इस अवस्था में वह मृत्युपर्य्यन्त रहता है। अब इसे सिवाय पूजा-पाठ के कुछ काम नहीं करना पड़ता और उसे भोजन और वस्त्र मिलता है।

इससे स्पष्ट है कि वैरागी का काम बेकारी नहीं है। उसे नियम से धार्मिक-साधना करनी पड़ती है। वैरागी सदा से हिन्दू-धर्म के रक्षक रहे हैं, इन्हें परिवार का कोई बन्धन नहीं रहता और अपने धर्म के लिये जान देने को तैयार रहते हैं। लखनऊ म्यूजियम के एक चित्र से मालूम होता है कि हरद्वार में वैरागियों ने अकबर का कैसा विरोध किया था। सन् १८५५ ई० में अयोध्या में जब हिन्दू और मुसल्मानों में बड़ा झगड़ा हो गया था और मुसलमानों ने गढ़ी पर धावा भी किया था जिसे वे नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते थे तो वैरागी ही थे जिन्होंने उन्हें पीछे हटा दिया था। इन्होंने वही वीरता का काम तब भी किया था जब कुछ ही दिन बाद अमेठी के मौलवी अमीरअली ने धावा करने का फिर से प्रयत्न किया था। ये सदा से अपने धर्म के रक्षक रहे हैं और इन्ही ने अयोध्या को नष्ट होने से बचाया है। ये सिवाय देश के शासक और किसी से नहीं दबते, किन्तु जब दबाव हटा लिया जाता है तो फिर से स्वतन्त्र हो जाते हैं और दूसरे अवसरों पर ये उतने ही शान्त रहते हैं जैसे ईश्वर की सेवा में दत्तचित्त और कोई दूसरी धार्मिक संस्था वाले। उनमें अनेक ऊँचे कुल के हैं, बहुत से रिटायर्ड डिप्टी कलेक्टर और सबार्डिनेट जज हैं। आजकल जो सबसे बड़े महात्मा हैं उनका शुभनाम श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद है। वे रिटायर्ड डिप्टी

इन्सपेक्टर आफ़ स्कूल्स हैं। कविकुलदिवाकर सुधारक और भक्त-शिरोमणि तुलसीदास अयोध्या के स्मार्त वैष्णव थे। अभी मेरी याद में पन्ना रियासत के भूतपूर्व दीवान जानकीप्रसाद जो बाद में रसिकविहारी कहे जाते थे अयोध्या में आकर रहे और वैरागी होकर कनकभवन के महन्त हो गये। इन्हीं में से एक बाबा रघुनाथदास थे जो मेरे पिता के गुरु थे और जिन्होंने मेरा विद्यारम्भ कराया था; इन्हें भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों के लाखों हिन्दू देवता समझ कर पूजते थे। बाबा युगलानन्यशरण और उनके चेले बाबा जानकीवरशरण दोनों संस्कृत और फ़ारसी के बड़े विद्वान थे और बाबा युगलानन्यशरण जी बड़े कवि भी थे।

हम कह चुके हैं कि वैरागियों के कई अखाड़े हैं। "इन सातों अखाड़ों के नियमित क्रम हैं जिसके अनुसार ये बड़े बड़े मेलों और ऐसे ही अवसरों पर चलते हैं। पहिले दिगम्बरी रहते हैं, फिर उनके बाद निर्वाणी दाहिनी ओर, और निर्मोही बाईं ओर, तीसरी पंक्ति में निर्वाणियों के पीछे खाकी दाहिनी ओर, और निरालम्बी बाईं ओर। और निर्मोहियों के पीछे संतोषी और महानिर्वाणी। हर एक के आगे और पीछे कुछ स्थान खाली रहता है।"

वैरागियों के इस संक्षिप्त वर्णन से तात्पर्य केवल यही है कि आजकल नवशिक्षित युवकों में वैरागियों के प्रति जो कुविचार फैला हुआ है दूर हो जाय कि ये हरामखोर हैं और अन्धविश्वासी हिन्दू-जनता के दान से जीते हैं और उसे ही ठगते हैं। प्रत्येक संस्था में बुरे भी होते हैं किन्तु मैं विश्वास के साथ बिना प्रतिवाद के भय से कह सकता हूँ कि अयोध्या के वैष्णव वैरागी जैसा कि वे भगवान् रामचन्द्र के भक्त हैं वैसे उतने त्यागी संयमी भी हैं जितने संसार भर की और भी किसी धार्मिक संस्थाओं के पुरुष होंगे। मैं यह कह कर किसी का अपमान कदापि नहीं करना चाहता।

जन्मस्थान (बाबर) की मसजिद
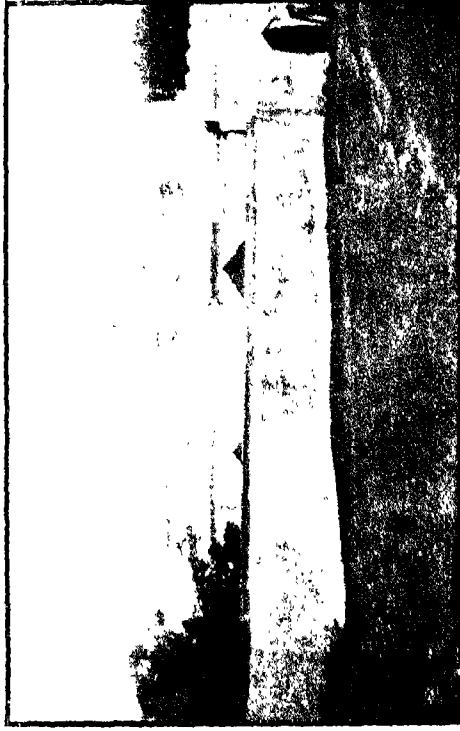
दूसरे और तीसरे कोट सुग्रीव-टीला और अङ्गद-टीला (कबीर-पर्वत) है। दोनों गढ़ी के दक्षिण में हैं। जेनरल कनिंघम का कथन है कि सुग्रीव-टीला उसी स्थान पर है जहाँ ह्वानच्वांग के अनुसार मणिपर्वत के दक्षिण पश्चिम में ५०० फ़ुट की दूरी पर एक बड़ा बौद्ध मठ था। पाँच सौ फ़ुट आगे वह स्तूप था जहाँ बुद्ध के नख और केश रक्खे गये थे। कनिंघम यह भी मानते हैं कि रामकोट और मणिपर्वत से कोई सम्बन्ध था और इन खण्डहरों का भी रामकोट से प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

इसके बाद दूसरा महत्व का स्थान जन्मस्थान है जहाँ बाबर ने १५२८ में एक मसजिद बनवाई थी जो आज तक उसके नाम से प्रसिद्ध है। जिस स्थान पर मन्दिर बना था उसे लोग यज्ञवेदी कहते हैं। कहा जाता है कि दशरथ ने यहीं पुत्रेष्टि-यज्ञ किया था। हम अपने बाल्य-काल में यहाँ से जले चावल खोदा करते थे।

विक्रमादित्य द्वारा अयोध्या के जीर्णोद्धार की चर्चा हो चुकी है। यह बात दन्तकथाओं के भी अनुकूल है और ऐतिहासिक अन्वेषणों से भी पता चलता है कि विक्रमादित्य के पहिले अयोध्या की दशा नष्टप्राय थी। क्योंकि यह सर्वसम्मत है कि कालिदास इन्हीं विक्रमादित्य के समय में हुये थे और वे इनकी सभा के नवरत्नों में से एक रत्न थे। हम यह मानते हैं कि रघुवंश के १६वें सर्ग में जो कुश के द्वारा अयोध्या की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करने की चर्चा है वह कदाचित् गुप्तों की राजधानी उज्जैन से (पाटलिपुत्र से नहीं) हटा कर चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा अयोध्या ले जाने की बात है * और यज्ञवेदी वही स्थान है, जहाँ यज्ञ हुआ था जब कि चावल और घी का आज का सा चढ़ा भाव नहीं था। यज्ञवेदी भगवान् रामचन्द्र का जन्म स्थान हो सकती है, किन्तु यह मेरा दृढ़ मत है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने भी से फिर से इसे यज्ञ करा कर पवित्र किया था। रामचन्द्र जी के पुराने मन्दिर में थोड़ा ही हेर फेर हुआ है।

---

* इसका पूरा वर्णन अध्याय १० में है।

मसजिद में जो मध्य का गुम्बज है वह प्राचीन मन्दिर ही का मालूम होता है और बहुत से स्तम्भ भी अभी ज्यों के त्यों खड़े हैं। ये सुदृढ़ काले कसौटी के पत्थर के बने हुये हैं। खम्भे सात से आठ फ़ुट तक ऊँचे हैं, और नीचे चौकोर हैं और मध्य में अठकोने।

उस झगड़े के बाद जिसका वर्णन अध्याय १४ में है, हिन्दुओं ने मसजिद का आँगन ले लिया और वहाँ एक वेदी बनवा दी। अब एक दीवार खींच दी गई है जिससे कि मसजिद के नमाज पढ़ने वाले मुसलमानों और बाहर वेदी पर पूजा करने वाले हिन्दुओं में झगड़ा न हो।

वेदी के पास ही कनकभवन है जिसे सीता जी का महल कहते हैं। वहाँ पर सीताराम की दो प्रतिमायें प्राचीन हैं। भगवान् रामचन्द्र की प्रतिमा को कनकभवन-विहारी कहते हैं और यह प्रतिमा अयोध्या की इस ढङ्ग की मूर्त्तियों में सब से सुन्दर है। हमारे लड़कपन में यह छोटा सा मन्दिर था किन्तु अब टीकमगढ़ बुन्देलखण्ड के महाराज ने बहुत रुपया व्यय करके एक विशाल मन्दिर बनवा दिया है।

अब हम प्राचीन नगर के ऐतिहासिक मन्दिर त्रेता के ठाकुर पर आते हैं। इसे कूलू (पंजाब) के राजा ने जो जनौरा के ठाकुरों के जैसा कि ऊपर कहा गया है पूर्वपुरुषों में से थे, प्राचीन भग्नावशेष मन्दिर के स्थान पर बनवाया था और फिर इन्दौर की प्रख्यात रानी अहिल्याबाई ने उसमें कुछ सुधार किये थे। कहते हैं कि नौरंगशाह की टूटी हुई मसजिद रामदर्बार के स्थान से बनवाई गई थी। किन्तु फिर किसी ने इस मन्दिर को नहीं बनवाया।

सरयू के तटपर सब से पहिले पश्चिम की ओर लक्ष्मण जी का मन्दिर और लछमन घाट मिलता है, जहाँ कहते हैं कि लक्ष्मण जी ने स्वर्गारोहण किया। मन्दिर में जो मूर्त्ति है वह लक्ष्मण जी के गोरे रंग की नहीं है किन्तु ५ फ़ुट ऊँची चतुर्भुजी काले पत्थर की बनी हुई है। यह सामने के कुण्ड में मिली थी और माना यह गया कि यह काली जी की

नागेश्वरनाथ का मन्दिर
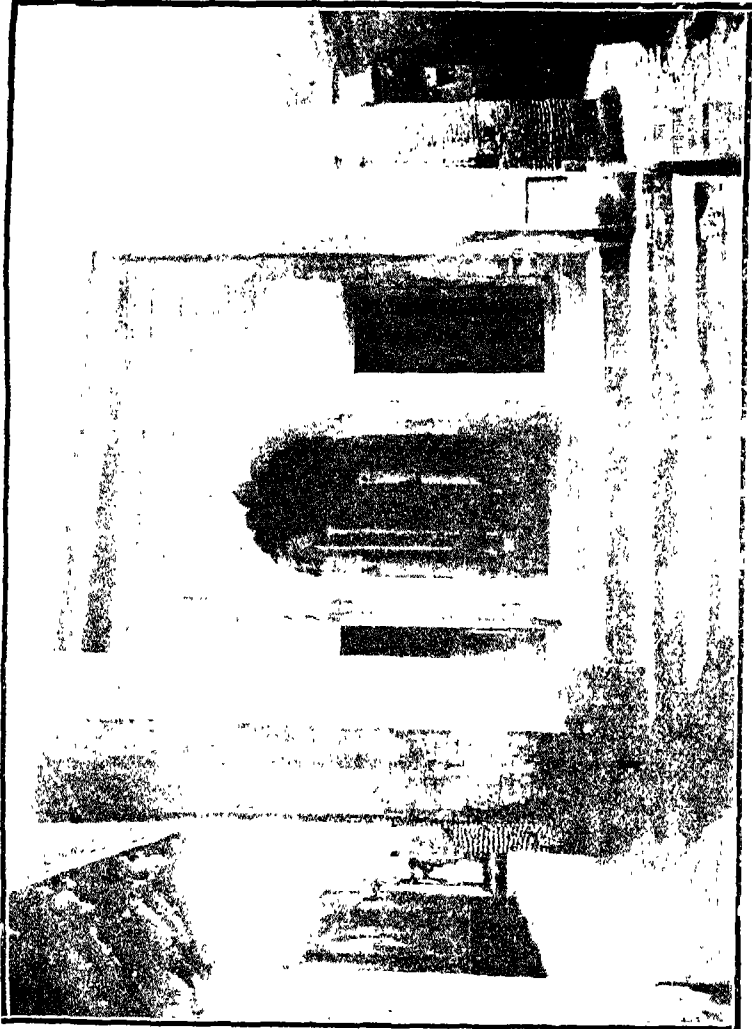
मूर्त्ति है। किन्तु उसके हाथ में चक्र है इससे यह अनुभव हुआ कि वह लक्ष्मण जी की ही मूर्त्ति है, क्योंकि लक्ष्मण धरा के आधार शेष के अवतार हैं और शेष कृष्ण वर्ण हैं। नागपञ्चमी के अवसर पर अयोध्या के निवासी अन्य किसी नाग की पूजा न करके यहीं भगवान् शेष के अवतार लक्ष्मण जी को लावा (खील) चढ़ाते हैं।

फिर सुन्दर घाट और पत्थर की सीढ़ियों पर चलते हुये, जिन्हें राजा दर्शनसिंह ने बनाया था हम नागेश्वरनाथ जी के ऐतिहासिक मन्दिर पर पहुँचते हैं। इसी मूर्त्ति के द्वारा और सरयू के द्वारा विक्रमादित्य ने अयोध्या का पता लगाया था। यह शिवजी की बहुत पुरानी मूर्त्ति है। कहते हैं कि भगवान् रामचन्द्र के पुत्र कुश ने इसे स्थापित किया था। कुश का अंगद (बाँह का भूषण) सरयू में गिर पड़ा था और वह पाताल में चला गया जहाँ नागलोक के राजा की कन्या ने उसे उठा लिया। महाराज कुश ने नागों को नष्ट करना चाहा तब महादेवजी इन दोनों में मेल कराने आये थे। कुश ने उनसे प्रार्थना की कि आप यहीं रहें और यह नियम करा दिया कि बिना नागेश्वरनाथ की पूजा किये किसी यात्री को अयोध्या आने का फल न होगा।

नागेश्वरनाथ जी के पास ही उत्तर की ओर गली में एक ओर देखने योग्य मन्दिर है। वहाँ एक ही काले पत्थर में चारों भाइयों की मूर्त्तियां खुदी हैं और बीच में सीता जी की मूर्ति है। कथा प्रसिद्ध है कि बाबर ने जन्म-स्थान का मन्दिर नष्ट कर दिया तो हिन्दू इसे उठा लाये थे। इसका सविस्तार वर्णन अध्याय १३ में है।

फिर बड़ी सड़क पर आ जायँ तो हमें बहुत से मन्दिर मिलेंगे। यहीं विक्टोरिया पार्क है जिसमें राजराजेश्वरी विक्टोरिया की मूर्त्ति एक मण्डप के नीचे स्थापित है। कुछ बायें पर पुराना स्कूल है जिसे महाराज की कचहरी कहते हैं। इसमें हमने प्रारंभिक शिक्षा पाई थी। फिर दाहिनी ओर काशी के सुप्रसिद्ध रईस राजा मोतीचन्द के पितामह

भीखूमल का मन्दिर है और उसके आगे हमारी सुसराल का मन्दिर सीसमहल है। यह मन्दिर रायदेवी प्रसाद जी ने नव्वे वर्ष हुये बनवाया था। महाराज अयोध्या नरेश के नायब राय राघोप्रसाद जी के समय तक यह मन्दिर अयोध्या के सुप्रसिद्ध मन्दिरों में गिना जाता था। आजकल इसकी दशा शोचनीय है।

इससे कुछ दूर आगे चलकर पुलीस स्टेशन (कोतवाली) है और कुछ दूर दक्षिण शृंगारहाट नाम का बाज़ार है। और उसके पश्चिम महाराज अयोध्यानरेश का महल (राजसदन) और बाग हैं। बाग के दक्षिण भाग में एक सुन्दर शिवालय है। इसे ८० वर्ष हुये राजा दर्शनसिंह ने बनवाया था और इसीलिये दर्शनेश्वर का मन्दिर कहलाता है। अवध गजेटियर लिखता है आजकल अवध भर में इससे बढ़कर सुन्दर शिवालय नहीं है। * यह मन्दिर बढ़िया चुनार के पत्थर का बना हुआ है और बहुत सा नक़शी काम मिर्ज़ापूर में बनकर यहाँ लाया गया था। शिवलिंग नर्मदा के पत्थर का है। इसका दाम २५०) दिया गया था। संगमर्मर की मूर्तियां जयपूर से मंगाई गई थीं। पहिले यह विचार था कि नैपाल से घंटा मंगवाकर यहाँ लटकाया जाय। परन्तु घंटा राह ही में टूट गया। तब उसी नमूने का घंटा अयोध्या में बनवाया गया। वह भी स्थानीय कारीगरी का अच्छा नमूना है।

राजसदन के दक्षिण खुले मैदान में "तुलसी चौरा" है जहाँ साढ़े-तीन सौ वर्ष पहिले गोस्वामी तुलसीदास जी रहते थे और जहाँ चैत्र शुल्क ९ संवत १९३१ को रामचरितमानस प्रकाश किया गया था। यहाँ से एक मील से कुछ कम की दूरी पर दक्षिण में मणिपर्वत है। जेनरल कनिंघम का कथन है कि मणिपर्वत ६५ फुट ऊँचा टूटी फूटी ईंटों और कंकड़ों का टीला है। सर्वसाधारण उसे आजकल "ओड़ा-

---

* Oudh Gazetteer Vol. I, page 12.

अयोध्यानरेश का राजसदन ।
दर्शनेश्वरनाथ का मन्दिर पीछे बाग़ में देख पड़ता है ।
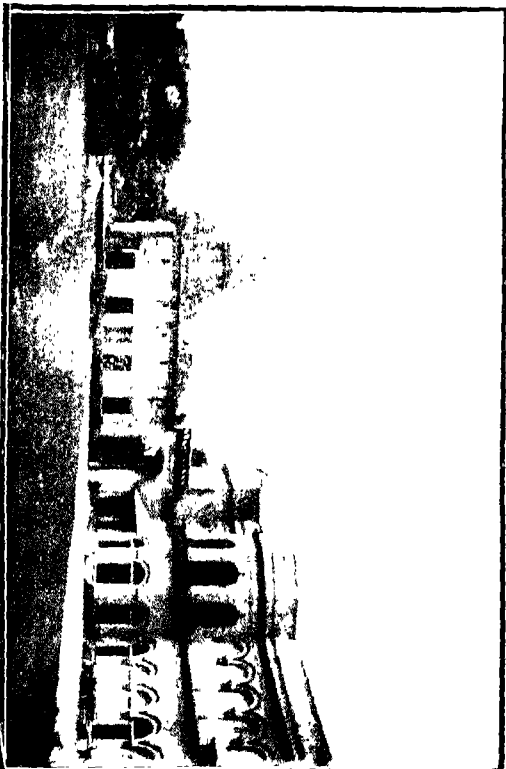
झार" या "झौवा झार" कहते हैं जिससे यह सूचित होता है कि रामकोट के बनानेवाले मजदूरों के टोकरों का झाड़न है। जेनरल कनिंघम का यह कहना है कि यह २०० फ़ुट ऊँचे एक स्तूप का भग्नावशेष है और वहीं बना हुआ है जहाँ बुद्धदेव ने अपने ६ वर्ष के निवास में धर्म का उपदेश दिया था। उनका अनुमान है कि नीचे की भूमि शायद बौद्धों के समय के पूर्व की हो और पक्का स्तम्भ अशोक ने बनवाया था। किन्तु हिन्दुओं का विश्वास है कि जब लक्ष्मण जी को शक्ति लग गई और हनुमान जी उस शक्ति के घात से लक्ष्मण को बचाने के लिये संजीवन मूल लेने हिमालय गये और पर्वत को लेकर लौट रहे थे तो उसका एक ढोंका यहीं गिर पड़ा था। दूसरा कथन यह भी है जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि जब रामकोट के मज़दूर काम कर चुकते तो अपनी टोकरियों का झाड़न यहीं फेंक देते थे जिसका ढेर यही मणिपर्वत है।

हम दतून-कुंड का वर्णन कर ही चुके हैं। दूसरा ऐतिहासिक स्थान सोनखर है। रघुवंश के पाठक जानते ही हैं कि रघु को एक ब्राह्मण को बहुत सा सुवर्ण देना था जब कि उनका कोश खाली हो चुका था। उन्होंने ठान लिया कि कुबेर पर चढ़ाई कर के उससे इतना सुवर्ण प्राप्त कर लेना चाहिये। कुबेर ने डर के मारे रात में यहीं सुवर्ण की वर्षा कर दी।

अयोध्या में नवाब वज़ीरों के राज से आजतक हज़ारों मन्दिर बने और नित नये बनते जाते हैं। इनका सविस्तर वर्णन श्री अवध की झाँकी में दिया जायगा जो तैयार हो रही है।

पाँचवाँ अध्याय।

अयोध्या के आदिम निवासी।

अयोध्या या कोशलराज के आदिम निवासी कौन थे इसका पता नहीं लगता। पुरातत्व-विज्ञान और जनश्रुति दोनों इस विषय में चुप हैं। वाल्मीकीय रामायण और पुराणों से विदित है कि इस पृथ्वी के पहिले राजा मनु वैवस्वत थे।* उनके पुत्र इक्ष्वाकु से सूर्यवंश चला और उनकी बेटी इला से चन्द्रवंश की उत्पत्ति हुई। मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु के लिये अयोध्या नगरी बसाई † और उसे कोशला की राजधानी बनाकर इक्ष्वाकु को उसका राजा बनाया। इक्ष्वाकु के वंशजों ने भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में अनेक राज्य स्थापित किये। परन्तु इक्ष्वाकु की प्रजा कौन थी? यह कौन मानेगा कि प्रजा भी इक्ष्वाकुवंश की रही। पाश्चात्य विद्वान इस देश के मूल निवासियों को द्रविड़ कहते हैं। परन्तु डाक्टर विन्सेण्ट स्मिथ ने अपनी अर्ली हिस्ट्री आफ़ इण्डिया (Early History of India) के पृष्ठ ४१३ में लिखा है कि द्रविड़ शब्द बड़ा ही भ्रमोत्पादक है। इस में सन्देह नहीं कि इस देश में कुछ ऐसे लोग भी रहते थे जो ढोर डंगर पालते थे। हम लोग पुराणों और वेदों में देवों और असुरों का निरन्तर संग्राम पढ़ते हैं। भारत के आर्य कभी लोहू के प्यासे न थे और न उनके साथ ऐसे संक्राम रोग चलते थे जिन से विजित लोग नष्ट हो जाते थे और आप बचे रहते थे। मूल निवासी दबा दिये गये परन्तु जो

---

* वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीन्महीभृतामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव॥ (रघुवंश सर्ग १)

† अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण सा पुरी निर्मिता स्वयम्॥ (वा० रा० बालकांड)

शांति से रहना चाहते थे उनके लिये कोई बाधा न थी। सुरों को जो कदाचित् हिमालय प्रान्त के रहने वाले थे * कभी कभी असुरों से लड़ना पड़ता था। कभी कभी असुर ऐसे प्रबल हो जाते थे कि सुरों को पृथिवी (भारत के मैदान) के राजा दशरथ और दुष्यन्त से सहायता माँगनी पड़ी थी। किन्तु हमने कभी नहीं सुना कि असुर नष्ट होगये। यही दशा कोशल के आदिम निवासियों की रही। असुर कहीं चाण्डाल, कहीं दस्यु, कहीं राक्षस और कहीं पिशाच कहलाते हैं। इन्हीं में से एक जाति डोम है। अध्याय ११ में लिखा है कि ईसवी सन् की तेरहवीं शताब्दी में सरयूपार डोमनगढ़ का डोम राजा था जिसे अयोध्या के श्रीवास्तव्य राजा जगतसिंह ने मारा था। मिस्टर नेसफ़ील्ड ने अपने ब्रीफ़ रिव्यु आफ़ दी कास्ट सिस्टम आफ़ दी नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज़ ऐण्ड अवध (Brief Review of the Caste System of the North-Western Provinces and Oudh) पृष्ठ १०१ में लिखा है, कि "उजड़ी गढ़ियों, उनके नामों और उनके विषय में जनश्रुतियों से प्रकट होता है कि डोम, डोमकटर, डोमड़े या डोवर हिन्दुस्तान में किसी समय में बड़े शक्तिशाली थे। विशेष कर के घाघरा के उत्तर के ज़िलों में . . . इन में कुछ तो भाट और ब्राह्मणों को मिला कर और पक्के हिन्दुओं के आचार विचार सीख कर छत्री बन गये, शेष उनसे बहुत ही नीचे दर्जे पर पड़े रहे। कुछ भंगी बने, कुछ धरकार या बंसफोड़ होगये। कुछ तुरहा हुये, कुछ धोबी का काम करने लगे, कुछ धानुक होकर धनुष बनाने लगे। इनमें जो मुसल्मान होगये वे कमङ्गर (कमान बनानेवाले) कहलाये। कुछ मुसल्मान होकर डोम मीरासी बन गये। इस जाति में जो शेष बचे वह घिने काम करते हैं जैसे कुत्ते खाना और जीतों को मारना (जल्लादी)। परन्तु कुमाऊँ में इस जाति के कुछ अच्छे अंश बचे हैं और कारीगरी के काम करते हैं जैसे राजगीरी

* पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः (कुमारसंभव)।

और बढ़ई का काम। इसीसे अनुमान किया जा सकता है कि नीचे के देश में भी जो लोग ऐसे उद्यम करते हैं वे भी पहिले इसी जाति के थे।"

दूसरी जाति जो अबतक प्रबल रही है भरों की है। इनमें कुछ रज-भर कहलाते हैं जिनके नाम ही से प्रकट है कि इस जाति के लोग पहिले राजा थे। अवध प्रान्त में अब भी भरों के गढ़ों के भग्नावशेष पाये जाते हैं। "मलिक मुहम्मद जायसी" * शीर्षक अंग्रेजी लेख में हमने लिखा है कि गढ़ अमेठी और जायस जिसका प्राचीन नाम उद्यनगर (या उद्यान नगर) था दोनों पहिले भरों के अधिकार में थे।

अवध गज़ेटियर में लिखा है कि भर जाति के लोग अवध के पूर्व जिलों में इलाहाबाद और मिर्ज़ापूर में पाये जाते हैं। कुछ लोग इनको क्षत्रिय समझते हैं परन्तु हमको इसमें सन्देह है। ऐसा जान पड़ता है कि अवध के पश्चिम में पासी, अवध के पूर्व और मध्य में भर और गोरखपूर और बनारस के कुछ भाग में (जो पहिले कोशल ही के अन्तर्गत थे) चीरू एक ही समय में राज करते थे। हज़ारों वर्ष पहिले आर्यों ने इनको आधीन कर लिया था। इन्हें मारकर उत्तर या दक्षिण के पहाड़ी प्रान्तों में भगा दिया था और जब सूर्यवंश की घटती के दिन आये तो ये फिर प्रबल हो गये। प्रश्न यह उठता है कि यह लोग अब चोर डाकुओं में क्यों गिने जाते है? उत्तर स्पष्ट है। यह लोग बड़े वीर और स्वतंत्रता देवी के भक्त पुजारी थे परन्तु आर्यों के हथियारों और उनके युद्ध-कौशल से इन्हें हार जाना पड़ा। जब विजेता इनको सताते थे तो यह लोग भी उनको लूट लिया करते थे। यही करते करते अब उनकी बान सी पड़ गई है और हज़ारों वर्ष की निरन्तर घटती से अब यह लोग चोरी डकैती में पक्के हो गये और अब उनका यही धंधा रह गया। अवध गज़ेटियर में लिखा है कि मिर्ज़ापूर के पूर्व के पहाड़ी प्रान्त में अब तक भर राजा है। सर हेनरी इलियट ने लिखा है कि यहाँ यह लोग रजभर और भर-

* Allahabad University Studies, Vol. VI, Part I, page 326.

पतवा कहलाते हैं और किसी समय गोरखपूर से बुन्देलखण्ड तक इनके राज में था। कई स्थान पर पुरानी गढ़ियों के खंडहर अब भी देखे जाते हैं। जिन्हें लोग भरों की गढ़ियाँ बतलाते हैं। जिस धुस, टीले, तलाब या मन्दिर के जड़मूल का पता नहीं लगता वह भरों का बनवाया कहा जाता है। शेरिङ्ग ने अपने हिन्दू कास्टस (Hindu Castes) में लिखा है कि मिर्ज़ापूर के पास पहिले पंपापुर नगर बसा था जिसमें अब भी भरों के समय के कुछ खुदे पत्थर पड़े हैं। इनपर जो मूर्त्तियाँ हैं उनके चेहरे मंगोलियन हैं और दाढ़ी नोकदार है। आज़मगढ़ में अब भी जन-श्रुति है कि श्रीरामचन्द्र जी के समय में इस प्रान्त में रजभर और असुर रहते थे जो कोशलराज के अधीन थे। भरों की गढ़ियों के भग्नावशेष अब भी आज़मगढ़ के पास हरवंशपूर और ऊँचगाँव में और घोसी में देखे जाते हैं। निज़ामबाद परगने में अमीननगर के पास हरीबन्ध भरों का बनवाया कहा जाता है। ग़ाज़ीपूर के उत्तर सदियाबाद, पचोतर, जहूराबाद और लखनेसर परगने भरों के अधिकार में थे। सुल्तानपूर से मिला हुआ कुशभवनपूर बहुत दिनों तक भरों की राजधानी रहा और उनके अधिकार में अवध का सारा पूर्वी भाग था। बहराइच भी भरैच का आधुनिक रूप है। यहीं से भर दक्षिण की ओर फैले थे।"

मिर्ज़ापूर के परगना भदोही का मूलरूप भरदही है। यहाँ अनेक गढ़ियाँ और तलाव भरों के बनवाये बताये जाते हैं। इनमें विशेषता यह है कि सब सूर्यबेधी हैं अर्थात् पूर्व-पश्चिम लम्बे होते हैं। आर्यों के ताल चन्द्रबेधी होते हैं और उत्तर-दक्षिण लम्बे रहते हैं। भरों की बनवाई गढ़ियों की ईंटें १९ इंच लम्बी ११ इंच चौड़ी और २½ इंच मोटी पाई जाती हैं, और जहाँ मिलती हैं उन्हें आजकल भरडीह कहते हैं।

इन्हीं आदिमनिवासियों में एक पासी है। पासी विशेषकर अवध और उससे मिले हुये जिलों में पाये जाते हैं जैसे इलाहाबाद,

बनारस और शाहजहाँपूर। पासी बड़े लड़नेवाले और प्रसिद्ध चोर हैं। पहिले पासी लोग सिपाहियों में भरती होते थे अब भी अधिकांश गाँव के चौकीदार हैं। "नवाबी में अवध के पासी तीर चलाने में बड़े सिद्धहस्त थे और सौ गज़ का निशाना मार लेते थे। किसी प्रकार की चोरी या डकैती ऐसी नहीं जो वे न करते हों।" पासियों में एक वर्ग रजपासी है जिसके नाम ही से प्रकट है कि यह लोग पहिले राजा थे।

ऐसी ही एक जाति थारू की है। थारू आजकल तराई में रहते हैं जहाँ कदाचित क्षत्रियों के डर के मारे जाकर बसे हैं। थारू मांस खाते मद्य पीते फिर भी बड़े डरपोक होते हैं। जिन बनों में थारू बस गये हैं वहाँ की आब-हवा मैदान के रहनेवालों के लिये प्राणघातक हैं। यद्यपि थारू यहाँ सुख से रहते हैं तो भी इनका स्वास्थ्य देखने से यह अनुमान किया जाता है कि तराई की आब-हवा ने इन्हें ऐसा दुर्बल कर दिया है।

इनके अतिरिक्त कितनी पुरानी जातियाँ आर्यों के बीच में रहकर उनसे मिलजुल गयी हैं।

छठा अध्याय।

वेदों में अयोध्या

वेदत्रयी में स्पष्ट रूप से न कोशल का नाम आया है न उसकी राजधानी अयोध्या का। * अथर्ववेद के द्वितीय खण्ड में लिखा है :—

अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूः अयोध्या;
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।

[देवताओं की बनाई अयोध्या में आठ महल, नवद्वार और लौहमय धन-भण्डार है, यह स्वर्ग की भाँति समृद्धिसंपन्न है।]

ऋग्वेद मं० १०,६४, ९ में सरयू का आह्वान सरस्वती और सिन्धु के साथ किया गया है और उससे प्रार्थना की गई है कि यजमान को तेज बल दे और मधुमन् घृतवत् जल दे।

सरस्वतीः सरयुः सिन्धुरूर्मिभिः महोमही रवसायंतु वक्षणीः,
देवी रायो मातरः सूदयित्न्वो घृतवतपयो मधुमन्नो अर्चत।

इससे प्रकट है कि हमारे देश के इतिहास के इतने प्राचीन काल में भी सरयू की महिमा सरस्वती से घट कर न थी। पंजाब की दो नदियों के

---

* इसका हमें कोई सन्तोषजनक कारण नहीं मिलता। प्रसिद्ध विद्वान् मिस्टर पार्जिटर का मत है कि बड़े बड़े राजाओं को अपने बाहुबल और अपनी बड़ी बड़ी सेनाओं पर भरोसा था और उन्हें उस दैवी सहायता की परवाह न थी जो ऋषि लोग उनको दिला सकते थे। पुराणों में इतना ही लिखा है कि वे राजा लोग बड़े दानी और बड़े यज्ञ करनेवाले थे परन्तु ऋषियों ने उनके नाम के कोई मंत्र नहीं छोड़े। कोशल के राजाओं के विषय में यह कोई नहीं कह सकता कि कोई ऋषि उनके दर्बार में न था क्योंकि वसिष्ठ जिनके और जिनके शिष्यों के नाम अनेक मंत्र हैं सूर्यवंश के कुलगुरु थे।

साथ सरयू का नाम आने से कुछ विद्वान यह अनुमान करते हैं कि इस नाम की एक नदी पंजाब में थी परन्तु हमें यह ठीक नहीं जंचता।

शतपथ ब्राह्मण में कोशल का नाम आया है और ऋग्वेद में कोशल के सूर्यवंशी राजाओं का कहीं कहीं नाम है। ऋग्वेद मं० १०, ६०, ४ का ऋषि राजा असमाती और देवता इन्द्र हैं।

यस्येक्ष्वाकुरुपव्रते रेवान्मराय्येधते। दिवीव पंच कृष्टयः॥

इसमें इक्ष्वाकु या तो पहिला राजा है या उसका कोई वंशज। और वह इन्द्र की सेवा में ऐसा धनी और तेजस्वी है जैसे स्वर्ग में पाँच कृष्टियाँ (जातियाँ) हैं।

इक्ष्वाकु से उतर कर बीसवीं पीढ़ी में युवनाश्व द्वितीय का पुत्र मान्धातृ हुआ। वह दस्युवों का मारनेवाला बड़ा प्रतापी राजा था और ऋग्वेद मं० ८,३९, ९ में अग्नि से उसके लिये प्रार्थना की जाती है। वह मंत्र यह है:—

'यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिंधुषु।
तमागन्म त्रिपस्त्य मंधातुर्दस्युहन्तममग्निपदेषु
पूर्वं नभंतामन्यके समे।'

ऋग्वेद मं० ८, ४०, १२ में मान्धातृ अंगिरस् के बराबर ऋषि माना गया है।

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदंगिर स्वदवाचि।
विधातुना शर्मणां पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणां॥

इसके आगे ऋग्वेद मं० १०, १३४ का ऋषि यही यौवनाश्व मान्धता है। उस सूक्त का अन्तिम मंत्र यह है:—

नकिर्देवा मनीमसि नकिरायो पयामसि, मंत्रश्रुत्यं चरामसि।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि संरभामहे।

इसको ध्यान से पढ़िये तो ऋषि का अच्छा शासक होना प्रकट होता है। वह केवल अपने वैरियों का विनाश नहीं चाहता वरन् यह भी कहता है कि हम उन दोषों से मुक्त रहें जिनके कारण राजा लोग अपने धर्म से विचलित होते हैं। इन मंत्रों में नाम कहीं मन्धातृ और कहीं मान्धातृ है परन्तु दोनों के एक होने में सन्देह नहीं।

सातवाँ अध्याय ।

पुराणों में अयोध्या

(क) सूर्यवंश

अयोध्या सूर्यवंशी राजाओं की राजधानी है। इस राजवंश में विचित्रता यह है कि और जितने राजवंश भारत में हुये उनमें यह सबसे लम्बा है। आगे जो वंशावली दी हुई है उसमें १२३ राजाओं के नाम हैं जिनमें से ९३ ने महाभारत से पहिले और ३० ने उसके पीछे राज्य किया। जब उत्तर भारत के प्रत्येक राज्य पर शकों, पह्लवों और काम्बोजों के आक्रमण हुये और पश्चिमोत्तर और मध्य देश के सारे राज्य परास्त हो चुके थे तब भी कोशल थोड़ी ही देर के लिये दब गया था और फिर संभल गया। कोई राजवंश न इतना बड़ा रहा न अटूट क्रम से स्थिर रहा जैसा कि सूर्यवंश रहा है और न किसी की वंशावली ऐसी पूर्ण है, न इतनी आदर के साथ मानी जाती है। प्रसिद्ध विद्वान पार्जिटर साहब का मत है कि पूर्व में पड़े रहने से कोशलराज उन विपत्तियों से बचा रहा जो पश्चिम के राज्यों पर पड़ी थीं। हमारा विचार यह है कि सैकड़ों बरस तक कोशल के शासन करनेवाले लगातार ऐसे शक्तिशाली थे कि बाहरी आक्रमणकारियों को उनकी ओर बढ़ने का साहस नहीं हुआ और इसी से उनकी राजधानी का नाम "अयोध्या" या अजेय पड़ गया। पूर्व में रहने अथवा युद्ध के योग्य अच्छी स्थिति से उनका देश नहीं बचा। महाभारत ऐसा सर्वनाशी युद्ध हुआ जिससे भारत की समृद्धि, ज्ञान, सभ्यता आदि सब नष्ट हो गये और उसके पीछे भारत में अन्धकार छा गया। सब के साथ सूर्यवंश की भी अवनति होने लगी और जब महापद्मनन्द के राज में या उसके कुछ पहिले क्रान्ति हुई तो कोशल शिशुनाक राज्य के अन्तर्गत हो गया। महाभारत में भी कोशलराज ने

अपनी पुरानी प्रतिष्ठा के योग्य कोई काम नहीं कर दिखाया जिसका कारण कदाचित् यही हो सकता है कि जरासन्ध से कुछ दब गया था।

बेण्टली साहेब ने ग्रहमंजरी के अनुसार जो गणना की है उससे इस वंश का आरम्भ ई० पू० २२०४ में होना निकलता है। मनु सूर्यवंश और चन्द्रवंश दोनों के मूल-पुरुष थे। सूर्यवंश उनके पुत्र इक्ष्वाकु से चला और चन्द्रवंश उनकी बेटी इला से। मनु ने अयोध्या नगर बसाया और कोशल की सीमा नियत करके इक्ष्वाकु को दे दिया। इक्ष्वाकु उत्तर भारत के अधिकांश का स्वामी था क्योंकि उसके एक पुत्र निमि ने विदेह जाकर मिथिलाराज स्थापित किया दूसरे दिष्ट या नेदिष्ट ने गण्डक नदी पर विशाला राजधानी बनाई। प्रसिद्ध इतिहासकार डंकर ने महाभारत की चार तारीखें मानी हैं, ई० पू० १३००, ई० पू० ११७५, ई० पू० १२०० और ई० पू० १४१८, परन्तु पार्जिटर उनसे सहमत नहीं हैं और कहते हैं कि महाभारत का समय ई० पू० १००० है। उनका कहना है कि अयुष, नहुष और ययाति के नाम ऋग्वेद में आये हैं; ये ई० पू० २३०० से पहिले के नहीं हो सकते। रायल एशियाटिक सोसाइटी के ई० १९१० के जर्नल में जो नामावली दी है उनके अनुसार चन्द्रवंश का अयुष, सूर्यवंश के शशाद का समकालीन हो सकता है और ययाति अनेनस् का। पार्जिटर महाशय का अनुमान बेण्टली के अनुमान से मिलता जुलता है। परन्तु महाभारत का समय अब तक निश्चित नहीं हुआ। राय बहादुर श्रीशचन्द्र विद्यार्णव ने "डेट अव महाभारत वार" (Date of Mahabharata War) शीर्षक लेख में इस प्रश्न पर विचार किया है और उनका अनुमान यह है कि महाभारत ईसा से उन्नीस सौ बरस पहिले हुआ था।

अब हम सूर्यवंशी राजाओं के नाम गिनाकर उनमें जो प्रसिद्ध हुये उनका संक्षिप्त वृत्तान्त लिखते हैं।

अयोध्या के सूर्यवंशी राजा

(महाभारत से पहिले)

१ मनु
२ इक्ष्वाकु
३ शशाद
४ ककुत्स्थ
५ अनेनस्
६ पृथु
७ विश्वगाश्व
८ आर्द्र
९ युवनाश्व १म
१० श्रावस्त
११ बृहदश्व
१२ कुवलयाश्व
१३ दृढ़ाश्व
१४ प्रमोद
१५ हर्यश्व १म
१६ निकुम्भ
१७ संहताश्व
१८ कृशाश्व
१९ प्रसेनजित
२० युवनाश्व २य
२१ मान्धातृ

२२ पुरुकुत्स *
२३ त्रसदस्यु
२४ सम्भूत
२५ अनरण्य
२६ पृषदश्व
२७ हर्यश्व २य
२८ वसुमनस्
२९ तृधन्वन्
३० त्रैयारुण
३१ त्रिशंकु
३२ हरिश्चन्द्र
३३ रोहित
३४ हरित
३५ चंचु (चंप, भागवत के अनुसार)
३६ विजय
३७ रुरुक
३८ वृक
३९ बाहु
४० सगर
४१ असमञ्जस्
४२ अंशुमत्
४३ दिलीप १म
४४ भगीरथ
४५ श्रुत

* विष्णुपुराण के अनुसार मान्धातृ का बेटा अंबरीष था उसका पुत्र हारीत हुआ जिससे हारीतआंगिरस् नाम क्षत्रियकुल चला।

४६ नाभाग
४७ अम्बरीष
४८ सिंधुद्वीप
४९ अयुतायुस्
५० ऋतुपर्ण
५१ सर्वकाम
५२ सुदास
५३ कल्माषपाद
५४ अश्मक
५५ मूलक
५६ शतरथ
५७ वृद्धशर्मन्
५८ विश्वसह १ म
५९ दिलीप २ य
६० दीर्घबाहु
६१ रघु
६२ अज
६३ दशरथ
६४ श्रीरामचन्द्र
६५ कुश
६६ अतिथि
६७ निषध
६८ नल
६९ नभस्
७० पुण्डरीक
७१ क्षेमधन्वन

७२ देवानीक
७३ अहीनगु
७४ पारिपात्र
७५ दल
७६ शल
७७ उकथ
७८ वज्रनाभ
७९ शंखन
८० व्युषिताश्व
८१ विश्वसह २य
८२ हिरण्यनाभ
८३ पुष्य
८४ ध्रुवसन्धि
८५ सुदर्शन
८६ अग्निवर्ण
८७ शीघ्र
८८ मरु
८९ प्रथुश्रुत
९० सुसन्धि
९१ अमर्ष
९२ महाश्वत
९३ विश्रुतवत्
९४ बृहद्बल *

* इसे अभिमन्यु ने मारा था (महाभारत द्रोणपर्व)।

महाभारत के पीछे के सूर्यवंशी राजा

१ बृहत्क्षय
२ उरुक्षय
३ वत्सद्रोह (या वत्सव्यूह)
४ प्रतिव्योम
५ दिवाकर
६ सहदेव
७ ध्रुवाश्व (या बृहदश्व)
८ भानुरथ
९ प्रतीताश्व (या प्रतीपाश्व)
१० सुप्रतीप
११ मरुदेव (या सहदेव)
१२ सुनक्षत्र
१३ किन्नराश्व (या पुष्कर)
१४ अन्तरिक्ष
१५ सुषेण (या सुपर्ण या सुवर्ण या सुतपस्)
१६ सुमित्र (या अमित्रजित्)
१७ बृहद्रज (भ्राज या भारद्वाज)
१८ धर्म (या वीर्यवान्)
१९ कृतञ्जय
२० व्रात
२१ रणञ्जय
२२ सजंय

२३ शाक्य
२४ क्रुद्धोद्धन या शुद्धोदन
२५ सिद्धार्थ
२६ राहुल (या रातुल, बाहुल) लांगल या पुष्कल)
२७ प्रसेनजित (या सेनजित)
२८ क्षुद्रक (या विरुधक)
२९ कुलक (क्षुलिक, कुन्दक, कुडव, रणक)
३० सुरथ
३१ सुमित्र *

---

* अंतिम राजा महानन्द की राजक्रान्ति में मारा गया।
Sacred Books of the Hindus, Matsya Purana.

क (१) प्रसिद्ध राजाओं के संक्षिप्त इतिहास

मनु

महाकवि कालिदास ने लिखा है:—

वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम् ।
आसीन्महीभृतामाद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ॥

रघुवंश सर्ग १ ॥

"रह्यो आदिनृप बिबुधजन माननीय मनुनाम ।
वेदन महँ ओंकार सम दिनकरसुत गुनधाम ॥

रघुवंश भाषा स० १ ॥

इन्हीं ने कोसल देश बसाया और अयोध्या को उसकी राजधानी बनाया। मत्स्यपुराण में लिखा है कि अपना राज अपने बेटे को सौंप कर मनु मलयपर्वत पर तपस्या करने चले गये। यहाँ हजारों वर्ष तक तपस्या करने पर ब्रह्मा उनसे प्रसन्न होकर बोले "बर मांग"। राजा उनको प्रणाम करके बोले, "मुझे एक ही बर मांगना है। प्रलयकाल * में मुझे जड़चेतन सब की रक्षा की शक्ति मिले"। इसपर 'एवमस्तु' कहकर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये और देवताओं ने फूल बरसाये।

इसके अनन्तर मनु फिर अपनी राजधानी को लौट आये। एक दिन पितृतर्पण करते हुये उनके हाथ से पानी के साथ एक नन्ही सी मछली गिर पड़ी। दयालु राजा ने उसे उठाकर घड़े में डाल दिया। परन्तु दिन रात में वह नन्ही सी मछली इतनी बड़ी हो गयी कि घड़े में न समायी। मनु ने उसे निकाल कर बड़े मटके में रख दिया परन्तु रात ही भर में

* प्रलय की कथा हिन्दू, मुसल्मान, ईसाई सब के धर्मग्रन्थों में है। हमने इसे इस कारण यहाँ लिखा है कि श्री अवध की झांकी में वह स्थान बताया जायगा जहाँ मनु ने मत्स्य भगवान् के दर्शन पाये थे।

मछली तीन हाथ की हो गयी और मनु से कहने लगी आप हमपर दया कीजिये और हमें बचाइये। तब मनु ने उसे मटके में से निकाल कर कुयें में डाल दिया। थोड़ी देर में कुआं भी छोटा पड़ गया तब वह मछली एक बड़े तलाव में पहुँचा दी गयी। यहाँ वह योजन भर लम्बी हो गई तब मनु ने उसे गंगा * में डाला। वहाँ भी बढ़ी तो महासागर भेजी गयी, फिर भी उसकी बाढ़ न रुकी तब तो मनु बहुत घबराये और कहने लगे "क्या तुम असुरों के राजा हो? या साक्षात् वासुदेव हो जो बढ़ते बढ़ते सौ योजन के हो गये। हम तुम्हें पहचान गये, तुम केशव हृषीकेश जगन्नाथ और जगद्धाम हो।"

भगवान् बोले "तुमने हमें पहचान लिया। थोड़े ही दिनों में प्रलय होने वाली है जिसमें बन और पहाड़ सब डूब जायेंगे। सृष्टि को बचाने के लिये देवताओं ने यह नाव बनायी है। इसीमें स्वेदज, अण्डज, उद्भिज और जरायुज रक्खे जायेंगे। तुम इस नाव को ले लो और आनेवाली विपत्ति से सृष्टि को बचाओ। जब तुम देखना कि नाव बही जाती है तो इसे हमारे सींग में बाँध देना। दुखियों को इस संकट से बचाकर तुम बड़ा उपकार करोगे। तुम कृतयुग में एक मन्वन्तर राज करोगे और देवता तुम्हारी पूजा करेंगे।"

मनु ने पूछा कि प्रलय कब होगी और आप के फिर कब दर्शन होंगे। मत्स्य भगवान् ने उत्तर दिया कि "सौ वर्ष तक अनावृष्टि होगी, फिर काल पड़ेगा और सूर्य की किरणें ऐसी प्रचंड होंगी कि सारे जीव जन्तु भस्म हो जायँगे · · · फिर पानी बरसेगा और सब जलथल हो जायगा। उस समय हम सींगधारी मत्स्य के रूप में प्रकट होंगे। तुम इस नाव में सब को भर कर इस रस्सी से हमारे सींग में बाँध

* यह गंगा रामगंगा (सरयू) है क्योंकि गंगा राजा भगीरथ की लाई हुई हैं और भगीरथ मनु से चौवालीसवीं पीढ़ी में थे।

देना।" यह कह कर भगवान् तो अन्तर्धान हो गये और मनु योगाभ्यास करने लगे। . . .

ईसाइयों की इंजील में प्रलय का जो वर्णन है उसका संक्षेप उत्पत्ति की पुस्तक से नीचे उद्धृत किया जाता है।

अध्याय ६। ५। ६,७,८

"ईश्वर ने देखा कि पृथिवी पर पाप बढ़ा और मनुष्य का ध्यान पाप ही पर रहा।

"तब ईश्वर पछताया कि हमने पृथिवी पर मनुष्य क्यों बनाया, और वह दुखी हुआ।

"तब ईश्वर ने कहा कि जिस मनुष्य को हमने बनाया उसका नाश कर देंगे, मनुष्य पशु पक्षी कीड़े मकोड़े सब का। हम सब को बनाकर पछता रहे हैं।

"परन्तु ईश्वर की कृपा दृष्टि नूह पर थी।

❀ ❀ ❀

"नूह ईश्वर के साथ चला करता था।

"नूह के तीन बेटे थे शैम, हैम और जाफ़त।

❀ ❀ ❀

"तब ईश्वर ने नूह से कहा कि . . . तुम गोफर (?) लकड़ी की नाव बनाओ और भीतर बाहर राल पोत दो।

"नाव ३०० हाथ लम्बी हो, ५० हाथ चौड़ी हो और ३० हाथ ऊँची हो।

❀ ❀ ❀

"हम पृथिवी पर जलप्रलय करेंगे।

"परन्तु तुम्हारे साथ हमारा अहदनामा (अभिसन्धि) होगा तुम नाव में अपनी स्त्री अपने बेटों और बहुओं के साथ बैठ जाना।

मांसधारी जो जीव हैं स्त्री और पुरुष दो दो को अपने साथ जीता रखना।

अध्याय ७

अड़तालीस दिन रात पृथिवी पर पानी बरसा . . . और १५० दिन तक पृथिवी जल में मग्न रही।

नाव ऊपर तैरा की

सारे जीव मर गये। नूह अकेला जीता रहा और जो उसके साथ नाव पर थे वे भी जीते रहे।

फिर ईश्वर ने हवा चलाई और पानी बन्द हुआ।

मुसलमानों में इस प्रलय की कथा ईसाइयों की कथा से मिलती-जुलती है। भेद इतनाही है कि अल्लाहताला ने नूह को संसार में इस्लाम धर्म सिखाने भेजा था। परन्तु काफ़िरों ने उनकी एक न सुनी और कठिन परिश्रम करने पर भी केवल ८० मनुष्य मुसलमान हुये। शेष उनके उपदेश के समय अपने कान बन्द कर लेते थे और कपड़ा ओढ़ लेते थे। पुस्तक पढ़ने से विदित होता है कि जिन लोगों को नूह पैग़म्बर उपदेश देते थे सब मूर्त्तिपूजक थे और नूह उनकी मूर्त्तियों की निन्दा करते तो वह लोग कहते थे कि हम अपनी मूर्त्तियों को न छोड़ेंगे और पत्थरों की पूजा में अपने सिरों को फोड़ेगें। तुम सच्चे हो तो हमें दिखाओ कि अल्लाह कैसे दंड देता है। नूह ने तब निरास हो कर अल्लाहताला से बिनती की कि तू इन काफ़िरों को ग़ारत कर। उनकी बिनती सुनकर अल्लाहताला ने कहा कि हम इस जाति को प्रलय से नष्ट कर देंगें और तुमको और तुम्हारी "उम्मत"* को नाव में रखकर बचा लेंगे। उसी समय जिबरईल को आज्ञा दी गई कि साज का पेड़ बोया जाय। २० वर्ष में पेड़ बड़ा हो गया तब नूह ने जिबरईल के कहने से उसके तख्ते चीरे और नाव बनायी और तख्तों के जोड़ पर क़ीर (قیر राल) लगा दी। नाव बन जाने पर जिबरईल ने पशु पक्षी

* उम्मत — امت

के जोड़े इकट्ठा किये और नाव में भरे। नूह, उनके तीन बेटे और बहुयें और उनकी उम्मत के लोग नाव पर सवार हुये। . . . . उसी समय ४० दिन तक पानी बरसा और सारे काफ़िर और उनके घर बार डूब गये। तब अल्लाह के हुकुम से नूह की नाव जूदी पहाड़ को चोटी पर ठहरी ·········इत्यादि।*

हमने इस पौराणिक आख्यान को यहाँ कई प्रयोजनों से लिखा है। एक तो यह है कि प्रलय को अनेक जाति और धर्म के लोग मानते हैं जैसे :—

१—चीनवालों में फ़ोही (Fohi) का प्रलय।

२—असीरियावालों का चिसुथ्रस (Xisuthrus)।

३—मेक्सिको का प्रलय।

४—यूनानवालों का डुकेलियन (Deucalion) और अगिगीज़ (Ogyges)।

इससे जान पड़ता है कि प्रलय अवश्य हुआ। मत्स्यपुराण में जो इसी अवतार का प्रधान ग्रन्थ है मत्स्य भगवान ने वैवस्वत मनु को दर्शन दिये थे। वैवस्वत मनु पृथिवी के पहिले राजा थे और उन्होंने अयोध्या नगर बसाया। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि मत्स्य भगवान् ने अयोध्या ही में मनु को दर्शन दिये। मुसलमान लोग तो यहाँ तक मानते हैं कि अयोध्या में थाने के पीछे नूह की क़बर है और उसमें नूह ही के साथ उनकी किश्ती के चार तख़्ते भी दफ़न हैं।

दूसरी विचित्र बात मत्स्यपुराण में यह देखी कि मनु-वैवस्वत वाले प्रलय के पीछे जब नई सृष्टि हुई तो मनु स्वायम्भू का जन्म हुआ यद्यपि वैवस्वत मनु सातवें मनु माने जाते हैं। मनु-वैवस्वत ने सब को बचाया था। वह कहाँ गये? हमारी समझ में मत्स्यपुराण स्वायम्भू मनु की

---

* यह अंश मजीदी प्रेस कानपुर की छपी रौज़तुल असफ़िया के आधार पर लिखा गया है।

स्थिति को संदेह के आवर्त में डाल रहा है। दूसरी सृष्टि भी वैवस्वत मनु ही से चली।

जब यह सिद्ध है कि वैवस्वत मनु कम से कम इस देश के पहिले राजा थे तो अब यह प्रश्न उठता है कि यह देश भरतखंड या भारत* वर्ष क्यों कहलाता है ?

मनु के कई सन्तान मानी जाती हैं परन्तु मुख्य दो ही हैं। एक इक्ष्वाकु पुत्र, दूसरी इला पुत्री। इक्ष्वाकु से सूर्यवंश चला जिसने उत्तर भारत पर अपना अधिकार जमाया। इक्ष्वाकु का एक बेटा अयोध्या में रहा, दूसरा कपिलवस्तु का राजा हुआ, तीसरे ने विशाला में राज स्थापित किया और चौथा निमि मिथिलाधिपति बना। चन्द्र के पुत्र बुध के संयोग से इला के पुरूरवस पुत्र हुआ जिसने आजकल के इलाहाबाद के सामने गंगा के उत्तर-तट पर प्रतिष्ठानपूर को अपनी राजधानी बनाया।

सूर्यवंश में इक्ष्वाकु के बाद तिरसठवीं पीढ़ी में महाराज दशरथ हुये। इनके चार बेटों में से एक का नाम भरत था। भरत को अपने नाना से केकय देश मिला था परन्तु वे कभी भारत के सम्राट न थे। इससे भरतखंड के भरत नहीं हो सकते।

चन्द्रवंश में अवश्य भरत नाम का एक प्रतापी राजा हुआ है परन्तु यह पुरूरवस के बहुत पीछे हुआ। यह भरत दुष्यन्त का बेटा था और इसकी माँ राजर्षि विश्वामित्र की बेटी शकुन्तला थी। महाभारत में लिखा है :—

> भरताद् भारतीकीर्तिर्येनेदं भारतं कुलम्।
> अपरे ये च वै पूर्वे भरता इति विश्रुताः ॥
> भरतस्यान्वये तेहिं देवकल्पा महौजसः।

---

* श्रीमद्भागवत में इस देश का नाम अजनाभवर्ष है।

"भरत ही से भारती कीर्ति हुयी जिस से भरतवंश चला और भी जो भरत पहिले हो गये हैं सब भरत के वंश के हैं।

इसके प्रतिकूल श्रीमद्भागवत में लिखा है:—

प्रियव्रतो नाम सुतो मनोः स्वायंभुवस्य यः।
तस्याग्नीध्रस्ततो नाभि ऋषभस्तत् सुतःस्मृतः॥
तमाहु र्वासुदेवांशं मोक्षधर्म विवक्षया।
अवतीर्णं पुत्रशतं तस्यासीद् ब्रह्मपारगम्॥
तेषां वै भरतो ज्येष्ठो नारायणपरायणः।
विख्यातं वर्ष मेतत्तन्नाम्ना भारतमुत्तमम्॥

इसकी पुष्टि ब्रह्माण्डपुराण पूर्वभाग अनुषंग पाद अध्याय १४ में देखिये।

ऋषभाद् भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः।
सोऽभिषिच्यार्षभः पुत्रम्महाप्रव्रज्जया स्थितः॥
हिमाद्रेः दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत्।
तस्मातु भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः॥

"ऋषभ देवजी के सौ बेटे हुये जिनमें वीर भरत जेठ थे। ऋषभ देवजी भरत को राज देकर तपस्या करने चले गये। उन्होंने भरत को हिमालय के दक्षिण का देश दिया था। इसी से विद्वान लोग उसे भारत-वर्ष कहते हैं"

और पुराणों की जांच से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। कहीं कहीं एक ही पुराण में दो बातें एक दूसरे के प्रतिकूल लिखी हैं। वायुपुराण प्रथम खंड अध्याय ४५ में लिखा है;

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमवद्दक्षिणञ्च यत्॥ ७५॥
वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा।

भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते।
निरुक्त वचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं स्मृतम् ॥ ७६ ॥*

"समुद्र के उत्तर और हिमाचल के दक्षिण देश का नाम भारत है वहीं भारती प्रजा रहती है। प्रजा के भरण पोषण करने के कारण मनु ही भरत कहलाता है। निरुक्त का भी यही बचन है और इसी से भारतवर्ष नाम प्रसिद्ध है।"

इसमें सब से बड़ा प्रमाण निरुक्त का है। निरुक्तकार कहता है :—

भरतः आदित्यस्तस्य भा भारती

इस विषय पर सुप्रसिद्ध इतिहास मर्मज्ञ श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य जी ने अपने विचार "हिन्दू भारत का उत्कर्ष" नामक ग्रन्थ के परिशिष्ट में प्रकट किये हैं। हम उनसे अनेक बातों में सहमत नहीं हैं। परन्तु इस विषय में उनके विचार की पुष्टि और प्रमाणों से होती है। हम वैद्य जी के ग्रन्थ का कुछ अंश उद्धृत करते हैं :—

"पुराण परम्परा बता रही है कि हिन्दुस्तान का भारतवर्ष नाम जिस भरत के कारण पड़ा वह दुष्यन्तपुत्र भरत नहीं किन्तु उससे सहस्रों वर्ष पूर्व उत्पन्न हुआ मनु का प्रपौत्र अथवा साक्षात् मनु ही था। वायु और मत्स्यपुराणों में निरुक्त का जो हवाला दिया है वह साधारण है। · · · ऋग्वेद में जिन भरतों का बार बार उल्लेख है वे उक्त भरत के ही वंशज थे, दुष्यन्त-पुत्र के नहीं। ऋग्वेद संहिता में भरतों का नाम तीसरे और चौथे मण्डल में बार बार आया है। इन मण्डलों में सुदास त्रित्सु के सम्बन्ध में यह नाम आया है और छठे मण्डल में इनका सम्बन्ध दिवोदास राजा से बताया गया है।" (भाग २ पृष्ठ ९५)। इस उल्लेख के ऋग्वेद सूक्त हमने देखे। उनसे पहिली बात यह

* Vayu-Purana, edited by Rajendralal Mitra and published by the Asiatic Society of Bengal, page 347.

जान पड़ी कि भरतों के पुरोहित वसिष्ठ थे। पुराण परम्परा के अनुसार वसिष्ठ सूर्यवंशी क्षत्रियों के पुरोहित थे, चन्द्रवंशियों के नहीं। . . .

एक और ऋचा भी बड़े काम की है,

प्रप्नायमग्निर्भरतस्य शृण्वे।
अभियः पूरुं पृतनासु तस्थौ ॥

"भरत की वही अग्नि है जिसने पुरु का पराभाव किया था।"

इसमें भरत शकुन्तला का पुत्र है तो उसकी अग्नि ने उसके लकड़दादा के नगड़दादा पुरु को कैसे परास्त किया! ऋग्वेद को ध्यान से पढ़ने से यह सिद्ध हो जायगा कि भरत प्राचीन आदि राजा था। उसके वंशज भी भरत या भारत कहलाते थे। उसने इस देश के आदिम निवासियों को जीत कर अपना राज्य स्थापन किया।

इस के अतिरिक्त जैनधर्म की जनश्रुति है। आदिनाथ या ऋषभदेव जी सूर्यवंशी थे और उनकी जन्मभूमि अयोध्या है। पुराणों में ऋषभदेव भी स्वायंभू मनु के वंशज कहे जाते हैं परन्तु यहाँ स्वायंभू मनु भी वैवस्वत मनु बने जाते हैं और मत्स्यपुराण ने स्वायंभू मनु की स्थिति ही संदिग्ध कर दी है।

अब देखना चाहिये कि —

मनु पहिले राजा थे,	भरत पहिले राजा थे।
मनु ने अयोध्या बसाई,	भरत की जन्मभूमि अयोध्या है
मनु वैवस्वत सूर्यवंशी थे,	भरत सूर्यवंशी थे।
सूर्यवंश के पुरोहित वसिष्ठ थे,	भरतों के पुरोहित वसिष्ठ थे।

निरुक्त में भरत का अर्थ सूर्य है जिसका अर्थ यह हो सकता है कि सूर्यवंशी थे। वायुपुराण में भरत ही मनु कहा गया है।

इन प्रमाणों से हम यह निश्चित करते हैं कि मनु उपनाम भरत हिन्दुस्तान के पहिले राजा थे और उन्हीं के नाम से यह देश भरतखंड या भारतवर्ष कहलाता है।

हम ऊपर लिख चुके कि मनु वैवस्वत थे अर्थात् इनकी उत्पत्ति सूर्य से हुई थी। मनु बड़े विद्वान् और धर्मात्मा थे, उन्हीं से मानव वंश प्रसिद्ध हुआ, जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सारे वर्ण थे। मानव ब्राह्मणों ने सांगवेद धारणकिया। मनु के नाभागारिष्ट, नाभाग, कारूष, धृष्ट, नारिष्यन्त, पृषध्र, शर्य्याति, वेण (प्रांशु), और इक्ष्वाकु, नौ क्षत्रिय पुत्र हुये और इला नाम की एक कन्या हुई। इनके अतिरिक्त मनु के पचास पुत्र और भी थे जो आपस में लड़ कर नष्ट हुये।

अयोध्या के इतिहास का केवल इक्ष्वाकु से सम्बन्ध है, परन्तु उनके और भाइयों का भी कुछ विवरण लिखा जाता है।

नाभागारिष्ट—इस नाम की बड़ी दुर्दशा हुई है। कहीं नाभागोदिष्ट लिखा है, कहीं नाभाग और कहीं दिष्ट कहीं अरिष्ट और कहीं रिष्ट है। ऋगवेद १०, ६१, १८, का नाभानेदिष्ट ऋषि है और यही नाम ठीक जंचता है। इसीने वैशाली राज्य स्थापित किया जिसका वर्णन उपसंहार में है।

नाभाग—का नाम नृग भी है। नाभाग और उसके पुत्र अम्बरीष का राज कदाचित यमुना-तट पर था। महाभारत वनपर्व में लिखा है कि नाभाग और अम्बरीष ने यज्ञ करके हजारों गायें ब्राह्मणों को दीं। इसी वंश में रथीतर हुआ है जिसके सम्बन्ध में विष्णुपुराण में लिखा है कि "रथीतर के वंशीय लोग क्षत्री हैं तथापि आंगिर होने से उन्हें क्षत्रीयेत ब्राह्मण कहा जाता है।" नाभाग को कहीं कहीं नभाग भी लिखा है और ऋगवेद ८, ४०, ५ में इसको नभाक कहते हैं। लिङ्ग-पुराण में इसका नाम नृग भी आया है।

कारूष—इससे कारूष-क्षत्रियवंश चला, जिसका राज्य आज-कल के रींवा राज्य से सोन तक फैला हुआ था। कारूष बड़े योद्धा थे। श्री मद्भा-गवत् में लिखा है कि कारूष ही उत्तर के देशों को दक्षिण के आक्रमण से बचाते थे।

धृष्ट—इसके वंश में धार्ष्टक हुये जिन्होंने वाह्लीक* में अपना राज्य जमाया।

नारिष्यन्त—इसके विषय में मत भेद है। अनेक पुराणों में इसके बेटे शक कहलाते हैं। श्री मद्भागवत् के अनुसार इसीसे अग्निवेषीय ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई।

पृषध्र या (पृषघ्र)—इसने अपने गुरु च्यवन की एक गाय मारी, इससे पतित हो गया था।

शर्य्याति—इसको कहीं कहीं शर्याति भी कहते हैं। इसके पुत्र आवर्त से आवर्त राजवंश चला। शर्य्याति की बेटी सुकन्या भार्गव च्यवन को व्याही थी। आवर्त की राजधानी कुशस्थली थी जो पीछे द्वारका (द्वारावती) के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह वंश बहुत दिनों तक नहीं चला। विष्णुपुराण अंश ४ अध्याय २ में लिखा है कि पुण्यजन नाम राक्षसों ने कुशस्थली नष्ट कर दी और आवर्त वंशवाले वहाँ से भागकर अनेक देशों में जा बसे। हैहय वंशियों में भी एक वर्ग शर्यातों का था। इस वंश का अंतिम राजा रैवत था जिसकी बेटी रेवती बलराम को व्याही गई।

वेण—इसका नाम मत्स्यपुराण में कुशनाभ है, और कहीं प्रांशु भी है। इसका कुछ और विवरण नहीं मिलता।

(२) इक्ष्वाकु—मनु का सब से बड़ा बेटा। पुराणों में लिखा है कि इक्ष्वाकु के सौ बेटे थे, जिनमें विकुक्षि, निमि और दंड प्रधान थे। सौ बेटों में से शकुनि-प्रमुख, पचास भाइयों ने उत्तरापथ में राज्य स्थापित किये और यशाति प्रधान अड़तालीस दक्षिणापथ के राजा हुये।

विकुक्षि अयोध्या के सिंहासन पर बैठा, निमि ने मिथिलाराज स्थापन किया और उससे विदेह (जनक) वंश चला।

---

* वाह्लीक आजकल बलख़ के नाम से प्रसिद्ध है।

दंड इक्ष्वाकु के बेटों में सबसे छोटा था। वह अनपढ़ निकला और उसने अपने बड़े भाइयों का साथ न किया इससे उसके शरीर में तेज न रहा। पिता ने उसका नाम दंड रक्खा और उसे विन्ध्याचल और शैवल के बीच का देश का राज दिया। दंड ने वहां मधुमान् नाम नगर बसाया और शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया। राजा दंड ने बहुत दिनों तक निष्कण्टक राज किया। एक बार चैत के महीने में राजा दंड शुक्राचार्य के आश्रम को गया। वहां वह शुक्राचार्य की ज्येष्ठा कन्या अरजा को देखकर उस पर मोहित हो गया। अरजा ने उत्तर दिया कि यदि तुम हमको चाहते हो तो हमारे पिता से कहो। परन्तु उस कामान्ध राजा ने न माना और उसके साथ बलात्कार किया। अरजा रोती हुई शुक्राचार्य की राह देखती रही और जब वह आये तो उसने सारा वृत्तान्त कहा। शुक्राचार्य ने क्रोधित होकर श्राप दिया और सात दिन इतनी धूल बरसी कि दंड का सौ कोस का राज्य उसके परिवार समेत नष्ट होगया। तभी से उस स्थान का नाम दंडकारण्य पड़ा।*

(३) शशाद—इसका पहिला नाम विकुक्षि था। एक बार इसने यज्ञ के लिये जो पशु मारे गये थे उनमें से एक शश (खरहा) भूनकर खा लिया इससे इसका नाम शशाद पड़ गया। बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि तीसरे इक्ष्वाकुवंशी राजा (ओक्काकु-विकुक्षि) के देश निकाले लड़कों ने हिमालय की तरेटी में जाकर कपिल मुनि की बताई हुई धरती (बथु वस्तु) पर कपिलवथु (कपिलवस्तु) नगर बसाया था। कपिल मुनि बुद्धदेव के एक अवतार थे और हिमालय तट पर एक तालाब के किनारे शकसन्द या शकवनसन्द में कुटी बनाकर रहते थे।

* वा० रा० ७, ८० ८१ इस कथा को निर्मूल न समझना चाहिये। गोंडे के ज़िले में राजा सुहेलदेव बड़े प्रसिद्ध वीर थे जिन्होंने सैयद सालार (ग़ाज़ीमियाँ) को परास्त किया था। उनके राज्य का एक अंश सुहेलवा का वन कहलाता है और उनके विनाश की भी कथा कुछ ऐसी ही है।

(४) ककुत्स्थ—शशाद का पुत्र परंजय हुआ। एक बार देवासुर संग्राम में इसने इन्द्ररूपी बैल के ककुन् (डील) पर बैठकर असुरों को परास्त किया; तबसे यह ककुत्स्थ कहलाया। *

---

* यह पौराणिक कथा है। पहाड़ पर अब तक मनुष्य के कन्धे पर सवार होकर शिकार खेलते हैं। किसी कारण से इन्द्र के कन्धे पर सवार होकर बैरी को मारने की घात लगी हो तो पीछे इन्द्र का बैल बन जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

काशीनागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अङ्क १ व २ में राय कृष्णदास जी ने ककुत्स्थ शब्द की व्याख्या यों की है:—

"वेदों में इंद्र को राष्ट्र का अधिष्ठात्री देवता माना है"।

वैदिक साहित्य के उन मंत्रों अथवा स्थलों में जिनका संबंध राजशास्त्र से है इस बात का बार बार संकेत है। इसी से राजा के अभिषेक को ऐंद्र महाभिषेक कहते थे। (ऐतरेय ८,१५)।

पुराणों में भी राज्य ऐन्द्रपद कहा जाता है और राज्य करने के लिये जब राजा का वरण किया जाता था तो यह मंत्र पढ़ा जाता था,

त्वाविशो वृणतां राज्याय त्वामिमाः प्रदिशः पंच देवीः।
वर्ष्मन् राष्ट्रस्य ककुदि श्रयस्व ततो न उग्रो विभजा वसिन॥

(अथर्ववेद ३,४,२)

अर्थात्—तुम्हें विश् (= जनता राष्ट्र) राज्य करने के लिये वरण करें (चुनें)। ये पाँच देदीप्यमान दिशाएँ तुम्हें राज्य के लिये वरण करें। राष्ट्र के ककुद (डील पर) (अर्थात् ऊँचे स्थान पर, 'आला मुक़ाम' पर) बैठो और उर्जस्विता पूर्वक विभव का वितरण करो।

ककुदं सर्व भूतानां धनस्थो नात्र संशयः।
महाभारत, शान्तिपर्व ८१,३० ।
इक्ष्वाकु वंश्यः ककुदं नृपाणाम्,

(रघुवंश ६,७,१ ।)

(९) पृथु—महाभारत में लिखा है कि पृथु ने सबसे पहले धरती चौरस की इसी से यह पृथ्वी कहलाती है। हरिवंश में इससे कुछ भिन्न लिखा है और कुमारसम्भव में भी इसका उल्लेख है। इस काव्य में पृथ्वी गाय है, इससे देवताओं ने हिमालय को बछरा बना कर चमकते रत्न और औषधियाँ दुही थीं। ऐसा समझ में आता है कि पृथु ही ने धरती पर हल चलाना सिखाया था जैसा कि ईरानियों में जमशेद ने किया था।

(१०) श्रावस्त—इसने श्रावस्ती नगरी बसाई जिसका भग्नावशेष, बलरामपुर से बहराइच जानेवाली सड़क पर राप्ती के किनारे अब भी महेत के नाम से प्रसिद्ध है।

(१२)—कुवलयाश्व—इसने उज्जालक समुद्र के पास धुंधु राक्षस को मारा इसी से यह धुंधुमार नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस युद्ध में इसके बहुत से बेटे मारे गये थे।

(२०) युवनाश्व द्वितीय—इसने पौरव वंश के राजा मतिनार की बेटी गौरी के साथ विवाह किया। यह शक्तिशाली राजा था। (वंशावली उपसंहार से उद्धृत)

(२१) मान्धाता—यह बड़ा प्रतापी राजा था। इसके विषय मे विष्णु-पुराण में लिखा है कि "जहां से सूर्य उदय होता है और जहाँ अस्त होता है उसके अन्तर्गत सारी पृथ्वी युवनाश्व के बेटे मान्धाता की है।" यह राजर्षि था। हम ऊपर लिख चुके हैं कि ऋग्वेद ८,४३,९ का यही ऋषि है।

अस्तु यह 'राष्ट्रस्य ककुदि' पद हमारे बड़े काम का है क्योंकि इससे ककुत्स्थ शब्द का प्राकृत अर्थ लगा जाता है। ऐक्ष्वाकों का जब से राष्ट्र (= उसके अधिष्ठातृ देवता इन्द्र) का अधिपति होने के लिये राज्य पर बैठने के लिये उसके ककुद पर सवार होने के लिये (मिलाइए हिन्दी मुहाविरा 'सिर पर सवार होना') वरण हुआ तब से वे ककुत्स्थ पद से अभिहित हुये। और उन्हीं के वंशधर काकुत्स्थ कहे जाने लगे।

महाभारत में लिखा है कि मान्धाता ने गन्धार देश के चन्द्रवंशी राजा को मारा था। यह राजा द्रुह्युकुल का अङ्गार था। पञ्जाब पर मान्धाता का अधिकार हो जाने के कारण कान्यकुब्ज और पौरव क्या आणव भी उसका लोहा मान गये थे।

मान्धाता नाम की विचित्र व्याख्या विष्णु पुराण में दी हुई है। युवनाश्व के कोई पुत्र न था। इससे वह दुखी होकर मुनियों के आश्रम में रहता था। कुछ दिन बीतने पर मुनियों ने दया करके युवनाश्व की पुत्रप्राप्ति के लिये यज्ञ किया। वह यज्ञ आधी रात को पूरा हुआ। मुनि लोग यज्ञ का मंत्रयुक्त जल-कलस वेदी के बीच में रखकर सो गये। इतने में युवनाश्व प्यासा होकर वहीं पहुँचा। उसने मुनियों को तो जगाया नहीं परन्तु मंत्रयुक्त जल पीलिया। यह जल युवनाश्व की रानी के पीने के लिये था। इससे जब मुनि लोग जागे तो पूछने लगे कि इस जल को किसने पिया। राजा ने कहा मैंने इसे अनजाने पी लिया है। मुनि बोले यह तुमने क्या किया यह जल तो तुम्हारी रानी के लिये था।

जल के प्रभाव से युवनाश्व ही के गर्भ रह गया और पूरे दिन होने पर उसकी दाहिनी कोख फाड़कर बालक निकला और राजा न मरा। लड़का तो हो गया अब यह पलै कैसे ? तब इन्द्र' देव कहने लगे 'हम इसकी धाय का काम करेंगे (माँ धास्यति) और उन्होंने अपनी आदेश की उँगली बालक के मुँह में डाल दी। बालक उस उँगली में से अमृत चूसकर चट पट सयाना हो गया। हम समझते हैं कि मान्धातृ नाम की उत्पत्ति सार्थक करने के लिये यह कथा गढ़ी गई है। नगर और राजसी ठाट बाट निरंतर भोग विलास से जब सन्तान न हुई तो बन में जाकर रहने से स्वाभाविकता कुछ आ जाती है। इसी उपाय से दिलीप ने रघु ऐसा पुत्र पाया था।

महाभारत में यह भी लिखा है कि मान्धाता के राज्य में पृथ्वी धन धान्य से भरी पुरी थी। उसके यज्ञ मंडपों से सारी पृथ्वी व्याप्त थी।

उसने यमुना के तट पर सौमिक और साहदेवी यज्ञ किये और कुरुक्षेत्र में भी यज्ञ किया। उसने अनावृष्टि के समय पानी भी बरसाया था।

इस राजा के विषय में विष्णुपुराण में एक बड़ी रोचक कथा लिखी है। जिसका सारांश यह है :—

मान्धाता की रानी बिन्दुमती चैत्ररथी यदुवंशी राजा शशविन्दु * की बेटी थी। उससे पुरुकुत्स, अंबरीष और मचुकुन्द नाम तीन बेटे और पचास बेटियाँ हुई। इन्हीं दिनों सौभिरि नाम ऋषि बारह बरस जलवास करके सिद्ध हो गये थे। उसी जल में संमद नाम एक बड़ा मगरमच्छ रहता था। उसके बहुत से कच्चे बच्चे, नाती, पोते उसके चारों ओर खेला करते थे और वह बहुत प्रसन्न रहा करता था। सौभिरिजी समाधि छोड़ कर नित्य उसका यह सुख देखकर सोचने लगे यह मगरमच्छ धन्य है, ऐसी योनि में जन्म लेकर भी यह हमारे मन में बड़ी स्पृहा उत्पन्न करता है। हम भी इसी की तरह बेटे पोतों के साथ खेलेंगे। ऐसा विचार करके सौभिरि जी कन्या मांगने मान्धाता के पास पहुँचे। राजा ने उनका यथोचित सत्कार किया। तब सौभिरि ने उनसे कहा कि "हम अपना विवाह करना चाहते हैं। आप हमें अपनी एक बेटी दीजिये। हमारी बात न टालिये। संसार में अनेक राजकुलों में अनेक लड़कियाँ हैं। आपका कुल सबसे बढ़कर है।" सौभिरि की बातें सुन राजा बड़ी चिन्ता में पड़ गया। एक ओर तो मुनि का पानी में पड़ा हुआ सड़ा गला बुड्ढा शरीर और दूसरी ओर उनके शाप का डर। राजा की यह दशा देख कर मुनि बोले "आप क्यों खिन्न हैं? हमने कोई ऐसी बात नहीं कही जो करने की नहीं है। आप अपनी बेटियाँ किसी न किसी को तो देहींगे। एक मुझे दे दीजिये मैं कृतार्थ हो जाऊँगा।" राजा ने हाथ जोड़ कर कहा कि "कन्या अच्छे कुल के जिस बर को चाहे उसी को दे दी जाती है। यह बात कभी हमारे ध्यान में आई नहीं थी कि आप ऐसी प्रार्थना करेंगे।

* शशविन्दु का वंश उपसंहार में लिखा है।

ऐसी दशा में मुझे क्या करना चाहिये यही सोच रहा हूँ।" मुनि समझ गये कि हमको इसी रीति से उत्तर दिया जाता है क्योंकि बुड्ढे मनुष्य को स्त्रियाँ कब चाहेंगी न कि कन्या ! और राजा से कहने लगे "अच्छा तो है, आप अपनी कुल की रीति कीजिये और महल के कंचुकी के साथ हमें अपनी कन्याओं के पास भेज दीजिये। कोई कन्या हमको पसन्द करे तो उसका हमारे साथ विवाह कर दीजिये, नहीं तो हमको बुढ़ापे में इस वृथा उद्योग से क्या काम।" मान्धाता मुनि के शाप के डर से मान गये और प्रतीहारों के साथ मुनि को कन्या-महल में भेज दिया। वहां पहुंचते ही मुनि ने अपने योगबल से ऐसी मोहनी मूर्ति धारण करली कि जब प्रतीहारों ने कन्याओं को सूचना दी कि "तुम्हारे पिता ने इन मुनि जी को तुम्हारे पास इसलिये भेजा है कि यदि इन्हें कोई कन्या अपना पति बरै तो हम उसको इनके साथ ब्याह देंगे "क्योंकि हम इनसे ऐसी प्रतिज्ञा कर चुके हैं" तो सारी कन्यायें आपस में लड़ने लगीं और कहने लगीं" मैंने इनको बरा, मैंने इनको बरा, तुम सब हट जाओ मैंने इनको सबसे पहले बर लिया।" एक बोली "यह मेरे ही योग्य बर है," दूसरी ने कहा "जैसे घर में घुसे वैसे ही मैंने इनको बरा, तुम सब व्यर्थ झगड़ा करती हो।" प्रतीहार ने यह चरित्र देखकर राजा से कहा और अपनी बात के धनी राजा ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अपनी पचासों बेटियां मुनि को ब्याह दीं।

मुनि उनको लेकर अपने आश्रम में आये और अपने योगबल से विश्वकर्मा को बुलाकर पचास महल बनवाये जिनमें प्रत्येक के साथ उपवन और सुन्दर पक्षियों से भरे जलाशय थे। फिर नन्द नाम निधि को आज्ञा दी कि सारे महलों को वस्तु रत्नादि सुख की सामग्री से भर दो। राजकन्यायें उनमें सुख से रहने लगीं और प्रत्येक के साथ पचास रूप धारण करके मुनि रहते थे।

एन दिन राजा मान्धाता को यह चिन्ता हुई कि मेरी बेटियां सुखी हैं या दुखी और मुनि के आश्रम को गये। वहां देखते क्या हैं कि

उनकी बेटियों के लिये स्फटिक के महल बने हैं जिनके चारो ओर बाग तड़ाग हैं ।

राजा एक कन्या के घर में गये और उसे गले लगाकर पूछा, "बेटी तुम्हें किसी बात का दुख तो नहीं है। मुनि तुम से अनुराग करते हैं। कभी तुम्हें अपनी जन्म भूमि की सुधि आती है;" बेटी ने कहा, "पिताजी यहां किसी बात का दुख नहीं है यों तो जन्म भूमि को कोई कैसे भूल सकता है। दुख केवल इसी बात का है कि मेरे पति मेरे ही पास रहते हैं मेरी और बहिनों के पास नहीं जाते।" राजा दूसरी कन्या के पास गये तो उसने भी यही बात कही। यह सुनकर राजा तीसरी के घर गये उसने भी यही कहा। ऐसे ही औरों के मुंह से सुनकर अत्यन्त विस्मित होकर राजा एकान्त में बैठे तपस्वी सौभिरि के पावों पर गिर पडे और कहने लगे हमने आपकी सिद्धि का प्रभाव देखा। राजा प्रसन्न होकर राजधानी को लौट गये यहां कुछ दिनों में सौभिरि के पचास राजकन्याओं से डेढ़ सौ बेटे हुये। सन्तान देखकर मुनि जी ममताजाल में फंस गये। कभी सोचते कि मेरे बच्चे कब पाँव पाँव चलेंगे। कब सयाने होंगे ? कब इनका ब्याह होगा ? कभी वह भी दिन आयेगा कि हम इनके भी बच्चे देखेंगे, और ज्यों ज्यों उनके मनोरथ पूरे होते जाते थे, त्यों त्यों नये नये मनोरथ उठ खड़े होते थे। कुछ दिन पीछे मुनि को ज्ञान हुआ और उनकी आँखें खुल गईं। उस समय उन्होंने जो बातें कहीं उससे स्पष्ट है कि माया मोह में फंसे मनुष्य का चित्त ईश्वर में नहीं लग सकता। और सब छोड़ छाड़ कर भगवद् भजन करने लगे।

मान्धाता के तीन बेटे थे, पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द। मुचुकुन्द ने विन्ध्य और ऋक्ष पर्वतों के बीच में नर्मदा के किनारे माहिष्मती नगरी बसाई। उसकी एक राजधानी ऋक्ष पर्वत के नीचे पुरिका भी थी।

(२२) पुरुकुत्स—इस राजा के समय में मौनेय नाम के गन्धर्वों ने नर्मदा के तट पर नागकुल को परास्त करके उनका धन लूट लिया था। नागों ने पुरुकुत्स से सहायता मांगी और पुरुकुत्स ने गन्धर्वों को नष्ट कर दिया। इसपर नागराज ने प्रसन्न हो कर अपनी बेटी नर्मदा उस को ब्याह दी।

पुरुकुत्स की बेटी पुरुकुत्सा कान्यकुब्ज के राजा कुश को ब्याही थी। और राजा गाधि की माँ थी। (उपसंहार)

(२५) अनरण्य—रावण ने दिग्विजय करके इसका वध किया था। * जिस स्थान पर लड़ाई हुई थी वह अयोध्या से १४ मील पश्चिम रौनाही के † नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि रावण ने कभी अयोध्या पर अधिकार थोड़े दिनों के लिये भी जमाया हो। यह स्मरण रखना चाहिये कि कई पीढ़ी पीछे श्रीरामचन्द्रजी ने लंका को जीत कर इसका बदला ले लिया।

(३०) त्रय्यारुण—इसके राज्य में एक दुखदाई घटना हुई। इसका बेटा सत्यव्रत जवानी की उमंग में विवाह के समय एक ब्राह्मणकन्या को हर ले गया। अपराध ऐसा घोर न था परन्तु उसके पिता ने उसे चांडाल

---

* वा० रा० ७० १९ ऐतिहासिक दृष्टि से यह बात असंभव है कि एकही रावण अनरण्य का मारनेवाला भी हो और चालीस पीढ़ी पीछे श्रीरामचन्द्र के हाथ से मारा जाय। मिस्टर पार्जिटर ने रायल एशियाटिक सोसाईटी के १९१४ के जर्नल पृष्ठ २८४ में यह लिखा है कि रावण तामिल शब्द इरैवण का संस्कृत रूप है जिसका अर्थ है राजा, स्वामी, ईश्वर। मलयालम में राजा को इरान कहकर संबोधन करते हैं। कनाडी में ऐड़े स्वामी का बोधक है। इससे प्रगट है कि इरैवण के संस्कृत रूप रावण का अर्थ केवल राजा है और लंका के राजा इसी नाम से संस्कृत ग्रन्थों में लिखे जाते थे।

† जैन शिला लेखों में रौनाही रत्नपुर कहलाता है। संभव है कि रौनाही इसी का बिगड़ा रूप हो। रत्नपुर प्राकृत रअणउर—रौनाही।

बना कर घर से निकाल दिया। कुलगुरु वसिष्ठ सब जानते थे, परन्तु राजा से कुछ न बोले और सत्यव्रत सदा के लिये अयोध्या छोड़ कर श्वपचों के बीच में झोपड़ी बना कर रहने लगा। परन्तु वसिष्ठ से जलता रहा क्योंकि वसिष्ठ जानते थे कि राजकुमार का अपराध ऐसा घोर नहीं था जो उसे ऐसा दंड दिया जाता और राजा को समझा बुझा कर उसे बुला लेते। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि वसिष्ठ ने जानबूझ कर मौन साधा। राजा भी पुत्रवियोग से दुखी हो कर बन को चला गया और वसिष्ठ ने कोशलराज और रनवास तक अपने शासन में रक्खा। वसिष्ठ के सहायक ब्राह्मण ही थे। जिससे विदित होता है कि क्षत्रियों या सभासदों का उनसे मेल न था। राज पुरोहित के हाथ में चला गया। यह समय इक्ष्वाकुवंशियों के लिये बड़े संकट का था। इसके बाद बारह वर्ष तक अनावृष्टि हुई। उस समय विश्वामित्र अपने स्त्री, बच्चे कोशल देश के एक तपोवन में छोड़ कर सागरानूप में तपस्या करने चले गये थे जिससे उन्हें ब्राह्मणत्व प्राप्त हो जाय। यह भी कहा जाता है कि विश्वामित्र की स्त्री ने अकाल में अपने बच्चों के प्राण बचाने के लिये अपने दूसरे बेटे गालव को बेंच डालना स्वीकार कर लिया। सत्यव्रत उनके पास पहुंचा और लड़के को लेकर उसका भरण पोषण करने लगा। बच्चे के पालन पोषण में उसके दो प्रयोजन थे, एक बच्चे पर दया, दूसरे विश्वामित्र को प्रसन्न करना। दुखी सत्यव्रत के लिये विश्वामित्र के अनुग्रह का पात्र बनना अत्यन्त उपयोगी था, क्योंकि एक तो विश्वामित्र कान्यकुब्ज के राजा थे, दूसरे ब्राह्मण बन रहे थे। इसी विचार से सत्यव्रत ने विश्वामित्र के कुटुम्ब का पालन अपने सिर लिया और शिकार करके उनको भोजन देता और उनकी और अपनी योग्यता के अनुसार उनका आदर करता था; क्योंकि बाप के बन को चले जाने पर वह राजपद का अधिकारी होगया था। जब अकाल ने प्रचंड रूप धारण किया तो सत्यव्रत ने अपने और विश्वामित्र के कुटुम्ब के पालन

करने को वसिष्ठ का एक पशु मारडाला। इसपर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर उसे तीन पापों का अपराधी बताकर उसका त्रिशंकु नाम रख दिया।

बारह वर्ष बीतने पर विश्वामित्र मुनि होकर लौटे और सत्यव्रत से कहा कि वर मांगो। विश्वामित्र ने उसे सिंहासन पर बैठा दिया और वसिष्ठ के विरोध की उपेक्षा करके यज्ञ किया। इससे प्रकट है कि वसिष्ठ को सेना से या जनता से कोई सहायता न मिली यद्यपि इतने दिनों शासन की बाग उन्हीं के हाथ में थी और ज्यों हीं सत्यव्रत के अधिकार के समर्थन के लिये विश्वामित्र ने जो राजा भी थे और ब्राह्मणत्व भी प्राप्त कर चुके थे, उठ खड़े हुये वसिष्ठ का बल नष्ट हो गया। वसिष्ठ के हाथ से राज तो जाता ही रहा राजा की पुरोहिताई भी गई। अब बदला लेने के लिये उन्होंने कहा कि विश्वामित्र ब्राह्मण हुये ही नहीं परन्तु अन्त में विश्वामित्र ही की जीत रही।

(३१) त्रिशंकु—त्रिशंकु का चरित्र वाल्मीकीय रामायण बालकण्ड सर्ग: ५७, ६० में दिया हुआ है जिसका सारांश यह है; इक्ष्वाकुवंशी राजा त्रिशंकु की यह अभिलाषा हुई कि हमको सदेह देवताओं की परमगति मिलै। उसने अपना विचार वसिष्ठ से कहा। वसिष्ठ ने कहा कि यह हमारे बस की बात नहीं। यह उत्तर पाकर त्रिशंकु दक्षिण को चला गया जहाँ वसिष्ठ के बेटे तप कर रहे थे और उनसे अपनी मनोकामना कही। वसिष्ठपुत्रों ने कहा कि जब तुमसे कुलगुरु ने कह दिया कि यह नहीं हो सकता तो तुम हमारे पास क्यों आये हो। इसपर रुष्ट होकर त्रिशंकु ने कहा कि तुम नहीं करते तो हम दूसरे के पास जाते हैं। राजा की ऐसी बातें सुनकर ऋषिपुत्रों ने उसे शाप दिया कि तुम चाण्डाल हो जाओ। इस दशा में वह विश्वामित्र के पास गया जिसके कुटुम्ब का उसने आपत्काल में भरण पोषण किया था। विश्वामित्र ने उसपर दया की और कहा कि हम तुम्हारे लिये यज्ञ करेंगे और सब ऋषियों को निमंत्रण दिया। वसिष्ठ-पुत्र न आये और उन्हें विश्वामित्र ने शाप

दे दिया। यज्ञ में देवता भी न आये; इसपर विश्वामित्र ने त्रिशंकु को अपने तपोबल से स्वर्ग की ओर उठा दिया। इन्द्र ने उससे कहा कि तुम स्वर्ग में नहीं रह सकते और उसे गिरा दिया। तब विश्वामित्र ने कहा कि तुम ठहरे रहो। तब से दक्षिण की ओर आकाश में सिर नीचे वह लटका हुआ है। उसी की राल से कर्मनासा नदी निकली है।* इसका यही ऐतिहासिक अर्थ हो सकता है कि विश्वामित्र ने दक्षिण आकाश में एक नक्षत्र का नाम त्रिशंकु रखकर उसको अमर कर दिया। त्रिशंकु की रानी केकय-वंश की राजकुमारी थी।

(३२) हरिश्चन्द्र—श्रीरामचन्द्र से पहिले अयोध्या के जितने राजा हुये उनमें हरिश्चन्द्र सब से प्रसिद्ध हैं। उनकी सत्यप्रियता ऐसी थी की उसके लिये अपनी प्यारी से प्यारी वस्तु त्याग देने में उन्हें संकोच न हुआ। इसी विषय पर अनेक हिन्दी नाटक बन गये जो अत्यन्त लोक प्रिय हैं; पौराणिक कथा का आधार वैदिक उपाख्यान पर है और वह प्रचलित कथा से भिन्न है। इससे हम फिर रायल एशियाटिक सोसाइटी के १९१७ के जर्नल से मिस्टर पार्जिटर के विचार उद्धृत करते हैं। इसमें उन्होंने कथा की ऐतिहासिक मात्रा पर अपना मत प्रकट किया है।

'राजा हरिश्चन्द्र के कोई पुत्र न था। उन्होंने नारद के कहने से वरुणदेव से प्रार्थना की कि मेरे पुत्र हो तो तुम्हें बलि चढ़ा दूँ। वरुण ने उनका मनोरथ पूरा कर दिया और रोहित का जन्म हो गया। वरुण ने तुरन्त ही अपनी भेंट मांगी। देवता से लड़का इस लिये मांगना कि जनमते ही लड़का बलिदान कर दिया जाय एक अनोखी बात है परन्तु ऐसे धार्मिक विषय में यह बात असंभव है कि राजा ने अपने कुलगुरु वसिष्ठ से मंत्र न लिया हो। वसिष्ठ इस प्रतिज्ञा को जानते तो थे ही परन्तु लड़का पैदा हो गया और कुछ बोले नहीं। राजा, वरुण को आज्ञा टालता

* वसिष्ठ और विश्वामित्र के झगड़े का एक स्थान इसी के पास है। इसका वर्णन उपसंहार (घ) में है।

रहा और यह ठहरा कि जब रोहित सोलह बरस का हो जाय और क्षत्रियों की सजावट से सज जाय तो उसका बलिदान हो। इससे प्रत्यक्ष है कि किसी पुजारी ने वरुण के नाम से इस आग्रह के साथ रोहित की बलि मांगी थी और यह भी कोई न मानेगा कि राजा इतने दिनों वसिष्ठ से पूछे बिना टाल मटोल करता रहा। इससे यह अनुमान होता है कि वसिष्ठ का इसमें स्वार्थ था। नहीं तो क्या कारण है कि वरुण को मनाने का न कोई प्रयत्न किया गया न राजा को बचाने का और वरुण के पुजारी की इस मांग का समर्थन होता रहा कि रोहित का बध किया जाय।

जब रोहित सोलह बरस का हुआ और क्षत्रियों की सजधज से सजा तो राजा ने अपनी प्रतिज्ञा उसे सुनाई। रोहित ने न माना और बन को चला गया। उसके जाने पर राजा बीमार पड़ गया। रोहित ने सुना तो बरस बीतने पर अपने पिता को देखने आया परन्तु फिर समझा बुझा कर बन को लौटा दिया गया। यह चरित कई बरस तक होता रहा, और छठे साल फिर रोहित बन को लौट गया। ऐसी सलाह कभी मित्रभाव से नहीं दी जा सकती। एक राजकुमार को जो अयोध्या में सब तरह के सुख में पला था और अपने बाप का इकलौता बेटा था, इस तरह से घर से निकलवा देना और उसके संकट कटने का कोई प्रतीकार न करना उसको चिढ़ाना न था तो क्या था? बहकानेवाला देवराज इन्द्र कहा जाता है परन्तु देवराज वसिष्ठ ही का नाम हो सकता है। वसिष्ठ ने त्रिशंकु के बनवास में बारह बरस राज किया था अब फिर राज करना चाहते थे। रोहित मार डाला जाता या सदा बनवास भोगता दोनों का फल एक ही था। बरन इस बार वसिष्ठ का पक्ष प्रबल था क्योंकि बेचारे रोहित की दशा सत्यव्रत की दशा से बुरी थी। सत्यव्रत को केवल देश निकाला दिया गया था, रोहित के तो प्राण ही देवता को समर्पित हो चुके थे। छठे या सातवें बरस फिर रोहित बन को चला गया। वहाँ उसने देखा कि अजीगर्त अपनी स्त्री और तीन पुत्रों के साथ भूखों मर

रहा है। रोहित ने सौ गायें देकर दूसरे लड़के शुनःशेप को मोल ले लिया और उसको लेकर अयोध्या पहुँचा। राजा हरिश्चन्द्र ने तब यह प्रस्ताव किया कि रोहित के बदले शुनःशेप बलिदान कर दिया जाय और वरुण ने मान लिया। इसमें संदेह नहीं कि रोहित को किसी उपाय से अपने प्राण बचाने की चिन्ता लगी रही और उसने इस आपद्ग्रस्त ब्राह्मणकुल को देखा तो उसे डूबते का सहारा मिल गया। उसे तुरन्त यह सूझा कि अपने बदले मरने को एक लड़का मोल ले ले और उन लोगों ने अपनी विपत्ति के मारे उसकी बात मान भी ली। इससे उस कुटुम्ब का एक मनुष्य मरता था नहीं तो सब भूखों मर जाते। अब रोहित को अपने पिता के पास रहने में कोई बाधा न थी यद्यपि इन्द्र के बहकाने का कारण जैसा पहिले था उसमें कुछ कमी न हुई थी। वरुणदेव ने रोहित के बदले शुनःशेप की बलि स्वीकार कर ली क्योंकि ब्राह्मण की बलि क्षत्रिय की बलि से श्रेष्ठ ही थी। अब वसिष्ठ का बलिदान से कोई प्रयोजन न रह गया। शुनःशेप के आ जाने से बात ही और हो गई। नरबलि से अब कोई प्रयोजन सिद्ध न होता था। परन्तु इस बात को कहता कौन ? कहने से भांडा फूट जाता। अब यही हो सकता था कि यज्ञ प्रारम्भ कर दिया जाय, सब रीतियाँ की जाँय और किसी उपाय से जना दिया जाय कि वरुणदेव बिना बलिदान ही संतुष्ट होगये और शुनःशेप छोड़ दिया जाय। चाल तो चली नहीं इससे वसिष्ठ ने यही उचित समझा कि यज्ञ में कोइ काम न करें। यह भी उचित था कि राजा भी प्रसन्न कर लिया जाय जिसके प्रतिकूल इतने दिनों तक यह चरित्र होता रहा। शुनःशेप ने पुष्कर जाकर अपने मामा विश्वामित्र* से अपने बचाने को कहा और विश्वामित्र उसके साथ अयोध्या चले गये, क्योंकि विश्वामित्र को लोगों ने ब्राह्मण स्वीकार

---

* रामायण में लिखा है कि विश्वामित्र पुष्कर ही में मेनका के साथ बारह बरस रहे थे।

कर लिया था। जब यज्ञ होने लगा तो बलि के लिये शुनःशेप को किसी ने यूप में बाँधना भी स्वीकार न किया। इससे प्रकट है कि यह बलि किसी को अपेक्षित न थी, यहाँ तक कि वह लोग भी न चाहते थे जो रोहित के प्राणों के गाहक थे। विश्वामित्र ने कहा कि सुर मुनि इसकी रक्षा करें। शुनःशेप का बलिदान आदि ही से नाममात्र को था। वह छोड़ दिया गया और विश्वामित्र ने उसे अपना पुत्र मान लिया।

(३३) रोहित—कहा जाताहै कि इसने रोहित (रोहितास) * नगर बसाया था।

(३९) बाहु—यह हैहयों† और तालजंघो से पराजित होकर स्त्री समेत और्व भार्गव के तपोवन को चला गया और वहीं मर गया। उसकी रानी के उसी बनवास में सगर नाम पुत्र हुआ जिसको और्व ने शिक्षा दी।

(४०) सगर—यह बड़ा प्रतापी राजा था। उसने पहले तो हैहयों और तालजंघों को मार भगाया फिर शकों, यवनों, पारदों और पह्लवों को परास्त किया। यह लोग वसिष्ठ की शरण आये। वसिष्ठ ने इनको जीवनमृतप्राय कर दिया और सगर से कहा कि इनका पीछा करना निष्फल है। राजा सगर ने कुलगुरु की आज्ञा से इनके भिन्न वेष कर दिये, यवनों के मुंडित शिर शकों को अर्द्ध मुण्डित पारदों को प्रलम्बमान-केशयुक्त और पह्लवों को श्मश्रुधारी बना दिया। यह लोग म्लेच्छ होगये।

सगर के एक रानी विदर्भराज कुमारी केशिनी और एक कश्यप की बेटी सुमति भी थी। सगरने विदर्भ पर भी आक्रमण किया, परन्तु विदर्भराज ने अपनी बेटी केशिनी उसे देकर सन्धि कर ली। केशिनी

---

* यह नगर बिहार प्रान्त में है। इसका क़िला बहुत प्रसिद्ध है।

† यदुवंशी क्षत्रिय हैहय वंशियों की राजधानी माहिष्मती थी। इस कुल का सबसे प्रसिद्ध राजा कार्त्तवीर्य अर्जुन हुआ था जिसे परशुराम ने मारा था।

के एक बेटा असमंजस हुआ और सुमति के साठ हज़ार पुत्र हुये । असमंजस का लड़का अंशुमान था । सगर ने अश्वमेधयज्ञ के लिये घोड़ा छोड़ दिया। इन्द्र ने उसे चुरा कर वहाँ बाँध दिया जहाँ कपिल मुनि तपस्या करते थे।* सगर के बेटे घोड़े के रक्षक थे; पृथिवी खोदते वहीं पहुंचे और घोड़ा कपिल के पास देखकर बोले, 'यही चोर है, इसे मारो'। इस पर कपिल ने आँख उठा कर ज्योंही उनकी ओर देखा त्योंही सगर के सब लड़के भस्म होगये । सगर ने यह समाचार सुनकर अपने पोते अंशुमान को घोड़ा छुड़ाने के लिये भेजा। अंशुमान उसी राह से चलकर जो उसके चचाओं ने बनाई थी कपिल के पास गया। उसके स्तव से प्रसन्न होकर कपिल मुनि ने कहा कि "लो यह घोड़ा और अपने पितामह को दो ;" और यह बर दिया कि "तुम्हारा पोता स्वर्ग से गंगा लायेगा। उस गंगा-जल के तुम्हारे चचा की हड्डियों में लगते ही सब तर जायेंगे।" घोड़ा पाकर सगर ने अपना यज्ञ पूरा किया और जो गड्ढा उसके बेटों ने खोदा था उसका नाम सागर रख दिया। हम इससे यह अनुमान करते हैं कि सगर के बेटे सब से पहले बंगाल की खाड़ी तक पहुंचे थे और समुद्र को देखा था।

(४४) भगीरथ—यह राजा गंगाजी को पृथिवी पर लाया था; इसीसे गंगा जी को भागीरथी कहते हैं। क्या गंगाजी पहिले नहर ही के रूप में थीं ?

(४७) अम्बरीष—इनकी कथा श्रीमद्भागवतमें दी हुई है और उसी के आधार पर नाभाजी ने भक्तमाल में लिखी है। हम उसे ज्यों का त्यों श्री संतशिरोमणि श्री सीतारामशरण भगवान् प्रसाद उपनाम रूप कला जी के तिलक से उद्धृत करते हैं।

---

* कपिल की तपस्या की जगह बङ्गाल की खाड़ी में उसी स्थान पर है जहाँ गङ्गा समुद्र में गिरती है।

राजा अंबरीष भगवान के बड़े भक्त थे। एक समय द्वादशी के दिन महाराज के यहां दुर्वासा जी आये। महाराजा ने नमस्कार विनय के अनन्तर भोजन के लिये प्रार्थना की। ऋषि जी ने कहा कि स्नान कर आवें तो भोजन करें। इतना कहकर स्नान को गये। परन्तु उस दिन द्वादशी दो ही दंड थी। राजा ने विचार किया कि त्रयोदशी में पारण न करने से शास्त्राज्ञा उल्लंघित होगी। तब ब्राह्मणों ने कहा कि किंचित्-मात्र जल पी लीजिये। राजा ने ऐसा ही किया। दुर्वासा जी आये और अनुमान से जाना कि इन्होंने जल पिया है। फिर तो अत्यन्त क्रोध करके अपनी जटा को भूमि में पटक के महाविकराल "कालकृत्या" उत्पन्न करके उससे कहा कि "इस राजा को भस्म करदे"। इतने पर भी श्री अम्बरीष जी हाथ जोड़, दुर्वासा की प्रसन्नता की अभिलाषा में खड़े ही रहे। "श्री-सुदर्शनचक्र जी" जो श्रीप्रभु की आज्ञानुसार राजा की रक्षार्थ सदा समीप ही रहा करते थे, दुर्वासा के दुःखदायी क्रोध से दुःखित हो के उस कालाग्नि कृत्या को अपने तेज से जला के राख कर दिया और ब्राह्मण की ओर भी चले। यह देख दुर्वासा जी भागे और चक्रतेज से अत्यन्त विकल हुये।

महाभारत में लिखा है कि राजा अम्बरीप अमित पराक्रमी थे। उन्होंने अकेले दस हज़ार राजाओं के साथ युद्ध किया था और समस्त पृथ्वी पर अपना आधिपत्य फैलाया था।

लिङ्ग पुराण में लिखा है कि महाराजा अम्बरीष अत्यन्त विष्णुभक्त थे; राज्य भार मन्त्रियों को देकर उन्होंने बहुत दिनों तक विष्णु भगवान् की आराधना की! भगवान् विष्णु उनकी भक्ति की परीक्षा और वर देने के लिये इन्द्र का रूप धारण कर उनके समीप उपस्थित हुये। परन्तु विष्णुभक्त अम्बरीप ने इन्द्र से कोई भी वर नहीं माँगा और बोले, मैं न तो आपको प्रसन्न करने के लिये तपस्या करता हूँ और न मैं आप का दिया हुआ वरही चाहता हूँ आप अपने स्थान को जाइये!

मेरे प्रभु नारायण हैं और उन्हीं को मैं नमस्कार करता हूँ।" इससे विष्णु प्रसन्न हुए और अपने रूप से उनके सामने प्रकट हुए।

महाराज अम्बरीष की अत्यन्त सुन्दरी एक कन्या थी, जिसका नाम सुन्दरी थी। यह कन्या विवाह के योग्य होगई थी। एक समय देवर्षि नारद और पर्वत किसी कार्यवश अम्बरीष के पास आये थे। उन दोनों ने अम्बरीष की कन्या से विवाह करने की अपनी अपनी अभिलाषा प्रकट की। अम्बरीष बोले, आप दोनों महामुनि हैं, कन्या को अर्पण करना हमारे बस की बात नहीं है। अतएव आप लोग और किसी दिन आवें, कन्या जिसके वरमाला डाल दे, वही उससे व्याह करले। नारद ने अम्बरीष को विष्णुभक्त जानकर और विष्णु के समीप जाकर सब बातें कहीं, और पर्वत का मुख वानर के समान बनाने के लिये भी कहा। विष्णु ने नारद की प्रार्थना स्वीकृत की। परन्तु पर्वत से इस विषय में कुछ कहने के लिये मना किया। थोड़ी देर के बाद पर्वत भी विष्णु भगवान् के समीप पहुंचे और उन्होंने भी नारद के समान ही विनती की। विष्णु ने इनकी भी बातें मानलीं; और कह दिया कि इस विषय में नारद से कुछ न कहना। समय आ पहुंचा, दोनों मुनि विवाह की इच्छा से अम्बरीष के यहाँ पहुंचे। अम्बरीष ने अपनी कन्या से कहा कि तुम जाकर इनमें से पति वरण कर लो। कन्या अम्बरीष की आज्ञा से वरमाला लेकर उनके सामने गयी। कन्या स्वयं राधा थीं। उन्होंने कृष्ण से व्याह करने के लिये तपस्या करके अम्बरीष के यहाँ जन्म ग्रहण किया था। श्रीमती मुनियों के पास जाकर अत्यन्त डर गयीं। अम्बरीष के कारण पूछने पर श्रीमती बोलीं "यहाँ न तो नारद हैं और न पर्वत ही हैं, दो आदमी देखे तो जाते हैं परन्तु उनका मुँह वानरों का सा है।" यह सुन कर राजा को अत्यन्त विस्मय हुआ। उन दोनों के बीच एक तीसरा सुन्दर पुरुष बैठा था। श्रीमती ने उसी को वरमाला पहना दी। वरमाला पहनाने पर श्रीमती अदृश्य हो

गयीं, ये तीसरे पुरुष साक्षात भगवान् थे। भगवान् ने साक्षात् श्रीमती को अन्तर्द्धान कर दिया। इससे दोनों मुनियों को बड़ा क्रोध हुआ। वे कहने लगे "अम्बरीष ने माया रच कर हम लोगों को धोखा दिया। अतएव अम्बरीष, तुम अन्धकार से घिर जाओगे। तुम अपने शरीर को भी नहीं देख सकोगे।" अम्बरीष की रक्षा के लिये विष्णु का सुदर्शनचक्र उपस्थित हुआ, विष्णुचक्र अन्धकार को दूर कर मुनियों के पीछे दौड़ा। मुनि चारों ओर घूमते फिरे परन्तु विष्णुचक्र से रक्षा पाने का कोई उपाय उन्हें नहीं सूझा। अन्त में विष्णु के समीप उपस्थित हो कर, उन्होंने क्षमा प्रार्थना की। तब विष्णु ने सुदर्शन को निवृत्त किया। उन दोनों मुनियों ने प्रतिज्ञा की कि हम लोग कभी विवाह न करेंगे। *

५०—ऋतुपर्ण—निषध के राजा नल ने बाहुक बनकर इसी के यहाँ रथ हाँकने की नौकरी की थी। ऋतुपर्ण ने जुये का खेलना नल को सिखाया जिससे उसने अपना हारा राज-पाट सब फिर अपने भाई से ले लिया और उससे घोड़ा हाँकना सीखा।

५३—मित्रसह या कल्माषद—इस राजा के इतिहास का कुछ अंश अर्बुद माहात्म्य में दिया हुआ है, जिसका संक्षेप हमने अपने अंग्रेजी हिस्ट्री ऑफ़ सिरोहीराज (History of Sirohi Raj) में दिया है। यहाँ फिर वसिष्ठ जी आ जाते हैं। कल्माषद एक दिन शिकार खेल रहा था जब उससे वसिष्ठ के बेटे शक्तृ से भेंट हुई। राजा ने शक्तृ से कहा कि तुम हमारे आगे से हट जाओ। शक्तृ ने क्रुद्ध हो कर राजा को शाप दिया कि तू राक्षस हो जा। † राक्षस होते ही कल्माषद शक्तृ और उसके भाइयों को खा गया। विष्णु पुराण की कथा इसके कुछ भिन्न है।

---

* यही कथा गोस्वामी तुलसीदास जी ने बालकाण्ड में विश्वमोहिनी स्वयंवर के रूप से वर्णन की है।

† महाभारत में यह कथा बड़े विस्तार के साथ लिखी है पर वा० रा० में कुछ भेद करके दी हुई है। (आदि पर्व १७६)।

उसमें लिखा है कि राजा ने एक बाघ मारा था जिसने राजा से कहा था कि मैं तुम से बदला लूंगा और राजा के यज्ञ की समाप्ति पर रसोइयाँ बनाकर उसने वसिष्ठ के आगे नरमांस परोस दिया ; इस पर वसिष्ठ ने राजा को शाप दिया कि तुम राक्षस हो जाओ। राजा का कुछ दोष न था इसलिये उसने भी वसिष्ठ को शाप देना चाहा परन्तु उसकी रानी दमयन्ती ने उसे मना किया और कहा कि कुलाचार्य को शाप देना अनुचित है और राजा मान गया। पीछे राजा ने ऋतुकाल में दयिता-संगत एक ब्राह्मण को देखा और उसको पकड़ लिया। ब्राह्मणी ने बिनती करके उसको छुड़ाना चाहा परन्तु राजा ने उसे मार डाला।

५४ अश्मक—इसने पौदन्य नामक नगर बसाया था।

५५ मूलक—विष्णु, पुराण में लिखा है कि जब परशुराम ने पृथ्वी को निःक्षत्रिया करना चाहा तो स्त्रियों ने इसकी रक्षा की। इसलिये इसका "नारी-कवच" नाम पड़ा। यह समझ में नहीं आता कि पृथ्वी निःक्षत्रिया कब और कैसे हुई। राम भार्गव और अर्जुन हैहय में लड़ाई अवश्य हुई थी परन्तु मूलक से नौ पीढ़ी नीचे इक्ष्वाकु वंशी श्रीरामचन्द्र जी ने राम भार्गव का मान मन्द किया था।

५९ दिलीप द्वितीय खट्वाँग—यह भगवद्भक्त था। इसने देवासुर संग्राम में असुरों को जीता और जब देखा कि इसकी आयु एक मुहूर्त्त ही और बची है तो फिर अपने देश को लौट आया और विष्णु भगवान् का ध्यान करके उन्हीं में लवलीन हो गया।

हरिवंश में लिखा है कि अयोध्या के इक्ष्वाकु वंशी राजा हर्यश्व ने मधुदैत्य की बेटी मधुमती के साथ अपना विवाह कर लिया। इस पर उसके बड़े भाई ने उसे निकाल दिया और वह अपने ससुराल चला गया। यहाँ उसके ससुर ने अपने बेटे लवण के लिये मधुवन छोड़ कर उसे अपना सारा राज दे दिया। तब हर्यश्व ने गिरिवर में जिसे आजकल गोवर्द्धन कहते हैं, एक महल बनवाया और आनर्त्त राज्य स्थापित करके

उसमें अरूप जिसे अनूप भी कहते हैं मिला लिया। हर्यश्व का बेटा यदु था; उसकी तीसरी पीढ़ी में भीम हुआ। भीम के समय में श्रीरामचन्द्र ने लवण को वध करके उसके दुर्ग मधुवन के सर करने को शत्रुघ्न को भेजा था। शत्रुघ्न ने यमुना के तट पर मथुरा नगरी बसाई। परन्तु शत्रुघ्न के चले जाने पर भीम ने उसे अपने राज्य में मिला लिया जो उसकी संतान में वसुदेव तक के पास रहा। यह हर्यश्व कौन था, हमारी वंशावली में हर्यश्व दो हैं एक, १५ हर्यश्व १, और दूसरा २७ हर्यश्व २, दोनों श्रीरामचन्द्र जी से कई पीढ़ी ऊपर हैं। हरिवंश की बात मानी जाय तो हर्यश्व से चौथी पीढ़ी उतर कर भीम श्रीरामचन्द्र का समकालीन ठहरता है। हरिवंश का हर्यश्व वंशावली का हर्यश्व २ माना जाय तो मधु की बेटी की पाँचवीं पीढ़ी और उसका बेटा लवण हर्यश्व २ से उतर कर सैंतीसवीं पीढ़ी में श्रीरामचन्द्र के समकालीन होता है। इससे जान पड़ता है कि हरिवंश का हर्यश्व दिलीप का भाई था जिसने नाम मात्र को राज किया और मधु के साथ संबंध करने के कारण अयोध्या से निकाल दिया गया। *

हर्यश्वश्च महातेजा दिव्ये गिरि वरोत्तमे।
निवेशयामास पुरं वासार्थममरोपमः॥
आवर्त्त नाम तद्राष्टं सुराष्ट्रं गोधनायुतम्।
अचिरेणैव कालेन समृद्धम्प्रत्यपद्यत॥
अनूपविषय श्चैव वेलावनविभूषितम्।

(हरिवंश अध्याय १४)।

६१ रघु—यह बड़ा प्रतापी राजा था और दिग्विजय कर के जिसका वर्णन रघुवंश के चौथे सर्ग में है, सह्य, वंग, कलिंग, पांड्य, केरल, अपरान्तक, पारसीहूण कम्बोज, उत्सव संकेत और प्राग्ज्योतिष देश जीते। पारसीक ईरानवासी थे इससे विदित है कि रघु ने भारत के बाहर के भी देश जीत लिये थे। रघु के दिग्विजय की व्याख्या उपसंहार (क) में दी हुई है।

---

* Growe's Mathura District Memoir, page 287.

६२ अज—इनका विवाह विदर्भकुल की राजकुमारी इन्दुमती के साथ हुआ था। जब ये अयोध्या से विदर्भ को जा रहे थे तो रास्ते में इन्हें एक गन्धर्व से जृम्भकास्त्र मिला। यह एक विचित्र हथियार था जिसके चलाने से बैरी की सेना बेसुध हो जाती थी और बिना वध किये ही बैरी जीत लिया जाता था। भारतवर्ष में जीव नष्ट करने के सामग्री की कमी नहीं है, परन्तु बिना जीव मारे कार्य सिद्ध हो जाना भी एक लाभ समझा जाता है। ऐसा ही एक अस्त्र श्रीरामचन्द्र को विश्वामित्र ने दिया था।

६३ दशरथ—यह भी बड़े प्रतापी राजा थे। इनके तीन रानियाँ थीं। एक कौशल्या जो सम्भवतः दक्षिण कोशल की राजकुमारी थीं, दूसरी मगध की राजकुमारी सुमित्रा और तीसरी केकय देश की कैकेयी। कैकेयी के विवाह की कथा कुछ रोचक है इससे यहाँ लिखी जाती है।

"इसी समय केकय देश के राजा अश्वपति परिवार समेत कुरुक्षेत्र की यात्रा को आये थे। वहीं महाराज दशरथ ने उनकी परम सुन्दरी कन्या देखी और उनसे यह प्रस्ताव किया कि इसका विवाह हमारे साथ कर दो। कन्या का नाम पुस्तकों में दिया हुआ नहीं है, परन्तु केकय राजवंश की होने से वह संसार में कैकेयी नाम से प्रसिद्ध हुयी। यद्यपि उस राजवंश की और राजकुमारियाँ भी सूर्य्यवंशी राजाओं को व्याही जा चुकी थीं। कैकेयी और अश्वपति दोनों ने उत्तर दिया कि विवाह इस शर्त पर हो सकता है कि इस संबंध से जो लड़का हो वही राज्य का उत्तराधिकारी हो। महाराज दशरथ ने यह शर्त स्वीकार कर ली और विवाह हो गया। यह शर्त नयी न थी। महाभारत में लिखा है कि जब राजा शान्तनु ने सत्यवती के साथ विवाह करना चाहा तो सत्यवती और उसके पिता दासराज ने भी ऐसी ही शर्त की थी और उसी के आग्रह से शान्तनु के बेटे देवव्रत ने जो पीछे से भी भीष्म कहलाये राज्य

का दावा छोड़ दिया और अपना विवाह तक न किया जिससे कोई और दावादार न खड़ा हो जाय।

यद्यपि महाकवि कालिदास ने नहीं लिखा परन्तु महाभारत में ऐसी ही शर्त शकुन्तला ने भी दुष्यन्त के साथ की थी।

पीछे देवासुर संग्राम में और राजाओं के साथ महाराज दशरथ इन्द्र की सहायता को गये थे और कैकेयी को भी अपने साथ लेते गये थे। यह लड़ाई दण्डकवन में शम्बरासुर के वैजयन्तम नगर में हुई थी। शम्बरासुर बड़ा मायावी था। ऐसा भारी संग्राम हुआ कि राक्षसों ने सोते हुये पुरुषों को भी घायल कर दिया और घायलों को मार डाला। महाराज दशरथ भी असुरों के अस्त्रों से घायल होकर मूर्छित हो गये थे। उस समय कैकेयी उनको समर-भूमि से हटा ले गयी और उनकी सेवा शुश्रूषा की। एक दूसरी लड़ाई में महाराज दशरथ फिर घायल हो गये थे और शीत से व्याकुल थे वहाँ भी कैकेयी ने उनके प्राण बचाये थे। इन दोनों कार्यों से सन्तुष्ट होकर राजा ने कैकेयी को दो वर दिये थे। कैकेयी ने उत्तर दिया कि दोनों वर हमारे आप थाती की भाँति रखिये जब प्रयोजन होगा माँग लूँगी।

कौशल्या से श्रीरामचन्द्र जी का जन्म हुआ। सुमित्रा के दो बेटे लक्ष्मण और शत्रुघ्न थे और कैकेयी के एक लड़का भरत हुआ। जब लड़के सयाने हुये और महाराज दशरथ ने सर्वसम्मति से ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचन्द्र को युवराज बनाना चाहा तो रानी कैकेयी ने दोनों वरों के आधार पर अपने बेटे भरत के लिये राज तो मांगा ही, श्रीरामचन्द्र को चौदह वर्ष का बनवास दिला दिया। उस समय भरत अपने नानिहाल में थे। श्रीरामचन्द्रजी का विवाह मिथिला के राजा जनक-वंशी सीरध्वज की बेटी श्री सीता जी के साथ हुआ था। उनके भाई लक्ष्मण ने भी कहा कि हम साथ चलेंगे। सब को समझा बुझा कर श्रीरामचन्द्र जी, सीताजी और लक्ष्मण के साथ वन को चले गये।

राजा दशरथ पुत्र-शोक में मर गये और भरत ने नानिहाल से आकर राज्य करना स्वीकार न किया और श्रीरामचन्द्र को फिर अयोध्या लौटा लाने को चित्रकोट गये जहाँ श्रीरामचन्द्र जी उन दिनों रहते थे। श्रीरामचन्द्र जी ने न माना। तब भरत नगर के बाहर कुटी बनाकर रहे और वहीं से राज-काज देखा।

६४ श्रीरामचन्द्र—मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् के सब से बड़े अवतार, आदर्श राजा माने जाते हैं। इनकी कथा ऐसी प्रसिद्ध है कि उसके यहाँ लिखने का कुछ प्रयोजन नहीं। लड़कपन ही में इन्होंने राजा गाधि के पुत्र विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा की थी। इनका विवाह मिथिलापति जनक की बेटी श्रीसीता जी के साथ हुआ। पीछे पिता का वचन प्रमाण करने को वन को चले गये। वहाँ सीता हर ले जाने के कारण दक्षिण की असभ्य जातियों से मेल करके लंका के राजा रावण को मार कर उसका राज उसके भाई को दे दिया और सीता समेत फिर अयोध्या लौटकर ऐसा अच्छा राज किया जिससे आजकल भी जिस राज में सब तरह का सुख हो, उसे रामराज कहते हैं। कुछ विजय से और कुछ मामा से पाकर श्रीरामचन्द्र सारे भारत के साम्राट थे और स्वर्ग जाने से पहिले उन्होंने अपना राज अपने दो बेटों और ६ भतीजों में इस तरह बाँट दिया था :—

बेटे—१ कुश—विन्ध्याचल के तट में दक्षिण कोशल, जिसकी राजधानी कुशावती थी। यह राज इन्हें संभवतः नानिहाल से मिला था क्योंकि कौशल्या यहीं की राजकुमारी थीं। कोई कोई द्वारका को और कुछ पंजाब में कसूर को भी कुशावती मानते हैं।

२—लव—उत्तर कोशल में शरावती। पंजाव के लाहौर को भी लव का बसाया हुआ मानते हैं।

भतीजे—(लक्ष्मण के बेटे)—३ अंगद को हिमालय की तरेटी में अंगदराज।

४ चन्द्रकेतु को चन्द्रचक्र—हिमालय की तरेटी में।

५ (भरत के बेटे) तक्ष—को तक्षशिला जो संभवतः केकय देश में था जो नाना से मिला था—तक्षशिला के खंडहर रावलपिंडी ज़िले में है।

६ पुष्कल—को पुष्करावती, यह भी गान्धार देश (केकयदेश) में था।

७ शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन—(बहुश्रुति) को मथुरा।

८ सुबाहु—को विदिशा (आज कल का भिलसा)।

अयोध्या उजाड़ दी गई थी, कदाचित् भाइयों में तकरार के डर से।

६५ कुश—परन्तु भाइयों ने सहमत होकर कुश को सम्राट् माना और उन्होंने अयोध्या को फिर से बसाया।

८२ हिरण्यनाभ—यह योग-दर्शन के आचार्य महायोगीश्वर जैमिनी का शिष्य था और इसी से याज्ञवल्क्य ने योग सीखा।* यही हिरण्यनाभ सामवेद का भी आचार्य था।

यहाँ उसको कोशल्य लिखा है जिससे स्पष्ट है कि वह कोशला का राजा था।

९४ बृहद्बल—इसको महाभारत में अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु ने मार डाला।†

महाभारत के पीछे कोशला के राजाओं की नामावली में चार नाम देख कर कुछ आश्चर्य होता है।

---

* विष्णु पुराण अंश ४ अध्याय ४।

† महाभारत की लड़ाई में कोशलराज के कुछ लोग पाण्डवों की ओर से लड़े कुछ कौरवों की ओर से। इससे यह अनुमान किया जाता है कि उस समय कोशलराज के दो खंड हो गये थे। एक पूर्वी दूसरा पश्चिमी। पूर्वी कोशल के राजा जरासन्ध के डर से भाग कर दक्षिण को चले गये और पश्चिमी कोशल का राजा बृहद्बल था।

२३ शाक्य—यही बुद्धदेव के कुल का भी नाम ।

२४ शुद्धोदन—बुद्धदेव के पिता का भी नाम ।

२५ सिद्धार्थ—बुद्धदेव ही का नाम, बुद्ध होने से पहिले ।

२६ राहुल—बुद्धदेव के बेटे का नाम ।

इसमें संदेह नहीं कि कपिलवस्तु कोशल देश के अन्तर्गत था परन्तु इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि श्रावस्ती में जहाँ इस समय राजधानी अयोध्या से उठ कर चली गई थी, कभी कपिलवस्तु के राजाओं ने राज किया। महावीर तीर्थंकर के पिता इक्ष्वाकुवंशी सिद्धार्थ थे परन्तु वे विशाला के रहने वाले थे। ऐसा अनुमान किया भी जाय तो उसका खंडन यों हो जाता है कि प्रसेनजित जिसने तक्षशिला के विद्यालय में शिक्षा पाई थी, बुद्धदेव के पास गया था और उनसे कहा था कि लिच्छवी राजा और मगध के बिंबिसार दोनों मेरे मित्र हैं। प्रसेनजित का विस्तार सहित वर्णन अध्याय ९ में दिया हुआ है।

उसका बेटा क्षुद्रक (सं० २८) बौद्ध ग्रन्थों में विरूधक कहलाता है, कदाचित् इसलिये कि बौद्धों से विरोध रखता था। यह शाक्यों के वध के लिये इतिहास में प्रसिद्ध है।

कुछ विद्वानों का मत है कि अन्तिम राजा सुमित्र महापद्मनन्द के समय की क्रान्ति में ई० पू० ४२२ में मारा गया था। परन्तु जिस शिलालेख का वर्णन अध्याय ७ पर है उसके अनुसार कम से कम ५० बरस पहिले सूर्यवंश का अन्त हो गया था।

जापान के सुप्रसिद्ध विद्वान् आर० किमोरा कुछ दिन हुये भारत में आये थे। उनका विचार है कि जापानी भारतवासियों की सन्तान हैं। यह बात बड़ी मनोरञ्जक है। जापानी मिकाडो को अम्मा की सन्तान मानते हैं क्योंकि पहिले मिकाडो की उत्पत्ति अम्मा में मानी जाती है और अम्मा ईश्वर का अवतार था। क्या इस अनुमान से विशेष आपत्ति

हो सकती है कि अम्मा राम ही का अपभ्रंश है ? जापानी मिकाडो को सूर्यवंशी मानते हैं। इससे इस विचार की ओर भी पुष्टि हुई जाती है कि मिकाडो की उत्पत्ति उसी सूर्यवंश से हुई जिसमें श्रीरामचन्द्र ने अवतार लिया था।

यह कहना कठिन है कि यहाँ से लोग जापान कब गये। गोआ के प्रोफेसर पाण्डुरङ्ग पिसुलेंकर ने सिद्ध कर दिया है कि अयोध्या के क्षत्रिय तिब्बत और श्यामदेश गये और वहाँ राजधानियाँ स्थापित कीं। उनके आविष्कार एक फ्रांसीसी पत्र में छपे हैं। इस पत्र में यहाँ तक लिखा है कि भारतवासियों ने अमरीका को भी आबाद किया था। *

---

* Hindustan Review, Vol. XXV, page 61. श्याम देश में राजधानी का नाम अयोध्यापुर था।

सीगापर्वत

सातवाँ अध्याय ।

(ख) शिशुनाक, नन्द, मौर्य और शुङ्गवंशी राजा ।

शिशुनाक—अयोध्या में शिशुनाक वंशी राजाओं के शासन का प्रमाण बहुत ही सूक्ष्म है परन्तु इसको छोड़ना उचित नहीं। अवध गज़ेटियर जिल्द १ पृष्ठ १० में मणिपर्वत के वर्णन में लिखा है :—

मगध का राजा नन्दवर्द्धन-महाराज मानसिंह ने हमको बार-बार विश्वास दिलाया है कि इसी शताब्दी में इसी टीले में एक शिला लेख गड़ा हुआ मिला था। उसमें लिखा था कि यहाँ किसी समय में राजा नन्दवर्द्धन का राज था और उसी ने यह स्तूप बनवाया था। महाराज ने यह भी कहा था कि बादशाह नसीरुद्दीन के समय में यह शिला लेख लखनऊ भेजा गया था और शाहगंज में इसकी एक नक़ल भी थी परन्तु न मूल का पता लगा न नक़ल का।

उसी की टिप्पणी में यह लिखा है :—

इसके पीछे अयोध्या के विद्वान् पण्डित उमादत्त ने इस कथन का समर्थन किया और यह कहा कि हमने तीस, चालीस वर्ष हुये इस शिला लेख का अनुवाद किया था। उसकी प्रतिलिपि भी खो गई और वे यह नहीं बता सकते कि इसमें क्या लिखा था।

महाराज मानसिंह या पण्डित उमादत्त जी (पण्डित उमापति त्रिपाठी) की बातों को विश्वास न करने का कोई कारण नहीं है। हमारे लड़कपन में पण्डित जी श्री अवध के एक प्रसिद्ध महात्मा थे और न महाराज को और न उनको झूठी बात कहने का कोई प्रयोजन हो सकता है, विशेष करके जब नन्दवर्द्धन के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि उसने अयोध्या में सनातन धर्म को नष्ट करके एक वर्णहीन धर्म स्थापित

किया जिसे जनता ने ग्रहण कर लिया, मणिपर्वत के विषय में पौराणिक जनश्रुति का समूलोच्छेदन करता है।

इतिहास में नन्दवर्द्धन (नन्दिवर्द्धन) दो हैं, पहिला प्रद्योत कुल का पाँचवाँ राजा जो ई० पू० ७८२ में मरा और दूसरा शिशुनाक वंश का नवाँ राजा जो ई० पू० ४६५ में मरा। हमारे मत में मणि-पर्वत का बनाने वाला शिशुनाक वंशी नन्दिवर्द्धन है। अजातु-शत्रु ने भगवान् बुद्ध-देव से दीक्षा ली थी इससे उसके उत्तराधिकारी भी बौद्धधर्मावलम्बी रहे होंगे और इनमें एक में न केवल सनातन धर्म को दबाया वरन् एक बड़ा स्तूप भी बनवाया जो अबतक विद्यमान है।

नन्द—नन्दिवर्द्धन के उत्तराधिकारी को महापद्मनन्द ने मार डाला और ई० पू० ४२२ से नन्दवंश चला। कोशल देश भी इन्हीं के अधिकार में चला गया। महापद्मनन्द ने ८८ वर्ष राज किया। जब पिता का शासन-काल बहुत बड़ा होता है तो बेटे बहुत दिन तक राज नहीं कर सकते। महापद्मनन्द के आठ बेटों ने केवल १२ वर्ष राज किया। आठवें बेटे को ई० पू० ३२२ में चाणक्य ने मार डाला और चन्द्रगुप्त मौर्य को सिंहासन पर बैठा दिया।

मौर्य—पहिले तीन मौर्य सारे भारतवर्ष के साम्राट् थे और आज-कल का अफ़ग़ानिस्तान भी उन्हीं के शासन में था। अशोक के पीछे चौथा राजा शालिसूक था। गर्गसंहिता में लिखा है कि इसके शासन-काल में दुष्ट यवन साकेत, पाञ्चाल और मथुरा जीत कर पट्टन तक पहुँचे थे। यह आक्रमण केवल लूट-पाट के अभिप्राय से था और देश पर आँधी की भाँति उड़ गया।

मौर्य वंश ने ई० पू० ३२२ से ई० पू० १८५ तक १३७ वर्ष राज किया। उन्हीं की सेना का सेनापति पुष्पमित्र अपने स्वामी को मार कर आप राजा बन बैठा।

शुङ्ग—पुष्पमित्र शुङ्गवंशी था और उससे शुङ्ग राज की नेंव पड़ी।

वह सनातन धर्म का कट्टर पक्षपाती था और इसी से उसने बौद्धों को सताया। प्रसिद्ध है कि उसने पूर्व मगध से पश्चिम के जालंधर (पञ्जाब) तक मठ जला दिये और बौद्ध भिक्षु मार डाले। उसने कई अश्वमेध यज्ञ किये जिसमें एक का उल्लेख मालविकाग्निमित्र नाटक में है। इस नाटक का नायक पुष्यमित्र का बेटा अग्निमित्र है जो अपने पिता के जीवन काल में बिदिशा का राजा था। प्रसिद्ध भाष्यकार, पातञ्जलि इसी के एक अश्वमेध यज्ञ में पुरोहित था।*

अयोध्या का शासन सूदूर पाटलिपुत्र से होता था तो भी यह उस समय बड़ा समृद्धि नगर था और इसी कारण ई० पू० १५४ में यूनानी राजा मिनान्दर ने इस पर आक्रमण किया। कठोर युद्ध हुआ और यूनानी राजा को अपने देश लौट जाना पड़ा। इसका भी उल्लेख पातञ्जलि ने किया है। †

पुष्यमित्र के पीछे अग्निमित्र ने आठ वर्ष राज किया और उसके पीछे आठ और राजा हुये जिन्होंने सब मिला कर ५८ वर्ष पृथ्वी भोगी।

थोड़े दिन हुये अयोध्या में एक शिला लेख श्रीमती महारानी साहिबा के प्रैवेट सेक्रेट्री और भाषा के सुप्रसिद्ध कवि बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर को मिला था। ‡ उसमें जो लिखा है उसका अनुवाद यह है।

दो दो अश्वमेध करनेवाले सेनापति पुष्यमित्र के छटे।

(?) कोशलाधिप धन (देव) ने अपने पिता फल्गुदेव के लिये यह महल बनवाया।

धनदेव का नाम पाटलिपुत्र के दस शुङ्गवंशी राजाओं में नहीं है। कोशलाधिप उपाधि से विदित होता है कि धन (देव) केवल कोशल का राजा था और उसकी राजधानी अयोध्या थी न कि श्रावस्ती।

---

* पुष्पमित्रं याजयामः।

† अरुणद् यवनः साकेतम्।

‡ इसका वर्णन काशी नागरीप्रचारिणी पत्रिका में दिया हुआ है।

आठवाँ अध्याय।

अयोध्या और जैन-धर्म।

आदि पुराण जैन-धर्म का बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ है।* इसमें लिखा है कि विश्व की कर्मभूमि में अयोध्या पहिला नगर है। इसके सूत्र-धार इन्द्रदेव थे और इसे देवताओं ने बनाया था। पहिले मनुष्य की जितनी आवश्यकतायें थीं उन्हें कल्पवृक्ष पूरी किया करता था। परन्तु जब कल्प-वृक्ष लुप्त हो गया तो देवपुरी के टक्कर की अयोध्या पुरी पृथ्वी पर बनाई गई।

अध्याय १ में हमने दो और जैन-ग्रन्थों से अयोध्या की महिमा का उल्लेख किया है और मूल संस्कृत वर्णन पूरा-पूरा-उपसंहार में दिया हुआ है। इतनी बड़ाई तो महर्षि वाल्मीकि ने भी नहीं की।

आदि पुराण के अनुसार अयोध्या के पहिले राजा ऋषभदेव थे जिनको आदिनाथ भी कहते हैं। यही पहिले तीर्थंकर भी थे। ऋषभदेव जी के पुत्र भरत चक्रवर्त्ती हुये जिनसे यह देश भारतवर्ष या भरत-खण्ड कहलाता है। इस पर हमने अपने विचार अध्याय ७ में लिखे हैं।

आदिनाथ को लेकर २४ तीर्थंकर हुये। जैन-लोगों का विश्वास है कि सब तीर्थंकर काल-क्रम से अयोध्या में जन्म लेते और यहीं राज्य करते हैं, केवल पाँच ही तीर्थों का यहां अन्तिम कल्प में जन्म लेना एक अनोखी बात हुई है।

---

* यह ग्रन्थ विक्रम संवत की आठवीं शताब्दी में लिखा गया था और सं० १९७३ में छपा। इसके रचयिता जिनसेनाचार्य थे। थोड़े दिन हुये प्रसिद्ध विद्वान् मि० चंपत राय जैन ने इसका अंगरेज़ी अनुवाद भी छपाया है उसका नाम Founder of Jainism है।

ऋषभदेव जी के निर्वाण का समय जैन-ग्रन्थों के अनुसार आज से ४१३४५२, ६३०, ३०८, २०३, १७७७४९५१२, १९९९९९९९९९९९ ९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९९६०४७३ (७६ अंक) वर्ष पर्व माना गया है। पंचागों में सृष्टि की आदि से सं० १९८७ के आरम्भ तक १९५५८८५०२८ वर्ष बीते हैं। इन दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। इससे प्रकट है कि ऋषभदेव जी का जन्म किसी पहिले के कल्प में हुआ था।

२४ तीर्थंकरों के नाम निम्नलिखित हैं :—

१ आदिनाथ—इन्हें ऋषभदेव भी कहते हैं राजा नाभि और रानी मेरु देवी के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

२ अजितनाथ—राजा जिनशत्रु और रानी विजया के पुत्र इक्ष्वाकु-वंशी।

३ सम्भवनाथ—राजा जितारि और रानी सेना के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

४ अभिनन्दन नाथ—राजा सम्बर और रानी सिद्धार्था के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

५ सुमतिनाथ—राजा मेघ और रानी मंगला के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

६ पद्मप्रभ—राजा श्रीधर और रानी सुषीमा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

७ सुपार्श्वनाथ—राजा प्रतिष्ठ और रानी पृथ्वी के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

८ चन्द्रप्रभ—राजा महासेन और रानी लक्ष्मणा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

९ सुविधनाथ—राजा सुग्रीव और रानी रमा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१० शीतलनाथ—राजा दृढ़रथ और रानी सुनन्दा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

११ श्रीअंशनाथ—राजा विष्णु और रानी विष्णा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१२ वसुपूज्य—राजा वसु पूज्य और रानी जया के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१३ विमलनाथ—राजा कृत वर्मा और रानी श्यामा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१४ अनन्तनाथ—राजा सिंहसेन और रानी सुयना के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१५ धर्मनाथ—राजाभानु और रानी सुव्रता के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१६ शान्तिनाथ—राजा विश्वसेन और रानी अचिरा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१७ कुन्तनाथ—राजा सूर और रानी श्री के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१८ अरनाथ—राजा सुदर्शन और रानी देवी के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

१९ मल्लिनाथ—राजा कुँभ और रानी पार्वती के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

२० मुनिसुव्रत—राजा सुमित्र और रानी पद्मावती के पुत्र इक्ष्वाकु-वंशी।

२१ नमिनाथ—राजा विजय और रानी प्रिया के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

२२ नेमिनाथ—राजा समुद्रविजय और रानी शिवा के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

२३ पार्श्वनाथ—राजा अश्वसेन और रानी वामादेवी के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

२४ महावीर या वर्द्धमान—राजा सिद्धार्थ और रानी तृशला के पुत्र, इक्ष्वाकु-वंशी।

इनमें से पाँच तीर्थंकरों की जन्म-भूमि अयोध्या मानी जाती है। और उन्हीं के नाम के पांच मन्दिर अब तक अयोध्या में विद्यमान हैं।

१ आदिनाथ का मन्दिर*—यह मन्दिर स्वर्गद्वार के पास मुराई टोले में एक ऊँचे टीले पर है जो शाहजूरन के टीले के नाम से प्रसिद्ध है।

२ अजितनाथ का मन्दिर—यह मन्दिर इटौआ (सप्तसागर) के पश्चिम में है। इसमें एक मूर्ति और शिलालेख है। यह मन्दिर सं० १७८१ में नवाब शुजाउद्दौला के खजानची केसरीसिंह ने नवाब की आज्ञा से बनवाया था।

३ अभिनन्दननाथ का मन्दिर—सराय के पास है। यह भी उसी समय का बना है।

४ सुमन्तनाथ का मन्दिर—रामकोट के भीतर है। इसमें अवध गजेटियर के अनुसार पार्श्वनाथ की दो और नेमिनाथ की तीन मूर्त्तियाँ हैं।

५ अनन्तनाथ का मन्दिर—यह मन्दिर गोलाघाट नाले के पास एक ऊँचे टीले पर है और इसका दृश्य बड़ा मनोहर है।

इन मन्दिरोंमें तीर्थंकरों के चरण-चिह्न बने हैं और इनके दर्शन को

* इस मन्दिर के नष्ट होने का इतिहास अध्याय १२ में है।

दूर दूर के जैन आया करते हैं। नवम्बर से मार्च तक यात्री कुछ अधिक आते हैं।

वाल्मीकीय रामायण और पुराणों के अनुसार जो वंशावली हमने अध्याय ७ में दी है उसमें किसी तीर्थंकर के पिता का नाम नहीं है। भागवत पुराण, चतुर्थ स्कन्द में लिखा है कि स्वायम्भू मनु और शतरूपा के दो पुत्र थे, प्रियव्रत और उत्तानपाद। उत्तानपाद का लड़का ध्रुव था जिसकी कथा संसार में प्रसिद्ध है। उसकी राजधानी विठूर के पास थी।

प्रियव्रत के रथ-चक्र से सात लीकें बनी जो सात समुद्र हुये और उन्हीं समुद्रों के बीच में जम्बू, लक्ष, कुश, शाल्मलि, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप उत्पन्न हुये। राजा प्रियव्रत के सात बेटे थे* अग्नीन्ध्र, इध्मजिह्व, यज्ञवाहु, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, मेधातिथि और वीतिहोत्र और कन्या ऊर्जस्वती थी जो शुक्राचार्य को व्याही थी। वही ऊर्जस्वती राजा ययाति की रानी देवयानी की माँ थी।

प्रियव्रत के पीछे उनका बड़ा बेटा अग्नीन्ध्र जम्बूद्वीप का राजा हुआ। उसने एक अप्सरा के साथ विवाह किया जिससे नौ बेटे हुये, नाभि † किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्यमय, कुरुभद्राश्व और केतुमाल। नवों भाई पृथिवी के भिन्न-भिन्न भागों के राजा हुये जो उन्हीं के नाम से कहलाये। अग्नीन्ध्र के परलोक जाने पर नवों भाइयों ने मेरु की नौ कन्याओं से विवाह किया। बड़ी मेरुदेवी नाभि को व्याही गई। मेरुदेवी के बहुत दिनों तक कोई लड़का न हुआ। तब नाभि भक्ति पूर्वक यज्ञ करने लगे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया और

---

* विष्णु पुराण में इनके दस पुत्र लिखे हैं, इनमें तीन योगपरायण हुये।

† विष्णुपुराण के अनुसार नाभि को दक्षिण भारत का राज मिला था।

नाभि ने उनसे उन्हीं के समान पुत्र माँगा। भगवान् ने प्रसन्न हो कर कहा कि "हमारे समान तो हमीं हैं; तो हमीं तुम्हारे घर में अवतार लेंगे" और कुछ दिन में मेरुदेवी के गर्भ से शुद्ध सत्वमूर्त्ति धारण करके प्रकट हुये। यही ऋषभदेव जी थे।

जब ऋषभदेव जी सयाने हुये तो राजा नाभि उनको राज सौंप कर मेरुदेवी के साथ तपस्या करने बदरिकाश्रम को चले गये।

ऋषभदेव भगवान् शान्त, दान्त, सब प्राणियों के मित्र और परम कारुणीक थे और धर्म से प्रजापालन करते हुये गृहस्थी में रहे। ऋषभदेव जी अपने बड़े बेटे भरत को राज्य देकर सन्यस्त हो गये।

दूसरे तीर्थंकर महावीर हैं जिनका चरित हमें मिला है। ये सात धनुप लम्बे थे और ७२ वर्ष तक जिये। इनके पिता राजा सिद्धार्थ कुन्द-ग्राम के सरदार थे और इनकी माता वैशाली के राजा केतक की बहन थीं। इनका जन्म ईसा से ६०० वर्ष पहिले बतलाया जाता है। २९ वर्ष की अवस्था में इन्होंने दरिद्रों को बहुत सा दान देकर घर छोड़ दिया और १२ वर्ष वनवास करके तीर्थंकर हुये।

अयोध्या के इतिहास में किसी जैन-वंशी राजा का नाम नहीं है। अवध गजेटियर में लिखा है कि घाघरापार के श्रीवास्तव जिन्होंने अयोध्या में बहुत दिनों राज किया और जिन्हें कन्नौज के गहरवारों ने परास्त किया था जैनधर्मी थे। इलाहाबाद जिले के गढ़वा का शिला-लेख सं० ११९९ का है और मेवहड़ का सं० १२४५ का। गढ़वा में श्री ठाकुर कुन्दपाल श्रीवास्तव में नवग्रह का मन्दिर बनवाया और मेवहड़ में एक दूसरे श्रीवास्तव्य ठक्कुर ने सिद्धेश्वर का। दोनों से सिद्ध होता है कि ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी में श्रीवास्तव बड़े प्रतिष्ठित थे और ठाकुर कह-लाते थे और जैन न थे। अयोध्या के श्रीवास्तव और कायस्थों के संसर्ग से बचे रहें तो मद्य नहीं पीते और बहुत कम मांसाहारी हैं। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि यह लोग पहिले जैन ही थे।

अध्याय १२ में लिखा जायगा कि राजा सुहेलदेव ने सैयद सालार मसऊद ग़ाज़ी को परास्त किया था। जनश्रुति यह है कि सुहेल देव श्रावस्ती का राजा था। सुहेलदेव के विनाश की विचित्र कथा अवध गज़ेटियर ने लिखी है उसका सारांश यह है :—

"सुहेलदेव के कुल में सूर्यास्त हो जाने पर कोई भोजन नहीं करता था। एक दिन आखेट से बड़ी देर में लौटा। सूर्य अस्त हो रहा था। सुहेलदेव की भ्रातृबधू परम सुन्दरी थी। सुहेलदेव ने उसे कोठे पर भेज दिया कि सूर्य देव उसकी शोभा पर मोहित हो कर ठहर जायँ। सूर्यदेव स्त्री की शोभा पर मुग्ध हो गये और स्तम्भित रह गये। राजा ने भोजन कर लिया। हमारे देश में छोटे भाई की स्त्री को देखना महापाप है। राजा को इस घटना पर बड़ा आश्चर्य हुआ और कौतुक देखने को वह भी कोठे पर चढ़ गया। बधू को देखते ही राजा के मन में पाप समा गया परन्तु स्त्री सती थी उसने न माना। राजा ने उसे बन्दीघर में डाल दिया। स्त्री राजकुमारी थी। उसके पिता राजा ने श्रावस्ती पर चढ़ाई कर दी और सुरङ्ग लगा कर अपनी बेटी को निकाल ले गया। उसके जाते ही राजप्रसाद भी गिर पड़ा और सुहेलदेव उसी से दब कर मर गया।" उसके कोई उत्तराधिकारी न था और बिना राजा के राजधानी भी उजड़ गयी।

इस कथा से हमको इतना ही प्रयोजन है कि जैन ही सूर्यास्त होने पर भोजन नहीं करते। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि श्रावस्ती का अन्तिम राजा जैन था।

---

*Oudh Gazetteer, Vol. I, page 607.

नवाँ अध्याय

अयोध्या और बौद्धमत

"अवध के एक दूसरे महा पुरुष का भी अयोध्या से घनिष्ठ सम्बन्ध है और संसार के इतिहास पर विशेष रूप से अंकित होने से किसी की तुलना हो तो यह पुरुष श्रीराम से भी बड़ा है। शाक्य बुद्ध कपिलवस्तु के राजकुमार थे जो आजकल के गोरखपूर के पास एक नगर था। और उनका कुल कोशल के सूर्यवंश की एक शाखा थी। अयोध्या में उन्होंने अपने धर्म के सिद्धान्त बनाये और अयोध्या ही में बरसात के दिनों में रहा करते थे।" *

"किसी धर्म की जाँच उच्चतम धर्मनीति की शिक्षा से अथवा अंतःकरण के अत्यन्त शुद्ध उद्गार से की जाय तो इस बात के मानने में संदेह हो जायगा कि अबतक किसी मनुष्य के हृदय में इससे उच्चतम विचार उत्पन्न हुये हैं जैसे कि पीछे से एक बौद्ध महात्मा के थे; "हम अपनी व्यक्ति के लिये निर्वाण पाने का न प्रयत्न करेंगे न उसे ग्रहण करेंगे और न अकेले उस शान्ति को प्राप्त करेंगे वरन् हम सर्वदा और सर्वत्र सारे संसार के प्रत्येक जीव के शान्ति पाने का उद्योग करेंगे। जब तक सबका उद्धार न हो जायगा हम इस पाप और दुःख भरे संसार को न छोड़ेंगे और यहीं रहेंगे।" ?

बौद्ध ग्रंथों में अयोध्या को साकेत और विशाखा कहते हैं। दिव्यावदान में साकेत की व्याख्या यों की गयी हैं।

"स्वयमागतं स्वयमागतं साकेत साकेतमिति संज्ञा संवृत्ता"।

---

* Garden of India, pp. 64, 65.

"यह आप ही आया, आप ही आया इसलिये साकेत नाम पड़ गया।"

संस्कृत में केत का अर्थ है बुलाना; आ उपसर्ग लगाने से अर्थ उलट जाता है * इसलिये आकेत का अर्थ हुआ, आप से आप आना और स लगा देने से अर्थ हुआ, "किसी के साथ आप से आप आना।"

विशाखा नाम पड़ने का कारण यह है।

प्रारम्भिक बौद्ध-कालीन इतिहास में विशाखा देवी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। विशाखा राजगृह के एक धनी व्यापारी धनञ्जय की बेटी थी। धनञ्जय राजगृह से साकेत में आकर बसा था और उसने विशाखा का विवाह श्रावस्ती नगर के रहने वाले मृगर से पुत्र पूर्णवर्धन के साथ कर दिया था। विशाखा उन लोगों में से थी जिन्होंने सबसे पहिले बौद्ध-धर्म ग्रहण किया और उसने श्रावस्ती में बुद्धदेव के लिये एक मठ बनवाया था जिसका पूरा नाम प्राकृत में पुब्बारामम-मृगर-मातु-प्रासाद अर्थात् "पूर्वाराम, मृगर की माता का महल था।" मृगर विशाखा का ससुर था परन्तु जब उसकी पुत्रबधू ने उसे बौद्धधर्मावलम्बी बना दिया और वह बुद्ध-भक्त हो गया तब से उसे अपनी माता कहता था। विशाखा ने अयोध्या में भी एक पूर्वाराम बनाया था। इसी के नाम पर कुछ दिन पीछे नगर भी विशाखा कहलाने लगा, जिसे चीनी यात्री हुआंग च्वांग पिसोकिया कहता है। अयोध्या के पूर्वाराम में बुद्ध १६ वर्ष रहे थे।

जब बुद्धदेव अयोध्या में रहते थे उन्हीं दिनों एक बार उन्होंने अपनी दतून फेंक दी थी जो जम गई और उस पेड़ को एक हजार वर्ष पीछे चीनी यात्री फाइहान और उसके भी ढ़ाई सौ वर्ष पीछे हुआन च्वांग ने देखा था। इस दतून से उगे पेड़ का स्थान उस भ्रम का समूलोच्छेदन करता है जो कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने साकेत और अयोध्या के एक होने में किया है।

---

* जैसे गम्=जाना; आ+गम्=आना।

साकेत के विषय में फ़ाहियान लिखता है * कि दक्षिण के फाटक से निकल कर सड़क की पूर्व ओर वह स्थान है, जहां बुद्धदेव ने अपनी दतून गाड़ दी थी। इस दतून से सात आठ फुट ऊँचा पेड़ उगा जो न घटा न बढ़ा। पिसोकिया के विषय में यही कथा हुआन च्वांग ने लिखी है। वह कहता है कि राजधानी के दक्षिण और सड़क की बाईं ओर (अर्थात् पूर्व जैसा कि फ़ाहियान कहता है) कुछ पूजा के योग्य वस्तुओं में एक विचित्र पेड़ छः सात फुट ऊँचा था जो न घटता था न बढ़ता था। यही बुद्धदेव की दतून का प्रसिद्ध वृक्ष था।

आजकल भी अयोध्या से फैज़ाबाद को चलें तो हनुमानगढ़ी से कुछ आगे चल कर सड़क की बाईं ओर एक तलाव है जिसे दतून कुंड कहते हैं। जनता का विश्वास है और अयोध्या माहात्म्य में भी लिखा है कि इसी कुण्ड के किनारे बैठकर श्रीरामचन्द्र जी दतून कुल्ला किया करते थे। पर विचारने से यह अनुमान किया जाता है कि यह कुण्ड या तो उस स्थान पर है जहां पर बुद्धदेव की दतून गाड़ी गई थी, या उसी के पास एक तलाव बनाया गया था जिसके विषय में भक्तों की यह भावना थी कि गौतम जी जब अयोध्या में रहते थे तो इसी कुंड के जल से आचमन करते थे। पेड़ सूख गया परन्तु तलाव बुद्धदेव के निवास का स्मारक अब तक विद्यमान है। दक्षिण का फाटक हनुमान गढ़ी के निकट होगा और गढ़ी कदाचित् दक्षिण का बुर्ज हो तो आश्चर्य नहीं। हनुमानगढ़ी से सरयू तट एक मील से कुछ अधिक है। परन्तु नदी की धारा बहुत बदला करती है। और सम्भव है कि जब चीनी यात्री यहाँ आया था तो नदी और उत्तर बहती रही हो। हमारी याद में नदी ने बस्ती और गोंडा जिलों की हजारों बीघा धरती काट दी है और कई मील दरिया बरार अयोध्या

* उपसंहार।

में मिल गया है। हुआन च्वांग ने पिसोकिया राजधानी की परिधि १६ ली मानी है। इसके भीतर बड़ी राजधानी नहीं समा सकी। हम समझते हैं कि यह रामकोट की परिधि है जो श्री रघुनाथजी का क़िला माना जाता है और जिसका जीर्णोद्धार गुप्त-वंशी राजाओं ने किया था। डाक्टर फ़ूरर का मत है कि गोंडावाले इस पेड़ को चिलविल का पेड़ मानते हैं जो छः या सात फुट से अधिक ऊँचा नहीं जाता। यह पेड़ करौंदा भी हो सकता है जिसकी दतूनें अब भी अवध में विशेष कर लखनऊ में की जाती हैं। दतून का जमना कोई अनोखी बात नहीं है। कानपूर ज़िले के घाटमपूर नगर में तहसील से एक मील की दूरी पर एक महन्त का पक्का मकान है जिसके दूसरे खंड पर एक नीम का पेड़ बीच से फटा हुआ है। यह पेड़ दो सौ वर्ष हुये दतून गाड़ देने से उगा था।

इन बातों से मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि मैं जनता के विश्वास पर आक्षेप करूँ। भक्त जन को इस बिचार से सन्तोष हो सक्ता है कि बुद्धदेव भी विष्णु भगवान् के वैसे ही अवतार थे जैसे श्री रघुनाथजी। यह भी सम्भव है, कि बुद्ध भगवान् ने पहिले अवतार का स्मरण करके अपनी दतून वहीं गाड़ दी, जहाँ रामावतार में दतून किया करते थे।

बौद्ध-कालीन अयोध्या का वर्णन लिखने से पहिले बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार बौद्धावतार से पहिले अयोध्या और उसके राजाओं का कुछ वर्णन करना अनावश्यक न होगा। बौद्ध-ग्रन्थों का वर्णन ईसा मसीह के प्रादुर्भाव से सात सौ वर्ष पहिले के आगे नहीं बढ़ता। इन ग्रन्थों से विदित है कि कोशल देश में सरयू तट पर एक नगर अजोझा (अयोध्या का प्राकृत रूपान्तर) बसा हुआ था। यही साकेत भी था। मध्यकालीन संस्कृत साहित्य में साकेत और अयोध्या पर्यायवाची हैं। महाकवि कालिदास रघुवंश सर्ग ९ में राजधानी को अयोध्या * और

* पुरमविशदयोध्याम्।

सर्ग १६ में साकेत * लिखता है, और यह कौन कहेगा कि श्री रघुनाथ जी के विवाह के समय का नगर उनके बनवास से लौटते समय के नगर से भिन्न था। बुद्धदेव के समय में दोनों नगर विद्यमान थे। सम्भव है कि दोनों पास-पास हों जैसे इंगलिस्तान में लण्डन और वेस्टमिंस्टर हैं। हम यह भी अनुमान करते हैं कि बुद्धदेव के निवास स्थान के आस-पास जो बस्ती बसी वह साकेत कहलायी और पुराना नगर ब्राह्मण धर्मानुसारी बना रहा। यही बात विशाखा जी के मठ के पास की बस्ती के विषय में कही जा सकती है।

बौद्धग्रन्थों से यह भी विदित है कि बुद्ध भगवान ने अपने सूत्र अञ्जन बाग़ में सुनाये थे और यह बाग़ अयोध्या ही में था। सूर्यवंश के इतिहास में यह लिखा जा चुका है कि कोशलराज की राजधानी अयोध्या से उठ कर श्रावस्ती को चली गई थी। बौद्ध ग्रन्थों में श्रावस्ती के राजा कोशल कहलाते थे। इसमें कोई विचित्रता नहीं। महाभारत के पीछे जो सूर्य्यवंशी राजा हुये उसमें हिरण्यनाभ को विष्णुपुराण में कौशल्य लिखा है। उनका राज उत्तर की पहाड़ी से लेकर दक्षिण गङ्गा तट तक और पूर्व गंडक नदी तक फैला हुआ था और बनारस भी इसी के अन्तर्गत था। सच तो यों है, कि कोशलराज और मगधराज दोनों बनारस के लिये सदा लड़ा करते थे। बुद्धदेव से पहिले कोशल राजा कंक, देवसेन और कंस ने कई बार बनारस पर आक्रमण किया। अन्त को कंस ने उसे जीत लिया और इसी से वाराणसीविजेता उसका एक विरुद है। ई० पू० सातवीं शताब्दी में शाक्यों ने भी कोशल की आधीनता स्वीकार कर ली थी।

बौद्धमत के प्रचार से पहिले कोशलराज के अन्तर्गत आजकल का सारा संयुक्त प्रान्त ही नहीं वरन् इससे कुछ अधिक था।" इस बड़े राज की समृद्धि से व्यापारी सुरक्षित हो कर इसकी एक ओर से दूसरी

* साकेतनार्योऽञ्जलिभिः प्रणेमुः।

ओर तक जाते और राज-कर्मचारी इधर-उधर फिरा करते थे। इन्हीं राष्ट्रीय प्रबन्धों से परिव्राजकों की संस्था की उन्नति हुई। कोशल राज से पहिले परिव्राजकों का होना पाया नहीं जाता और इसमें सन्देह नहीं कि इन्हीं परिव्राजकों ने सारे देश में एक राष्ट्र-भाषा के साहित्य का प्रचार किया जो कोशलराज की छत्रछाया में उत्तरोत्तर उन्नति पाता रहा।

यह साधारण भाषा एक बातचीत की भाषा थी। इसका आधार राजधानी श्रावस्ती के आस-पास की बोली थी। इसी को कोशलराज के कर्मचारी बोलते थे। व्यापारी और पढ़े-लिखे सभ्य लोग केवल कोशलराज ही में नहीं वरन् पूर्व से पश्चिम और पटने से दिल्ली तक और उत्तर दक्षिण श्रावस्ती से उज्जैन तक सब की यही बोली थी। परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिये कि राजधानी श्रावस्ती उठ जाने पर भी साकेत उत्तर भारत के बड़े पाँच नगरों में गिना जाता था। शेष चार, काशी, श्रावस्ती, कौशाम्बी और चंपा थे।

बुद्धदेव ने अयोध्या में रह कर क्या-क्या काम किये इसका पूरा ब्यौरा हमको नहीं मिला परन्तु इतना तो निश्चित है कि अञ्जन बाग में बौद्धमत के बहुत से सूत्र बतलाये गये थे। बुद्धिष्ट इण्डिया (Buddhist India) में अवदान का प्रमाण देकर यह लिखा है कि अञ्जन बुद्धदेव के नाना थे। इनके नाम का बाग अयोध्या में कैसे बना यह जानना कठिन है।

अब हम प्रसेनजित के पूर्व पुरुषों पर विचार करेंगे। महाभारत के पीछे जो सूर्य्यवंशी राजा हुये उनमें प्रसेनजित सत्ताईसवाँ है। बौद्धमत के ग्रन्थों में प्रसेनजित के पिता का नाम महाकोशल है। परन्तु महाकोशल का अर्थ है बड़ा कोशल। इससे हमें कोई विशेष लाभ नहीं होता। प्रसेनजित बहुत अच्छा राजा था और उसके राज में जितने धर्मावलम्बी थे सब पर बराबर अनुग्रह करता था और जब इन नये धर्म के प्रचार के आरम्भ ही में उसने विशेष रूप से अपने को बौद्धधर्म का अनुयायी

बताया तो उसके ऐसे भाव और भी पुष्ट हो गये। यह भी जानने योग्य है कि जब सम्राट् अशोक ने अपनी प्रजा को यह आज्ञा दी थी कि अपने पड़ोसी के धर्म को बुरा न कहें तो उसने भारतीय आर्यों की इस सहनशीलता को और भी बढ़ा कर दिखा दिया। यही कारण है जो अयोध्या में ब्राह्मणधर्म और बौद्धधर्म दोनों साथ-साथ निभते रहे। पर कोशल ही को यह श्रेय प्राप्त हुआ कि इसका पहिला राजा था जिसने भगवान् बुद्ध ही से उनके धर्म की दीक्षा ली। यह राजा प्रसेनजित था। हम राकहिल के बुद्धदेव के जीवन-चरित से * प्रसेनजित का जीवनचरित उद्धृत करते हैं। प्रसेनजित श्रावस्ती का राजा अरनेमि ब्रह्मदत्त का बेटा था और उसका जन्म उसी समय हुआ था जब बुद्धदेव ने अवतार लिया था। वह बड़ा शक्तिशाली राजा था और उसके पास बहुत बड़ी सेना थी। उसके दो रानियाँ थीं। एक वार्षिका जो मगध-राज बिम्बिसार की बहिन थी और दूसरी कपिलवस्तु के शाक्य महानामा की बेटी मल्लिका थी, जो अपनी चतुराई और अद्भुत स्पर्श के लिये प्रसिद्ध थी। दोनों के एक एक पुत्र हुआ वर्षिका का बेटा जेत और मल्लिका का विरूधक था। श्रावस्ती का एक धनी व्यापारी सुदत्त राजगृह में जाकर एक ऐसे सज्जन के यहां ठहरा जिसने बुद्धदेव को भोजन के लिये नेवता दिया था। सुदत्त बुद्ध जी का नाम सुनकर उनसे मिलने के लिये जिस आम के बाग़ में उनका डेरा था वहां गया और उनका चेला हो गया। उसने बुद्धदेव से श्रावस्ती आने के लिये कहा। श्रावस्ती में कोई बिहार न था। इस लिये बुद्ध जी के लिये उसने एक बिहार बनाना निश्चय किया। बिहार बनाने के लिये जेत के बाग में एक जगह ठीक हुई। जेत ने इसका बहुत मूल्य मांगा। उसने इतनी मोहरें माँगी जितनी उस धरती पर बिछ सकें। सुदत्त मान गया और मोहरें बिछने लगीं। परन्तु मोहरें

---

* Rockhill's *Life of Buddha.*

सारी जगह बिछ न चुकी थीं कि जेत ने सोचा जो जगह बची है, वह बुद्ध जी के भेंट कर दी जाय और उसने उस जगह पर एक दालान बनवा कर संघ को दे दिया। तब से उस जगह का नाम जेतबन पड़ गया। प्रसेनजित यहीं पर बुद्धदेव के दर्शन को आया था और कुमार-दृष्टान्त-सूत्र नामक उनका व्याख्यान सुनकर बौद्ध हो गया। उसके थोड़े दिनों के पीछे उसने कपिलवस्तु के शाक्य राजा शुद्धोधन के पास कहला भेजा "हे राजा, बधाई है तुम्हारे पुत्र ने अमृत प्राप्त कर लिया है, और उससे मनुष्य मात्र को तृप्त कर रहा है।" शुद्धोधन ने बुद्ध जी को कई बार बुला भेजा। जब न्यग्रोद्धाराम बन चुका तो बुद्ध जी वहाँ गये और केवल राजा ही को नहीं वरन अपने पुत्र और स्त्री को भी बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी।

इसी बीच में मगध के राजा बिम्बिसार ने भी दीक्षा लेली। उनकी रानी वासवी विदेह घराने की कन्या थी। उसके एक पुत्र अजातशत्रु था। ऐसा जान पड़ता था कि बुद्ध के विरोधी देवदत्त ने जिसने अपना एक नया अलग पन्थ निकाला था अजातशत्रु को जब वह सयाना हुआ तो यह पट्टी पढ़ाई कि अपने बाप को मार कर राज्य ले लो। उसके पिता बिम्बिसार ने उसको संतुष्ट करने के लिये उसको बहुत सा राज्य दिया पर उसका जी न भरा। तब राजा ने राजगृह भी दे डाला केवल कोश अपने अधीन रक्खा। किन्तु देवदत्त ने अजातशत्रु से कहा कि राजा वही है जिसके पास कोश हो। तब अजातशत्रु की बातों पर राजा ने कोश भी दे दिया। केवल इतनी प्रार्थना की कि इस दुष्ट देवदत्त का साथ छोड़ दो। इस पर क्रुद्ध होकर अजातशत्रु ने अपने पिता को वन्दी-गृह में डाल दिया जिससे वह भूखों मर जाय। पर वैदेही रानी को वहाँ जाने की आज्ञा थी और वह वहाँ एक कटोरे में खाना ले जाती थी। जब कारागार के नौकरों से राजा को यह मालूम हुआ तो उसने हुक्म दिया कि यदि रानी

भोजन ले जायगी तो उसको प्राणदंड दिया जायगा। तब रानी ने एक चाल चली। अपने शरीर पर वह खाने की चीजों का एक लेप लगा कर और अपने पोले कड़ों में पानी भर कर वहाँ जाने लगी। और इस तरह राजा को उसने जीवित रक्खा। यह चाल भी खुल गई और उसको फिर राजा के पास जाने की आज्ञा न रही। तब बुद्धदेव गिद्ध टीले पर जाकर राजा को दूर से देखने लगे और उनको देखकर राजा कुछ दिनों तक जीवित रहे। अजातशत्रु को जब यह बात मालूम हुई तब उसने खिड़की चुनवा दी और पिता के तलवों को दगवा दिया।

इसके पीछे अजातशत्रु गद्दी पर बैठा। इस पाप के कारण उसका प्रसेनजित से बिगाड़ हो गया। लड़ाई में विजय कभी एक ओर होती थी कभी दूसरी ओर। कहा जाता है कि एक बार अजातशत्रु पकड़ा गया और हथकड़ी बेड़ी पहना कर शत्रु की राजधानी में भेज दिया गया। अन्त में संधि हो गई और कोशल-राजघराने की एक लड़की का विवाह मगध के राजा से हो गया।

एक बार बुद्ध जी जब राजगृह गये तब अजातशत्रु ने अपने पिता के मरने का पश्चात्ताप किया और उनका चेला हो गया। बिम्बिसार की भांति प्रसेनजित की मृत्यु भी शोचनीय रही। प्रसेन-जित बुड्ढा हो गया था और कोशलराज पाने के लिये विरूधक की उत्कंठा बढ़ती जाती थी। विरूधक एक दिन शिकार खेलता कपिल-वस्तु के निकट शाक्यों के एक बाग में घुस गया। इससे शाक्य बहुत बिगड़े और उसके बध का प्रयत्न करने लगे। परन्तु वह निकल भागा और शाक्यों से बदला लेने को बहुत से सिपाही लेकर उसी बाग में फिर घुस गया। शाक्यों को उनके बड़े बूढ़ों ने बहुत समझाया परन्तु उन्होंने न माना और विरूधक को मारने पर उतारू हो गये। जब विरूधक ने सुना कि कपिल-वस्तु के शाक्य उसके मारने को आ रहे हैं तो उसने अपने एक सिपाही से कहा, "हम सेना समेत छिपे जाते हैं

तुमसे शाक्य लोग कुछ पूछें तो कहना कि चले गये।" जब शाक्य लोग बाग में पहुँचे और विरूधक को न पाया तो उस सिपाही से बोले "यह लौंडी-बच्चा कहां गया ?" सिपाही ने कहा "भाग गये।"

कुछ शाक्य कहने लगे "हम उसे पकड़ पाते तो उसके दोनों हाथ काट डालते।" किसी ने कहा "हम उसके पाँव काट डालते।" कोई बोला "हम उसे जीता न छोड़ते, अब वह भाग गया तो क्या करें।" इस पर उन्होंने कहा "यह बाग अशुद्ध हो गया, इसको शुद्ध करना चाहिये। जहाँ-जहाँ उस नीच के पाँव पड़े हैं वहाँ मिट्टी डाल दो। जिस दीवार को उसने छुआ है उसे फिर से अस्तर करके नई कर दो। बाग भर में दूध और पानी छिड़क दो, सुगन्धित जल डाल दो, सुगन्ध फैला दो और अच्छे से अच्छे फूल बिछा दो।"

विरूधक के सेवकों ने शाक्यों की सारी बातें उस से कहीं। इस पर विरूधक आग बगूला हो गया और बोल उठा, "पिता के मरने पर हम राजा होंगे तो हमारा पहिला काम यह होगा कि हम शाक्यों को मार डालेंगे। तुम सब हमारे इस संकल्प में सहायता करने की प्रतिज्ञा करो।"

इसके पीछे वह अपने पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने लगा। उसने प्रसेनजित से पाँच सौ सभासदों को मिला लिया, अकेले दीर्घाचार्य ने न माना। कुछ दिन पीछे दीर्घाचार्य भी उसके पक्ष में आ गया, और अपने स्वामी से अपने मन का भाव छिपाये रहा। एक दिन प्रसेनजित एक रथ में बैठ कर जिसका सारथी वहाँ दीर्घाचार्य था, बुद्धदेव के दर्शन को एक शाक्य नगर में चला गया। जब वह नगर के पास पहुँचा तो उसने राजचिह्न छत्र-चमर आदि दीर्घाचार्य को इस विचार से दे दिये कि गुरु के सामने विनीत भाव से जाना चाहिये। वह वंचक दीर्घाचार्य तुरन्त श्रावस्ती लौट गया और उसने राजचिह्न विरूधक को दे दिये और विरूधक कोशलराज के सिंहासन पर बैठ गया। राजा प्रसेनजित बुद्धदेव के

दर्शन करके लौटे तो उनको विदित हुआ कि दीर्घाचार्य ने धोखा दिया और वह पैदल राजगृह की ओर चले। यहाँ उनकी दोनों रानियाँ, वार्षिका और मल्लिका मिलीं। जान पड़ता है कि विरूधक ने उनको निकाल दिया था और दोनों अपने पति की विपत्ति बँटाने राजगृह जा रही थीं। उन्हीं से प्रसेनजित ने जाना कि विरूधक राजा बन बैठा है। प्रसेनजित ने मल्लिका से कहा कि तुम अपने बेटे के साथ राज का सुख भोग करो और उसे समझा बुझा कर श्रावस्ती लौटा दिया। वार्षिका के साथ प्रसेनजित राजगृह की ओर गया और दोनों राजा अजातशत्रु के एक बाग में ठहरे। प्रसेनजित का राजगृह आने का समाचार देने वार्षिका अजातशत्रु के पास चली गई। पहिले तो अजातशत्रु कुछ डरा परन्तु जब उसे यह विदित हुआ कि प्रसेनजित राज्यच्युत हो कर अकेला अपनी रानियों के साथ राजगृह आया है तो उसके उचित अतिथि सत्कार का प्रबन्ध करने लगा। इसमें देर हुई और भूखा प्यासा प्रसेनजित एक शलजम के खेत में चला गया जहाँ किसान ने उसे कुछ शलजम उखाड़ दिये। भूख का मारा प्रसेनजित उन्हें जड़ पत्ते समेत चबा गया और पानी पीने एक तालाब पर पहुँचा। पानी पीते ही उसके पेट में पीड़ा उठी और उसके हाथ-पाँव ऐंठने लगे। वह सड़क की पटरी पर गिर पड़ा जहाँ गाड़ियों की धूर इतनी उड़ रही थी कि वह दम घुट कर मर गया।

राजा अजातशत्रु को प्रसेनजित की लाश सड़क पर मिली और उसकी अन्त्येष्टि क्रिया उसने योग्यतानुसार कराई। रानी वार्षिका ने राजगृह ही में अपने दिन काटे। यह विचित्र बात यह है कि बुद्धदेव के पहिले दो बड़े शिष्यों को उनके बेटों ही ने मार डाला। हमारी समझ में यह आता है कि दोनों धर्म भ्रष्ट और ब्राह्मणों के पक्षपाती थे। ब्राह्मण उन दिनों प्रबल थे और अपनी प्रभुता पर जिस बात से किसी प्रकार का धक्का लगने की सम्भावना जानी उसके समूल नष्ट करने में कुछ उठ न रखा।

बौद्धग्रन्थों में यह भी लिखा है कि प्रसेनजित का एक बेटा तिब्बत पहुँचा और उस देश का पहिला राजा हुआ। यह राजा सनङ्ग सेतसेन के अनुसार ई० पू० ३१३ में सिंहासन पर बैठा। अब्न था- सेल- कौ- मी लॉंग इसका राजत्व काल ई० पू० ४१६ के पीछे लिखता है। हम इसको ठीक मानते हैं यद्यपि इसमें भी बाप-बेटे के समय के डेढ़ सौ बरस का अन्तर पड़ता है। हम समझते हैं कि तिब्बत का पहिला राजा प्रसेनजित का कोई वंशज था। उसके बेटे विरूधक ने शाक्यों का वध किया था वह बौद्धों का आश्रय-दाता कैसे हो सकता है? और न इस बात का प्रमाण मिलता है कि सूर्यवंश में उसका कोई उत्तराधिकारी इस नये धर्म का पक्षपाती था। सूर्यवंश के पीछे शिशुनाक वंश के राजा नन्दिवर्द्धन के विषय में कहा जाता है कि उसने अयोध्या में एक स्तूप बनवाया जो अब मणिपर्वत के नाम से प्रसिद्ध है। सम्राट् अशोक ने विस्तृत राज्य में तीन बरस के भीतर ८४००० स्तूप बनवाये थे। उनसे अयोध्या कैसे वंचित रह सकती थी? पुरातत्वज्ञान ही की खोज में खुदाई की जाय तो यह निश्चय हो सकता है कि शाहजूरन का टीला और सुग्रीव पर्वत आदि टीले जो अयोध्या में फैले हुये हैं अशोक के बनाये स्तूपों के भग्नाव-शेष हैं। अयोध्या में पत्थर नहीं है और ईंट चूने का काम कानपूर के भी-तरीगाँव के मन्दिर की भाँति राह से हटा हुआ न हो तो सुगमता से खुद कर नये मकानों के बनाने में काम आ जाता है।

पुष्यमित्रवंशी बौद्धधर्म के बैरी थे। इनके पीछे गुप्तों के राज्य में हम सुनते हैं कि महायान संप्रदाय का गुरु वसुबन्धु पुस अयोध्या में रहता था। वसुबन्धु कौशिक ब्राह्मण पुरुषपुर (पेशावर) का रहनेवाला था। उसने अयोध्या में आकर विक्रमादित्य को अपना चेला बनाया। विक्रमा-दित्य के मरने पर युवराज बालादित्य और उसकी माता दोनों ने जो वसु-बन्धु के चेले थे, उसे अयोध्या बुलाया और यहीं वह अस्सी बरस की अवस्था में मर गया।

जापान के सुप्रसिद्ध विद्वान् तकाक्सू निश्चित रूप से कहते हैं कि यह विक्रमादित्य, स्कन्धगुप्त था जिसने ई० ४५२ से ई० ४८० तक राज किया और उसका उत्तराधिकारी बालादित्य ई० ४८१ में सिंहासन पर बैठा था। डाक्टर विन्सेण्ट स्मिथ ने भी इस पर विचार किया है। उनका यह मत है कि समुद्रगुप्त ने वसुबन्धु को या तो अपना मंत्री बनाया या अंतरङ्ग सभासद किया। इसमें उसका पिता प्रथम चन्द्रगुप्त भी सहमत था। स्मिथ साहब का यह भी मत है कि चन्द्र गुप्त ने अपनी किशोरावस्था में बौद्धधर्म सीखा था और उसका पक्षपाती था यद्यपि ऊपर से ब्राह्मण धर्मानुयायी बना हुआ था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में पहिला चीनी यात्री फाहियान अयोध्या में आया था। वह अयोध्या को शाची कहता है जो चीनी भाषा में साकेत का रूपान्तर है। उसकी यात्रा का निम्नलिखित वर्णन जेम्स लेग (James Legge) के फाहियान्स ट्रैवल्स (Fahian's *Travels,*) में दिया हुआ है जिसका अनुवाद यह है :—

"यहाँ से तीन योजन दक्षिण पूर्व चलने पर शाची का विशाल राज्य मिला। शाची नगर के दक्षिण फाटक से निकल कर सड़क के पूर्व वह स्थान है जहाँ बुद्धदेव ने अपनी दतून गाड़ दी थी। वह जम गयी और सात हाथ ऊँचा पेड़ हो कर रुक गया, न घटा न बढ़ा। विरोधी ब्राह्मण बहुत बिगड़े।"

दूसरा चीनी यात्री ह्वानच्वांग है जो बैस राजा हर्षवर्द्धन के समय में भारतवर्ष की यात्रा को आया था और उसी के सामने प्रयागराज में हर्षवर्द्धन ने बड़ा मेला कराया जिसमें सब बड़े बड़े धार्मिक संप्रदायों के विद्वान् उपस्थित थे। उसकी यात्रा का वर्णन उपसंहार द और ध में दिया हुआ है। ह्वानच्वाग ने दो नगर लिखे हैं पिसोकिया जो विशाखा का चीनी रूप है और अयूटो (अयोध्या)। दोनों नगर मिले हुये थे परन्तु भिन्न थे। सम्भव है कि यात्री पहिले एक नगर में आया फिर घूमता फिरता दूसरे नगर में पहुँचा। उसने भी दतून के विषय में वही बात लिखी है जिसका

उल्लेख ऊपर हो चुका। उसके वर्णन से यह विदित है कि हुआनच्वांग की यात्रा के समय अयोध्या में बौद्धमत फैला हुआ था। इस यात्री के प्रभाव से हर्षवर्धन बौद्ध हो गया था, परन्तु गुप्तों के जाने पर अयोध्या में जो परिवर्त्तन हुआ, वह चटपट नष्ट कैसे हो सकता था। हमारा अनुमान यह है गुप्तवंश के अन्तिम राजा पर वसुबन्धु का जो प्रभाव पड़ा वह डेढ़ सौ बरस तक स्थिर रहा।

इसके पीछे ईसवी सन् की दसवीं शताब्दी के अन्त और ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में फिर सुना जाता है कि अयोध्या में बौद्धधर्मावलम्बी शासक था। बङ्गाल, बिहार और अवध पाल-साम्राज्य के अन्तर्गत थे और पाल राजा बौद्ध थे। अन्तिम राजा का नाम महीपाल था। ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में एक बड़ी राज्यक्रान्ति हुई। बिहार महीपाल के उत्तराधिकारियों के अधिकार में बौद्धधर्मावलम्बी रह गया और महीपाल के पुत्र चन्द्रदेव के शासन में अवध में ब्राह्मणधर्म स्थापित हो गया जैसा कि आजतक है।

दसवाँ अध्याय।

अयोध्या के गुप्तवंशी राजा।

ईस्वी सन् की तीसरी और चौथी शताब्दी में अयोध्या उजड़ी पड़ी थी। इस राजधानी का पता लगाना कठिन था; और जब विक्रमादित्य ने इसका जीर्णोद्धार करना चाहा तो उसकी सीमा निश्चित करना दुस्तर हो गया। लोग इतना ही जानते थे कि यह नगर कहीं सरयू-तट पर बसा हुआ था और उसका स्थान निश्चय करने में विक्रमादित्य का मुख्य सूचक नागेश्वरनाथ का मन्दिर था जिसका उल्लेख प्राचीन पुस्तकों में मिला। इन्हीं पुस्तकों में और भी स्थानों का पता मिला जिन के दर्शनों को आज तक हज़ारों यात्री दूर दूर से आते हैं।

यह विक्रमादित्य गुप्तवंश का चन्द्रगुप्त द्वितीय ही हो सकता है। डाक्टर विनसेण्ट स्मिथ कहते हैं कि भारत की जनश्रुतियों और कहानियों में जिस विक्रमादित्य का नाम बहुत आता है वह यही हो सकता है, दूसरा नहीं। चन्द्रगुप्त पहिले शैव था पीछे से भागवत हो गया और अपने शिला-लेखों में अपने को परम भागवत कहने में अपना गौरव समझता है। इसमें सन्देह नहीं कि मौर्य सम्राट गुप्तों से भी बड़े साम्राज्य पर पुरानी राजधानी पाटलिपुत्र से शासन करते थे, परन्तु इसके सुदूर पूर्व में होने से कुछ न कुछ असुविधा होती ही थी। कुछ मध्य में होने से और कुछ इस कारण से कि चन्द्रगुप्त भागवत हो गया था, राजधानी अयोध्या को उठा कर लाई गई। आज-कल अयोध्या में गुप्त-राज्य का स्मारक केवल जन्म स्थान की मसजिद के कुछ खंभे हैं।

गुप्त पाटलिपुत्र से आये थे। प्राच्य-विद्या-विशारद लोग इस बात को भूल जाते हैं कि भारत के सम्राट अपने प्रतिनिधि-भोगपतियों

पर इतना विश्वास नहीं करते थे जितना अंग्रेज़ी सरकार करती है। मुग़ल सम्राटों के अधिकृत पश्चिम के प्रान्तों पर लाहौर से शासन किया जाता था और अकबर और जहाँगीर दोनों वहाँ साल में कई महीने रहते थे। पठान सम्राटों के इतिहास से उन्हें विदित हो गया था कि भोगपति अपनी मनमानी करने पाते तो स्वतंत्र राजा बन बैठते। अशोक ने राजूकों* को पूरे अधिकार दे दिये थे। राजूक अंग्रेज़ी राज के कमिश्नर के पद के रहे हों या गवर्नर के। अशोक को अनुभव से यह विदित हो गया था कि अपनी प्रजा राजूकों को सौंप कर वह ऐसा निश्चिन्त रहता था जैसे कोई अपना बच्चा चतुर धाय को सौंप कर सुचित्त हो जाता है। समुद्रगुप्त की एक राजधानी झूँसी में थी जो इलाहाबाद के सामने गंगा उस पार अब एक छोटा सा गांव है और उसके बनाये हुये दुर्ग के पत्थर कुछ तो अकबर के क़िले में लग गये और कुछ अब तक गाँव में इधर उधर पड़े हैं। झूँसी का प्रसिद्ध कुआँ समुद्रकूप दुर्ग के भीतर रहा होगा। बी० एन० डबल्यू० रेलवे लाइन के पास हँसतीर्थ से छतनगा तक गंगा के उत्तर तट पर पैदल चलने का कष्ट उठाया जाय और आँखें खुली रहें तो अब तक खड्ड मिलते हैं जिनमें पक्की नेवें देख पड़ती हैं। जिस स्तम्भ के ऊपर हरिषेण की प्रशस्ति खुदी है वह पहिले कौशाम्बी में रहा हो परन्तु जब यह प्रशस्ति खोदी गई तो प्रयाग ही में था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ई० ३७५ में सिंहासन पर बैठा और ई० ३९५ में उसने मालवा जीता जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी। मालवा अत्यन्त समृद्ध प्रान्त था और उस देश की, वहां के रहने-वालों और वहां के शासन की बड़ाई चीनी यात्री फ़ाहियान करता है, जो इसी विक्रमादित्य के शासन काल में भारत-यात्रा को आया था। डाक्टर विन्सेंएट स्मिथ का कथन है

---

* पाश्चात्य विद्वानों का यह मत है कि राजूक कुछ दिन बीते दिविर कहलाये पीछे इनका नाम कायस्थ पड़ गया।

कि सौराष्ट्र और मालवा प्रान्तों को जीतने से साम्राट् को बड़े धनी और उपजाऊ सूबे तो मिल ही गये, पश्चिमी समुद्र तट पर बन्दरगाहों की भी राह खुल गई और जल-मार्ग द्वारा मिश्र की राह से यूरप के साथ व्योपार होने लगा और उसकी सभा और उसकी प्रजा दोनों को पाश्चात्य यूरपी विचारों का ज्ञान हो गया जिसे सिकंदरिया के व्यापारी अपने माल के साथ लाते थे।

इससे हमारे इस अनुमान की पुष्टि होती है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय की राजधानी उज्जैन में भी थी और उज्जैन ही से वह अयोध्या आया था जिसका वर्णन उसकी सभा के महाकवि ने अपने रघुवंश काव्य के सर्ग १६ में किया है। इस यात्रा में उसने विन्ध्याचल को पार किया * और हाथियों का पुल बना कर गङ्गा उतरा। †

अवध गज़ेटियर में विक्रमादित्य के राज-काल को एक और जन-श्रुति लिखी है। वह यह है कि राजा विक्रमादित्य ने अयोध्या में अस्सी वर्ष राज किया। यह मान लिया जाय कि राजधानी अयोध्या में ई० ४०० में आई तो अस्सी वर्ष ई० ४८० में बीत गये होंगे, जब कि प्रोफ़ेसर तकाक्सू के अनुसार गुप्तराज का अन्त हो गया।

परन्तु प्रोफ़ेसर तकाक्सू के अनुमान से एक और बात सिद्ध होती है। बालादित्य बसुबन्धु का चेला था और उसे अयोध्या से कोई अनुराग न था जैसा कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य को था। कुछ हूणों के आक्रमण से कुछ कुमार-गुप्त के उत्तराधिकारियों की निर्बलता से गुप्त राजा फिर पुरानी राजधानी को लौट गया, और अयोध्या पर जोगियों अर्थात् ब्राह्मण साधुओं का अधिकार हो गया और इन लोगों ने बल पा कर अयोध्या में निर्बल बौद्ध साम्राज्य का रहना कठिन कर दिया। हम यहाँ

* व्यलंघयद् विन्ध्यमुपायनानि पश्य पुलिन्दै रुपपादितानि।

† तीर्थे तदीये गजसेतुबन्धात् प्रतीपगामुत्तरतोऽथ गङ्गाम्।

एक बात और कहना चाहते हैं जो इन लोगों के ध्यान में नहीं आ सकती जो अयोध्या के रहनेवाले नहीं हैं। जिस टीले पर जन्म स्थान की मसजिद बनी है उसे यज्ञ-वेदी कहते हैं। ई० १८७७ में गोविन्द द्वादशी के पहिले जब कि मसजिद के भीतर बहुतेरे कुचल कर मर गये थे और गली चौड़ी की गई और टीले पर अस्तर करा दिया गया, इस टीले में से जले-जले काले-काले चाँवल खोद कर निकाले जाते थे और कहा जाता था कि ये चाँवल दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ के हैं। हम इनको उस यज्ञ के चाँवल समझते हैं जो चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने राजधानी के जीर्णोद्धार के समय किया था। प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य ने अयोध्या में ३६० मन्दिर बनवाए थे। अब उनमें से एक जन्म स्थान का मन्दिर मसजिद के रूप में वर्तमान है।

अवध में गुप्तराज का दूसरा चिह्न गोंडे के ज़िले में देवीपाटन का टूटा मंडप है।

अयोध्या के इतिहास को कवि कालिदास के जीवन-काल पर विचार से कोई विशेष लगाव नहीं है। परन्तु यह मान लिया जाय कि वह महाकवि विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त की सभा का एक रत्न था तो वह अपने आश्रयदाता के साथ अवश्य अयोध्या आया होगा। हम कुछ अपने विचार इस विषय में यहाँ लिख देते हैं। परन्तु हमें कोई विशेष आग्रह इनके ठीक होने का नहीं है। इसकी विवेचना फिर कभी की जायगी।

महाकवि कालिदास के लेखों से विदित होता है कि वे किसी सूखे पहाड़ी और रेतीले देश के रहनेवाले थे। यही हमारे गुरुवर महामहोपाध्याय पंडित हरप्रसाद शास्त्री, एम० ए०, सी० आई० ई०, का मत है। उनकी जन्मभूमि होने का गौरव मन्दसोर को प्राप्त हुआ और वह सब से पहिले उज्जयिनी में विक्रमादित्य के दरबार में आये। उनकी प्रतिभा ने उन्हें तुरन्त राजकवि के पद पर पहुंचा दिया। हिन्दुस्तानी दरबार के कविलोग सदा राजा के साथ रहते हैं और आज-कल भी जब राजा

विनोद चाहता है तो उसे समयानुकूल कविता सुनाते हैं। ऐसे अवसरों के लिये ऋतुसंहार के भिन्न-भिन्न खंड रचे गये थे। यहीं उस ज्येष्ठ महा-राजकुमार का जन्म हुआ था जो पीछे कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य के नाम से सम्राट् हुआ और उसी अवसर के स्मरणार्थ सात सर्गों में कुमार सम्भव (कुमार का जन्म) काव्य रचा गया। चन्द्रगुप्त झूँसी में ठहरा हुआ था; तब कालिदास को पुरूरवस और उर्वशी की कथा की सुध आई और विक्रमोर्वशी नाटक रच डाला गया। नाटक के नाम के आदि में विक्रम शब्द अपने आश्रयदाता के नाम को अमर करने के लिये जोड़ा गया।

और आर्य राजाओं की भाँति, गुप्तराजा भी मृगया के बड़े व्यसनी थे। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के एक सिक्के में राजा बान से एक सिंह मार रहा है। अभिज्ञानशाकुन्तल का नायक दुष्यन्त जिस बन में शिकार खेलने जाता है उसमें बनैल सूअर (वराह), अरने (महिष) और जङ्गली हाथी भी हैं। यह स्थान आजकल के बिजनौर प्रान्त के उत्तर का हिस्सा है। यहीं मालिनी (आजकल की मालिन) गढ़वाल की पहाड़ियों से निकल कर घूमती हुई गङ्गा में गिरती है। बूढ़ी गङ्गा के तट पर हस्तिनापूर यहाँ से ५० मील है। जब हस्तिनापूर जाने लगता है तो राजा दुष्यन्त शकुन्तला को एक अंगूठी देता है जिसके नगीने पर उसका नाम खुदा हुआ है। गुप्त-काल में जो देव नागरी लिपि प्रचलित थी उसमें दुष्यन्त में पाँच अक्षर होते हैं, द्‌ ष य न त। बिदा होते समय नायक शकुन्तला से कहता है कि प्रतिदिन एक-एक अक्षर गिनना और पाँचवें दिन जब पाँचवाँ अक्षर गिनोगी तो तुमको हस्तिनापूर ले जाने के लिये सवारी आयेगी। कालिदास का भौगोलिक ज्ञान बहुत ठीक रहता है और राजा का कहना तभी ठीक उतरेगा जब कन्व का आश्रम बिजनौर की पहाड़ियों में माना जायगा। इसी आश्रम के पास चन्द्रगुप्त-द्वितीय अपने राजकवि के साथ अहेर को गया था। राजा धन्वी तो था ही, बड़ा बलवान भी था। वह हाथी की भाँति पहाड़

पर चढ़ता उतरता है।* बनरखों को आधी रात के पीछे हँकवा कहने की आज्ञा थी। दिन के अहेर के पीछे जो जन्तु मारे जाते थे उन्हें भून कर राजा के साथ सभासद भी दिन को समय कुसमय खाते थे। यह सब चन्द्रगुप्त को अच्छा लगता रहा हो परन्तु महाकवि की रुचि के प्रतिकूल था। उसको हँकवे के कारण सोते से जागना बुरा लगता था। कहाँ राज-सदन का स्वादिष्ट भोजन और कहाँ बन का खाना; कहाँ कोमल गद्दे पर सोना और कहाँ बन में पयाल पर पड़ना, सो भी नींद भर सोने न पाना। यही बातें उसने नाटक में विदूषक के मुँह से कहलाई हैं।

यह भी विचित्र बात है कि कृष्ण और रुक्मिणी के नाम पहिले नाटक मालविकाग्नि में हैं परन्तु दो बड़े नाटकों (अभिज्ञानशाकुन्तल और विक्रमोर्वशी) में विष्णु के अवतारों का कहीं नाम नहीं। इससे यह अनुमान किया जाता है कि यह दोनों चन्द्रगुप्त के भागवत होने से पहिले लिखे गये थे और इसमें भी सन्देह नहीं कि चन्द्रगुप्त उज्जयिनी ही में भागवत हो गया था।

राजा के धर्म बदलने के पीछे संस्कृत साहित्य का दूसरा रत्न मेघदूत रचा गया। मेघ की यात्रा रामगिरि से आरम्भ होती है जिसको बनवास में श्रीराम जानकी के निवास का श्रेय है। चित्रकूट पर्वत में उनके जग-वंद्य चरण चिह्न हैं। दूत मेघ को हनुमान की उपमा दी गई है और यक्ष की स्त्री को सीता की।† कालिदास को उज्जयिनी से प्रेम था, उसका आश्रयदाता भी उसे चाहता था इसलिये वह उज्जयिनी को कैसे छोड़ सकता था। उज्जयिनी मेघ की उस राह में नहीं है जो प्रकृति के अचल नियमों ने उसके लिये बना रक्खी है, परन्तु मेघ को अपनी राह से

---

* गिरिचर इव नाग; प्राणसारं बिभर्ति।

† इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा।

भटक कर उज्जयिनी जाने को कह रहा है* और उसे यह सूचना दे रहा है कि न जाओगे तो तुम्हारा जीना अकारथ है। †

इसके पीछे अयोध्या में दरबार उठ आया और कालिदास हमारी पावन पुरी में पहुँचा। यहाँ उसने संस्कृत भाषा का सर्वोत्तम महाकाव्य रघुवंश रचना आरम्भ किया और इसमें "उस प्रसिद्ध तेजस्वी राजवंश की मुख्य बातें लिखीं जो सूर्य भगवान से निकला और जिसमें साठ प्रतापी और अनिन्द्य राजाओं के पीछे मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ने अवतार लिया।" इनके पीछे इसमें अग्निवर्ण तक सूर्यवंशी राजाओं का संक्षिप्त वर्णन है।

कालिदास अपने स्वामी के साथ हिमालय की तरंटी में देवीपाटन गया था और उसने पहिले और दूसरे सर्गों में पर्वत का दृश्य लिखा है। उसे चन्द्रगुप्त द्वितीय के दिग्विजय का पूरा ज्ञान था जिसका उसने सर्ग, ४ में वर्णन किया। उसने भूँसी के क़िले से गङ्गा और यमुना का संगम देखा था (जहाँ से अब भी संगम का दृश्य सबसे अच्छा देख पड़ता है) और सर्ग १३ में उसकी छटा दिखाई। वह अपने स्वामी के साथ उज्जैन से अयोध्या आया था, अयोध्या की उजड़ी दशा उसने अपनी आँखों देखी थी, अयोध्या में राजधानी स्थापन करते समय भी उपस्थित था जिसका विवरण सर्ग १६ में है।

दुर्भाग्यवश रघुवंश समाप्त न हो सका। महाकवि के पास जगन्नियन्ता का बुलावा आ गया और उसने अपनी अमर आत्मा को अपने इष्टदेव युगल सरकार को सौंप कर सरयू बास लिया और अपनी अमूल्य रचना को केवल भारतवासियों के लिये नहीं वरन् सारे सभ्य संसार के लिये उत्तम साहित्य का अक्षय धन छोड़ गया।

---

* वक्रः पन्था यदपि भवतो प्रस्थितस्योत्तराशाम्।

† वंचितोऽसि।

ग्यारहवाँ अध्याय

अयोध्या के जोगी, बैस, श्रीवास्तव्य, परिहार और गहरवार वंशी राजा

जोगी—"जनश्रुति यह है कि राजा विक्रमादित्य ने अयोध्या में ८० बरस राज किया; उसके पीछे समुद्रपाल योगी ने जादू से राजा के जीव को उड़ा दिया और आप उसके शरीर में प्रविष्ट हो कर राजा बन बैठा। जोगियों का राज १७ पीढ़ी तक रहा। उन्होंने ६४३ बरस राज किया। इसमें एक एक राजा का शासन काल बहुत बड़ा होता है।" *

हमारा मत यह है कि अयोध्या में सनातन धर्म का प्रभाव मौर्यों के समय में भी नहीं घटा था। गुप्तों के चले जाने पर यहाँ साधुओं का राज स्थापित हो गया। राजा के शरीर में योगी के घुसने का तात्पर्य यही है कि उसने अपना अधिकार जमा लिया। गुप्तों के राज के अन्त से ६४३ बरस ४८०+६४३=११२३ में समाप्त होते हैं और यह असंभव है।

बैस—हर्षवर्द्धन के राज में जो ई० ६०१ से ६४७ तक रहा, अयोध्या, कन्नौज राज के आधीन रही। फ़ैज़ाबाद ज़िले के भिटौरा गाँव में प्रतापशील और शीलादित्य के सिक्के मिले हैं। इन दोनों को मुद्राविज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् सर रिचर्ड बर्न प्रभाकर-वर्द्धन और हर्ष-वर्द्धन के उपनाम बताते हैं। चीनी यात्री ने जो इस नगर का वर्णन लिखा है वह उपसंहार में दे दिया गया है।

श्रीवास्तम—(श्रीवास्तव्य)—ई० ६४७ में हर्षवर्द्धन के मरने पर उसका राज छिन्न-भिन्न हो गया और घाघरा पार के श्रीवास्तव्यों ने राजधानी और उसके आस पास के प्रान्त पर अपना अधिकार जमा लिया।

---

* Oudh Gazetteer, Vol. 1, page 3.

यह स्मरण रखने की बात है कि गुप्तों के चले जाने पर अयोध्या का शासन सुदूर की राजधानी से होता था और श्रीवास्तव्य, कभी पूरी और कभी अधूरी स्वतंत्रता से ईस्वी सन् की ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक अयोध्या का शासन करते रहे। *

---

* जान पड़ता है कि ईस्वी सन् की बारहवीं शताब्दी में अयोध्या से श्रीवास्तव्यों के पांव उखड़े और देश में मुसलमानों का अधिकार हो गया। हम अपनी कायस्थ वर्ण मीमांसा की अंग्रेज़ी भूमिका में लिख चुके हैं कि हमारे मुसलमान शासकों का भी माल के काम में बिना कायस्थों के काम न चला और मिस्टर पन्नालाल जी, आई० सी० एस०, जो श्रीवास्तव्य ही हैं लिखते हैं कि ईस्वी सन् की तेरहवीं शताब्दी में अयोध्या का एक श्रीवास्तव्य उन्नाव ज़िले के असोहा परगने का क़ानूनगो मुक़र्रर किया गया था। उन दिनों क़ानूनगो का वही काम था जो आज-कल डिप्टी कमिश्नर और मुहतमिम बन्दोबस्त करता है। इसके पीछे सुना जाता है कि सरयूपार अमोढ़े में श्रीवास्तव्य राजा रहे। चौदहवीं शताब्दी में राजा जगतसिंह सुलतानपूर के सूबेदार थे। ई० १३७६ में गोरखपूर के पास राप्ती के तट पर डोमनगढ़ के डोम राजा ने अमोढ़ा परगने के कुरथंड गांव में एक पांडे ब्राह्मण से कहा कि हमें अपनी बेटी दे दो। ब्राह्मण ने न माना और डोम ने उसके परिवार को कारागार में बन्द कर दिया। लड़की अयोध्या की यात्रा के बहाने राजा जगतसिंह के पास पहुँची और उनसे सरन मांगी। राजा जगतसिंह ने डोम पर चढ़ाई कर दी और उसको मार कर लड़की उसके बाप को सौंप दी। ब्राह्मण लड़की पाकर कृतार्थ हो गया और उसने कहा "मैं आप को क्या दूँ मेरे पास सब से मंहगी वस्तु मेरा यज्ञोपवीत है" और उसने अपना जनेऊ उतार कर राजा के गले में डाल दिया। राजा ने ब्राह्मण का प्रतिग्रह स्वीकार कर लिया और उनके वंशज अब तक अमोढ़ा के पांड़े कहलाते हैं। दिल्ली के साम्राट ने जगतसिंह को अमोढ़ा का राज दे दिया। कुछ दिन पीछे सूर्यवंशियों ने उनकी रियासत बंटा ली तो भी श्रीवास्तव्य बहुत दिनों तक अमोढ़ा के

परिहार—आठवीं शताब्दी में अयोध्या कन्नौज के परिहारों के शासन में चली गई। परिहारों का राज कन्नौज से १६० मील उत्तर श्रावस्ती से काठियावाड़ तक और कुरुक्षेत्र से बनारस तक फैला हुआ था। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा भोजदेव हुआ जिसे आदिवराह भी कहते हैं। यह परमारवंशी राजा भोज से भिन्न था और इसने ई० ८४० से ८९० तक पचास बरस राज किया। सुलतान महमूद ग़ज़नवी की चढ़ाई के समय कन्नौज में परिहार राजा राज्यपाल राज करता था।* ई० १०१५ में चन्द्रदेव गहरवार ने परिहारों को परास्त कर दिया। परिहार वंश के पतन पर गड़बड़ मच गया। उन्हीं दिनों सैय्यद सालार मसऊद ग़ाज़ी ने

राजा रहे। अयोध्या के निकले हुये और श्रीवास्तव्यों का हाल उपसंहार में है।

फ़ैज़ाबाद और उसके पास के ज़िलों के कायस्थ अब भी ब्राह्मणों और ठाकुरों के बाद हिन्दू समाज के प्रतिष्ठित अङ्ग माने जाते हैं; और पिछले सौ बरस के भीतर उस वंश में प्रसिद्ध पुरुष नवाब आसफ़ुद्दौला के मंत्री महाराज टिकैतराय, बलरामपुर के जनरल रामशंकर, फ़ैज़ाबाद के राय राम शरणदास बहादुर और अयोध्या के आनरेबुल राय श्रीराम बहादुर सी० आई० थे। अयोध्या छोड़ने के पीछे श्री वास्तव्य इलाहाबाद ज़िले के कड़े में आकर बसे और दूर दूर तक फैले। कड़े को पहिले कर कहते थे। यह नगर बहुत बड़ा था। यहां से पाँच मील उत्तर पश्चिम पारस गांव में सं० ११६७ का एक शिलालेख मिला है उसमें कड़े को श्रीमान् लिखा है। गढ़वा का शिलालेख सं० ११६६ का है। इसमें से जैसा ऊपर लिखा जा चुका है श्रीवास्तव्य ठाकुर कहलाते हैं। हम यह भी लिख चुके हैं कि गढ़वा में श्रीवास्तव्य ठाकुर ने नवग्रह का मन्दिर बनाया था और मेजहड़ में सिद्धेश्वर का। इससे विदित है कि सात सौ बरस पहिले इलाहाबाद प्रान्त के श्रीवास्तव्य बड़े प्रतिष्ठित सनातन-धर्मी थे।

* इसी राजा ने हारमान कर महमूद को कर (ख़िराज) देना स्वीकार किया जो शिलालेखों में तुरुष्कदंड कहलाता है।

अवध पर आक्रमण किया और बहराइच में अपनी हड्डियाँ सड़ने को छोड़ गया। उस समय अवध अनेक छोटे छोटे राज्यों में बंटा हुआ था परन्तु अवध गजेटियर के अनुसार उसके मुख्य सामना करनेवाले श्रीवास्तव्य थे यद्यपि लोग यही कहते हैं कि राजा सुहेलदेव ने जय पाई थी।

चन्द्र के विषय में एक शिलालेख लिखा है कि उसने अनेक शत्रु राजाओं को जीत कर कान्यकुब्ज को अपनी राजधानी बनाया। मिस्टर सी० वी० वैद्य लिखते हैं कि "हर्ष के समय से कन्नौज, भारतवर्ष का रोम, अथवा कुस्तुन्तुनिया हो रहा है। जो राजा उसे स्वाधिकृत करता वह भारतवर्ष का सम्राट माना जाता।" इस लिये चन्द्र ने यद्यपि कन्नौज के प्रतीहारों के आखिरी राजा को आसानी से जीत लिया तथापि अन्य राजाओं ने उसका विरोध किया होगा। चन्द्र के दो लेखों में पाँचाल के राजा के लिये "चपल" विशेषण प्रयोग किया गया है। इससे यह अनुमान किया जाता है कि प्रतिहार राजा दूसरे बाजीराव के समान भागता फिरता था। और चन्द्र उसका पीछा करता था। "चन्द्र ने कन्नौज का राज लेकर देश को तुर्कों के त्रास से मुक्त किया। ऊपर लिखा जा चुका है कि कन्नौज के प्रतीहार राजा ग़जनी के सुलतान को कर दिया करते थे। चन्द्र ने कर वसूल करने वालों को मार भगाया। उसने काशी चुशिक (कन्नौज ?) उत्तर-कोशल भी अपने अधीन कर लिया।था।

गहरवार वंश का सब से प्रसिद्ध राजा गोविन्द चन्द्र था।

गोविन्द चन्द्र बड़ा प्रतापी राजा था। उसी ने सबसे पहिले नरपति, हयपति, गजपति, राज्य विजेता का विरुद ग्रहण किया। इसकी दूसरी राजधानी बनारस थी। उसके युद्ध मंत्री लक्ष्मीधर कायस्थ श्रीवास्तव्य ने व्यवहार कल्पद्रुम नाम का धर्मशास्त्र का ग्रन्थ रचा।* यह बड़ा दानी राजा था। इसके अब तक ४० दान पत्र मिले हैं।

---

* Colebrooke's *Digest of Hindu Law*.

इस वंश का अन्तिम राजा जयचन्द्र भी बड़ा प्रतापी राजा था उसके नाम के दो शिलालेख मिले हैं, एक फ़ैज़ाबाद में मिला था जिसमें सं० १२४४ में उसने कुमाली गाँव भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण अलंग को दिया था। इस दानपत्र में विष्णु और लक्ष्मी देवता हैं। दूसरा दानपत्र इलाहाबाद में थोड़े दिन हुये मिला है। इसमें जयचन्द्र, परमभट्टारक इत्यादि राजावली पंचतयोपेत, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, विविध-विद्या-विचार-वाचस्पति कहा गया है।

सन् ११९५ में जयचन्द्र मुहम्मद ग़ोरी से लड़ा। उसका हाथी उसे रणभूमि से लेकर भागा और गंगा में डूब गया। जयचन्द्र के मरते ही हिन्दू साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया।

बारहवाँ अध्याय

भारत में मुसलिम राज्य स्थापन से पहिले अयोध्या पर मुसलिमों के आक्रमण

मुसलमान कहते हैं कि सृष्टि के आरम्भ ही से अयोध्या मुसलमानों के अधिकार में रही। अल्लाहताला ने पहिले आदम को बनाया और जब उन्होंने शैतान के बहकाने से गेहूं खा लिया और फ़िरदौस (स्वर्ग) से गिरा दिये गये तो लङ्काद्वीप में गिरे जहाँ पर्वत पर उनका तीन गज़ लम्बा चरण चिह्न अब तक दिखाया जाता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि आदम किस डील-डौल के थे। आदम हज करने मक्के को जाया करते थे। उनके दो बेटों अयूब (Job) और शीस (Seth) की क़बरें अयोध्या में बतायी जाती हैं। परन्तु सम्राट् अकबर के सुप्रसिद्ध मंत्री अबुल फ़ज़ल ने इसके विषय में जो कुछ लिखा उसका सारांश यह है :—

"इस नगर में दो बड़ी क़ब्रें हैं, एक ६ गज़ लम्बी, दूसरी सात गज़ की। साधारण लोग कहते हैं कि अयूब और शीश की क़ब्रें हैं और उनके विषय में विचित्र बातें कहते हैं।*

इससे प्रकट है कि अबुलफ़ज़ल को भी इन क़ब्रों के दावे पर सन्देह था।

अयोध्या में एक स्थान खुर्द (छोटा) मक्का भी है।

थाने के पीछे तूफ़ान वाले नूह की क़ब्र नव गज़ लम्बी बतायी जाती है।

---

* در این شهر دو قبر بزرگ ساختہاند شش و هفت گزی بر خوانند خوابگاه شیث و ایوب پندارند و زراخت ها برخوانند — آئین اکبری جلد دوم صفحه ۱۳۵ -

इतिहासज्ञ इन्हें गंजे शहीदां मानते हैं। वास्तव में यहाँ मुसलिम पदार्पण, विक्रम संवत् की ग्यारहवीं शताब्दी में हुआ।

अलप्तगीन जो पहिले खुरासान और बुखारा के सामानी बादशाहों का गुलाम था काबुल और कंदहार के बीच के प्रान्त का राजा बन बैठा। ग़ज़नी उसकी राजधानी थी। उसके मरने पर उसका बेटा इसहाक़ राज का अधिकारी हुआ परन्तु थोड़े ही दिन पीछे वि० १०३४ में सुबुक्तगीन नाम के गुलाम ने ग़ज़नी को अपने अधिकार में कर लिया। सुबुक्तगीन के विषय में कहा जाता है कि उसने सबसे पहिले पञ्जाब के राजा जयपाल पर आक्रमण किया। परन्तु इतिहास के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत चिन्तामणि विनायक वैद्य का यह मत है कि इतिहास में इन नाम के पञ्जाब के किसी राजा का पता नहीं लगता। उस समय कन्नौज में परिहार वंश का राजा राज्यपाल राज करता था, उसी से लड़ाई हुई। राज्यपाल का फ़ारसी लिपि में राजा जयपाल बन जाना सुगम है। जयपाल हार गया और उसने सुबुक्तगीन को कर देना स्वीकार कर लिया जो शिला-लेखों में तुरुष्क-दण्ड कहलाता है। हिन्दुओं की हार का कारण डाक्टर विनसेण्ट स्मिथ ने यह लिखा है कि आक्रमणकारी मांसाहारी, धर्मान्ध लड़ाके थे।

सुबुक्तगीन के पीछे उसका बेटा महमूद ग़ज़नी का बादशाह हुआ। उसने भारतवर्ष पर कई बार आक्रमण किये। उसका भाञ्जा सैय्यद सालार मसऊद ग़ाज़ी जो ग़ाज़ी-मियाँ और बाले-मियाँ के नाम से प्रसिद्ध हैं, भारतवर्ष में आया और मारता-काटता सत्रिख पहुँचा जो आज-कल बाराबङ्की ज़िले में एक छोटा सा नगर है परन्तु उस समय बड़ा समृद्ध था। यहाँ उसने डेरा डाला और देश जीत कर हिन्दुओं को मुसलमान करने के अभिप्राय से उसने अपने सेना नायक सैफ़उद्दीन और मियाँ रज्जब को बहराइच की ओर भेजा। मलिक फ़ज़ल को बनारस और अज़ीज़उद्दीन को गोपामऊ रवाना किया। मसऊद की सेना

ईस्वी सन् १०३२ (वि० १०७९) में बहराइच पहुँची जहाँ बालार्क (सूर्य नारायण) का बड़ा भारी मन्दिर और एक तालाब था। कौशल्या नदी (कौड़ियाला) के किनारे युद्ध हुआ और ईस्वी १०३३ में मसऊद मारा गया और उसकी सारी सेना काट डाली गई। मुसलमानों में यह कथा प्रसिद्ध है कि मसऊद ने बालार्क का मन्दिर देख कर कहा था कि हमारी जय हुई तो हम यहीं गड़ेंगे। दो सौ वर्ष पीछे जब मुसलिम राज स्थिर हो गया तब मन्दिर तोड़ कर मसऊद की समाधि बना दी गई। और अवध गज़ेटियर में यह लिखा है कि क़ब्र में मसऊद का शिर सूर्य-नारायण के मूर्त्ति पर रक्खा हुआ है।

हमने तारीख सैय्यद-सालार मसऊद ग़ाज़ी देखी है। उसमें कहीं ग़ाज़ी मियाँ के अयोध्या आने की चर्चा नहीं है। * गज़ेटियरकार † ने यहाँ तक लिखा है कि अयोध्या में उस समय श्रीवास्तव्य राजा प्रबल थे और मसऊद के हारने का कारण श्रीवास्तव्य ही हुये यद्यपि इतिहास में मसऊद का परास्त करनेवाला राजा सुहेलदेव कहलाता है। सम्भव है कि इन्हीं श्रीवास्तव्यों के शक्ति को देख कर ग़ाज़ी ने अयोध्या की ओर बढ़ने का साहस न किया हो, यद्यपि सत्रिख से बहराइच की अपेक्षा अयोध्या सन्निकट थी। अयोध्या ऐसे प्रसिद्ध स्थान में ग़ाज़ी मियाँ या उनके सैनिकों में पदार्पण किया होता तो उक्त तारीख़ में उसका अवश्य वर्णन होता।

अयोध्या के कनक-भवन के अधिकारियों ने एक पत्र छापा है, जिसमें लिखा है कि कनक-भवन को ग़ाज़ी मियाँ ने नष्ट किया था। परन्तु ग़ाज़ी मियाँ के अयोध्या आने का प्रमाण संदिग्ध है।

महमूद के मरने पर ग़ज़नी का राज्य नष्ट हो गया। यहाँ तक कि

* केवल एक ग्रन्थ दरबिहिश्त (در بہشت) में ग़ाज़ी मियाँ का अयोध्या आना लिखा है परन्तु उसका समर्थन नहीं है।

† Oudh Gazetteer, Vol I. page 3.

वि० १२०७ में अलाउद्दीन हुसेन ने सात दिन रात ग़ज़नी को लूटा और कुछ क़ब्रें छोड़ कर सारा नगर नष्ट कर दिया। अलाउद्दीन के मरने पर उसका बेटा राज्य का उत्तराधिकारी हुआ परन्तु वह भी साल ही भर पीछे मार डाला गया और मुहम्मद बिन साम ग़ोर का शासक बना। मुहम्मद बिन साम और पृथ्वीराज की लड़ाइयों की हार से अयोध्या के इतिहास का इतना ही सम्बन्ध है कि उस समय अयोध्या कन्नौज के गहरवारों के आधीन थी और गहरवारों के परास्त होने पर अयोध्या मुसलमानों के अधिकार में आ गई। इसी समय मख़दूम शाह जूरन ग़ोरी जो अपने भाई सुल्तान मुहम्मद ग़ोरी के साथ भारतवर्ष में आया था, एक छोटी सी सेना ले कर अयोध्या पहुँचा। सनातन-धर्मियों की तो उसने कोई हानि नहीं की परन्तु आदि नाथ के मन्दिर को नष्ट कर दिया। इसका कारण यही हो सकता है कि जैन लोगों को सनातन धर्मियों से कुछ सहायता न मिली और हिन्दू जो जैन मन्दिरों का घण्टा सुनना पातक समझते हैं, जैन मन्दिर नष्ट होने पर प्रसन्न ही हुये होंगे। कहा जाता है कि अयोध्या के बकसरिया टोले में अब भी जूरन के वंशज रहते हैं। मन्दिर फिर से बन गया है परन्तु मन्दिर की चढ़ौती मुसलमान ही लेते हैं।

तेरहवाँ अध्याय ।

दिल्ली के बादशाहों के राज्य में अयोध्या ।

कन्नौज के परास्त होने पर शहाबुद्दीन गोरी ने ई० ११९४ में अवध पर आक्रमण किया और मख़दूम शाह जूरन गोरी अयोध्या में मारा गया और वहीं इसकी समाधि बनी। परन्तु बख़्तियार खिलजी ने सबसे पहिले अवध में राज्य प्रबन्ध किया और उसे सेना का एक केन्द्र बनाया। इसमें उसको बड़ी सफलता हुई, और उसने ब्रह्म-पुत्र तक अपने आधीन कर लिया। उसकी शक्ति इतनी बढ़ी कि दिल्ली के सुलतान क़ुतुबुद्दीन के मरने पर उसने अल्तमश को दास समझ कर उसकी आधीनता स्वीकार न की। उसके बेटे ग़यासुद्दीन ने बङ्गाल में स्वाधीन राज्य स्थापित कर दिया, परन्तु थोड़े ही दिनों में अयोध्या उसके वंश से छिन गई और बहराइच और मानिकपूर के बीच का प्रान्त दिल्ली के आधीन कर दिया गया। इसके पीछे हिन्दू बिगड़े और बहुत से मुसलमान मार डाले गये। हिन्दुओं को दमन करने के लिये शाहज़ादा-नसीरुद्दीन दिल्ली से भेजा गया।

ई० १२३६ और ई० १२४२ ई० में नसीरुद्दीन तबाशी और क़मर-उद्दीन क़ैरान अयोध्या के हाकिम रहे। ई० १२५५ में बादशाह की माँ मलका जहाँ ने कतलग़ ख़ाँ के साथ विवाह कर लिया और अपने बेटे से लड़ बैठी, इस पर बादशाह ने उसे अयोध्या भेज दिया। यहाँ कतलग़ ख़ाँ ने विद्रोह किया और बादशाह के वजीर बलबन ने उसे निकाल दिया और असलां ख़ाँ संजर को हाकिम बनाया। परन्तु ई० १२५९ में वह भी बिगड़ बैठा और निकाल दिया गया। अमीर ख़ाँ या अलप्तगीन उसके बाद हाकिम बनाया गया और उसने २० वर्ष तक शासन किया। बादशाह ने उसे बाग़ी तुग़रल को परास्त करने की आज्ञा दी। परन्तु

अलप्तगीन हार गया और बलबन की आज्ञा से उसका सिर काट कर अयोध्या के फाटक पर रख दिया गया। यह फाटक कहाँ था, इसका पता अभी तक नहीं लगा। तुग़रल को भी उसी के लश्कर में कुछ लोगों ने छापा मार कर मार डाला। इसके थोड़े ही दिन पीछे अयोध्या के एक दूसरे हाकिम फ़रहत ख़ाँ ने शराब के नशे में एक नीच को मार डाला। उसकी विधवा ने बलबन से फ़रयाद की। बलबन पहिले आप ही दास था, उसने फ़रहत ख़ाँ के ५०० कोड़े लगवाये और उसे विधवा को सौंप दिया।

बादशाह कैक़ुबाद और उसके बाप बुगरा ख़ाँ में भी यहीं मेल-मिलाप हुआ था। एक की सेना घाघरा के इस पार पड़ी थी और दूसरे की उस पार पड़ी थी। फ़रहत के निकाले जाने पर खान जहाँ अवध का हाकिम बना। उसी के शासन-काल में हिन्दी, फ़ारसी का सुप्रसिद्ध कवि अमीर ख़ुसरो दो वर्ष तक अयोध्या में रहा। यहीं की बोली में * इसने फ़ारसी-हिन्दी का कोश ख़ालिकबारी रचा। उसके अनन्तर ख़िलजी वंश के संस्थापक जलालुद्दीन का भतीजा अलाउद्दीन अयोध्या का शासक रहा। परन्तु वह इलाहाबाद ज़िले के कड़ा नगर में रहता था और वहीं उसने अपने चचा का सिर कटवा कर उसके धड़ को गङ्गा के रेते में फेंकवा दिया था। इन्हीं दिनों मुसलमानों के अत्याचार से पीड़ित हो कर कुछ क्षत्रिय स्याम देश को चले गये और वहाँ अयोध्या नगर बसाया जो आज-कल के नक़शों में जूथिया कहलाता है। इस नगर में एक बड़ा

---

* ख़ालिकबारी की हिन्दी आदि से अन्त तक अयोध्या में अब तक बोली जाती है। यथा :—

इम्शब आज रात जो भई।
दी शब काल रात जो गई॥
बिया बिरादर आउ रे भाई।
बिनशीं मादर बैठ रे (री नहीं) माई॥

साम्राज्य स्थापित किया गया जिसका लोहा चीन वाले भी मानते थे। यह राज्य ई० १३५० से १७५७ तक रहा। इस्वी सन् की चौदहवीं शताब्दी में अयोध्यापुर * का आश्रित राजा संकोशी (श्री भोज) इतना प्रबल हो गया था कि उसने चीन के राजदूत को मार डाला। इस पर चीन के सम्राट मिंग ने अयोध्यापुर के राजा से बिनती की कि अपने आश्रित को समझा कर शान्त कर दो। †

इन्हीं दिनों स्वामी रामानन्द प्रकट हुये। भविष्य पुराण में लिखा है :—

रामानन्द शिष्यो·········अयोध्यायामुपागतः

❀ ❀ ❀

गले च तुलसीमाला जिह्वा राममयी कृता।

अनुवाद—"स्वामी रामानन्द का चेला अयोध्या गया। वहाँ उसने बहुत से मुसलमानों को वैष्णव बनाया। उन्हें तुलसी की माला पहनायी और राम राम जपना सिखाया।"

ख़िलजी के पीछे तुग़लक वंश दिल्ली के सिंहासन पर बैठा। तुग़लकों के समय में अयोध्या पर विशेष कृपा दृष्टि रही। तारीख़ फ़ीरोज़शाही (تاریخ فیروز شاهی) में लिखा है कि मुहम्मद बिन तुग़लक ने गङ्गा तट पर एक नगर बसाना चाहा था जिसका नाम उसने स्वर्गद्वारी (स्वर्ग-द्वार) रक्खा। मुसलमान बादशाह को हिन्दी नाम क्यों पसन्द आया इसका कारण हमारी समझ में यही आता है कि उस समय अयोध्या का वह भाग जिसे आज-कल स्वर्गद्वारी कहते हैं, अत्यन्त सुन्दर और समृद्ध था। फ़ीरोज़ तुग़लक पहिली बार ई० १३२४ में और दूसरी बार ई०

* जिस गाँव के पास जलालुद्दीन ख़िलजी का सिर काटा गया था वह अब तक गुमसिरा कहलाता है।

† *J. R. A. S.*, 1905, p. 485 et. seq.

१३४८ में अयोध्या आया। उसके समय में मलिक सिगीन और आयीनुलमुल्क अयोध्या के शासक रहे। अकबरपूर में एक छोटे मक़बरे में एक शिला लेख है जिससे प्रकट होता है कि उस समय मुसलिम राज स्थिर हो गया था और धर्मार्थ जागीरें लगायी जाती थीं।

थोड़े दिन पीछे अयोध्या जौनपूर की शरक़ी बादशाही में मिल गया।

बादशाह बाबर ई० सन् १५२८ में दल बल समेत अयोध्या की ओर बढ़ा और सेरवा और घाघरा के सङ्गम पर उसने डेरा डाला। यह सङ्गम अयोध्या से तीन कोस पूर्व था। यहाँ वह एक सप्ताह तक आस-पास के देश से कर लेने का प्रबन्ध करता रहा। एक दिन वह अयोध्या के सुप्रसिद्ध मुसलमान फ़कीर फजल अब्बास क़लंदर के दर्शन को आया। उस समय बाबर के साथ उसका सेनापति मीर बाक़ी ताशकंदी भी था। बाबर ने फ़कीर को बड़े महंगे कपड़े और रत्न भेंट किये परन्तु फ़कीर ने उन्हें स्वीकार न किया। बाबर सब वहीं छोड़ कर अपने पड़ाव पर लौट गया। वहाँ पहुँचने पर उसने देखा कि सारी भेंट उसके आगे पहुँच गयी। बाबर चकित हो गया और नित्य फ़कीर के दर्शन को जाने लगा। एक दिन फ़कीर ने कहा कि जन्म स्थान का मन्दिर तोड़वा कर मेरी नमाज़ के लिये एक मसजिद बनवा दो। बाबर ने कहा कि मैं आपके लिये इसी मन्दिर के पास ही मसजिद बनवाये देता हूं। मन्दिर तोड़ना मेरे "उसूल के ख़िलाफ़ है।" इस पर आग्रही फ़कीर बोल उठा "मैं इस मन्दिर को तुड़वा कर उसी जगह मसजिद बनवाना चाहता हूँ। तू न मानैगा तो तुझे बद दुआ दूँगा।" बाबर काँप उठा और उसे अगत्या फ़कीर की बात माननी पड़ी और मीर बाक़ी को आज्ञा दे कर लौट गया।

* जिस गाँव के पास जलालउद्दीन का सिर काटा गया था वह अब तक इलाहाबाद जिले में गुमसरा कहलाता है।

मसजिद बनवाने का एक दूसरा कारण "तारीख़ पारीना मदीनतुल औलिया (تاریخ پارینہ مدینۃ الاولیا) में दिया हुआ है। और वह यह है—

"बाबर अपनी किशोरावस्था में एक बार हिन्दुस्तान आया था और अयोध्या के दो मुसलमान फ़क़ीरों से मिला। एक वही था जिसका नाम ऊपर लिख आये हैं और दूसरे का नाम था मूसा अशिक़ान। बाबर ने दोनों से यह प्रार्थना की कि मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिये जिससे मैं हिन्दुस्तान का बादशाह हो जाऊँ। फ़क़ीरों ने उत्तर दिया कि तुम जन्म-स्थान के मन्दिर को तोड़ कर मसजिद बनवाने की प्रतिज्ञा करो तो हम तुम्हारे लिये दुआ करें। बाबर ने फ़क़ीरों की बात मान ली और अपने देश को लौट गया।"

इसके आगे मसजिद बनाने का ब्यौरा महात्मा बालकराम विनायक कृत कनकभवन-रहस्य से उद्धृत किया जाता है।

"मीर बाक़ी ने सेना लेकर मन्दिर पर चढ़ाई की। सत्तरह दिनों तक हिन्दुओं से लड़ाई होती रही। अन्त में हिन्दुओं की हार हुई। बाक़ी ने मंदिर के भीतर प्रवेश करना चाहा। पुजारी चौखट पर खड़ा हो कर बोला मेरे जीते जी तुम भीतर नहीं जा सकते।" इस पर बाक़ी झल्लाया और तलवार खींच कर उसे क़त्ल कर दिया। जब भीतर गया तो देखा कि मूर्त्तियाँ नहीं हैं, वे अदृश्य हो गई हैं। पछता कर रह गया। कालान्तर लक्ष्मणघाट पर सरयू जी में स्नान करते हुए एक दक्षिणी ब्राह्मण को मूर्त्तियाँ मिलीं। वह बहुत प्रसन्न हुआ। कहते हैं कि उसकी इच्छा भी यही थी कि कोई सुन्दर भगवन्मूर्त्ति रख कर पूजा करे। अस्तु, पुजारी के वंशधरों ने जब सुना, तब तत्काल नवाब के यहाँ अपना दावा पेश किया। नवाब ने निर्णय किया कि जिसे मूर्त्तियाँ मिलीं हैं वही सेवा पूजा का अधिकारी है। निदान स्वर्गद्वार पर मन्दिर बना, उसमें उन मूर्त्तियों की स्थापना हुई। उनकी सेवा-अर्चा अब तक उस ब्राह्मण

के वंशधर करते हैं। ठाकुर जी काले राम जी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसमें एक बड़े काले पत्थर पर राम पंचायतन की पाँच मूर्त्तियाँ खुदी हैं।

बाक़ी बेग ने मन्दिर की ही सामग्री से मसजिद बनवाई थी। मसजिद के भीतर बारह और बाहर फाटक पर दो काले, कसौटी के पत्थर के स्तम्भ लगे हुए हैं। केवल वे स्तम्भ ही अब प्राचीन मन्दिर के स्मारक रह गये हैं। ऐसे ही दो स्तम्भ उक्त शाह जी की क़ब्र पर थे। जो अब फ़ैजाबाद के अजायब घर में रक्खे हुए हैं। इन स्तम्भों को देख कर प्राचीन मन्दिर की सुन्दरता का कुछ कुछ अनुमान किया जा सकता है। इनकी लम्बाई सात से आठ फ़ीट तक है। किनारों पर और बीच में चौखूँटे हैं और शेष भाग गोल अष्टपहल है। इन पर सुन्दर नक़्क़ाशी का काम बना हुआ है। मसजिद के भीतर एवं फाटक पर दो लेख खुदे हुए हैं उनसे मसजिद के सम्बन्ध रखने वाली बातें मालूम होती हैं। मसजिद के भीतर वाला लेख इस प्रकार है—

بفرمودۂ شاہ بابر کہ عدلش
بنایست تا کاخ گردوں ملاقي
بنا کرد ایں محبط قدسیان
امیر سعادت نشاں میر باقي
بود خیر باقی چو سال بنایش
عیاں شد کہ گفتم بود خیر باقی

(उपर्युक्त शेरों का नागरी अक्षर में पाठ।)

(१) बफ़रमूद-ऐ-शाह बाबर कि अदलश ;
बनाईस्त ता काख़े गरदूँ मुलाक़ी ॥

(२) बिना कर्दे ईं महबते कुदसियां ;
अमीरे सआदत निशां मीर बाक़ी ॥

(३) बुअद खैर बाक़ी चूँ साले बिनायश ;
अयां शुद की गुफ़तम बुअद खैर बाक़ी ॥

(अनुवाद)

(१) बाबर बादशाह की आज्ञा से, जिसके न्याय की ध्वजा आकाश तक पहुंची है।

(२) नेकदिल मीर बाक़ी ने फ़रिश्तों के उतरने के लिये यह स्थान बनवाया है।

(३) उसकी कृपा सदा बनी रहे। बुअद खैर बाक़ी—इसो के टुकड़ों से इसी इमारत के बनने का वर्ष ७३५ हिजिरो भी निकल आता है।

मसजिद के फाटक पर का लेख

بنام آنکه دانا هست اکبر
که خالق جمله عالم لامکانی
درود مصطفی بعد از ستا یش
که سرور انبیاے دو جهانی
فسانه در جهاں بابر قلندر
که شد در دور گیتی کامرانی

(इसका नागरी अक्षर में पाठ)

(१) बनामे आंकि दाना हस्त अकबर ;
कि खालिक जुमला आलम ला-मकानी।

(२) दरूदे मुस्तफ़ा बादज़ सतायश ;
कि सरवर अम्बियाए दो जहानी।

(३) फ़िसाना दर जहां बाबर क़लन्दर ;
कि शुद दर दौरे गेती कामरानी।

(अनुवाद)

(१) उस परमात्मा के नाम से जो महान् और बुद्धिमान है, जो सम्पूर्ण जगत का सृष्टिकर्त्ता तथा स्वयं निवास-रहित है।

(२) उसकी स्तुति के बाद मुस्तफ़ा की तारीफ़ है। जो दोनों जहान तथा पैगम्बरों के सरदार हैं।

(३) संसार में बाबर और क़लन्दर की कथा प्रसिद्ध है जिससे उसे संसार चक्र में सफलता प्राप्त हुई है।

यहाँ हम इतना और लिखना चाहते हैं कि बहुत थोड़े ही तोड़ फोड़ से मन्दिर की मसजिद बन गयी है। पुराने रावटी के खंभे अब मसजिद की शोभा बढ़ा रहे हैं। मूसा आशिक़ान की क़ब्र कटरे की सड़क पर वसिष्ठ कुँड के पास अब भी बतायी जाती है परन्तु क़ब्र का निशान नहीं है और वह जगह बहुत ही गन्दी है। एक जगह जन्म-स्थान के दो खंभे गड़े हैं। कहा जाता है कि जब मूसा आशिक़ान मरने लगे तो उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि जन्म-स्थान का मन्दिर हमारे ही कहने से तोड़ा गया है इससे इसके दो खंभे बिछाकर हमारी लाश रक्खी जाय और दो हमारे सिरहाने गाड़ दिये जायँ।

मुग़ल साम्राज्य में अयोध्या की महिमा घट गयी। इतना पता लगता है कि अकबर ने यहाँ ताँबे के सिक्कों की एक टकसाल स्थापित की थी।

चौदहवाँ अध्याय।

नवाब वज़ीरों के शासन में अयोध्या।

ई० १७३१ (वि० १७८८) में सआदत खां जिसका नाम मुहम्मद अमीन बुरहानुल् मुल्क था अवध का सूबेदार बनाया गया। सआदत खां पहिले दिल्ली के बादशाह मुहम्मद शाह का वज़ीर था। इसी से उसके वंशज स्वतंत्र हो जाने पर भी नवाब वज़ीर कहलाते थे। वह बादशाही के लड़ाई झगड़ों में फँसा रहा और अवध में बहुत कम आया। उसका प्रबल सामना करने वाला अवध में अमेठी का राजा गुरुदत्त सिंह था जिसकी वीरता का बखान उसके दरबार के कवि कवीन्द्र ने यों किया है—

समर अमेठी के सरोष गुरुदत्तसिंह,
सादत की सेना समसेरन ते भानी है।
भनत कविन्द काली हुलसी असीसन को,
सीसन को ईस की जमाति सरसानी है॥
तहां एक जोगिनी सुभट खोपरी लै तामें,
सोनित पियत ताकी उपमा बखानी है।
प्याला लै चिनी को छकी जोबन तरंग मानो,
रंग हेतु पीवनि मजीठ मुगलानी है॥*

प्रचलित इतिहास में इस लड़ाई का उल्लेख नहीं है। केवल इतना ही मिलता है कि सआदत खां के उत्तराधिकारी नवाब सफ़दर जंग ने राजा गुरुदत्त सिंह पर चढ़ाई की और अठारह दिन तक रायपुर के गढ़ को घेरे पड़ा था। पीछे गढ़ छोड़कर राजा रामनगर के बन को

* महाराजा प्रताप नरायण सिंह के रसकुसुमाकर पृ० १८७ से उद्धृत।

भाग गया। परन्तु हम उस घटना के झूठ होने का कोई कारण नहीं देखते जिसका उल्लेख ऊपर की घनाक्षरी में है।

सआदत की दूसरी लड़ाई गंगा के दक्षिण असोथर के राजा भगवन्त राय खीचर के साथ हुई जिसमें खीचर राजा मारा गया।

सआदत खाँ का प्रधान मंत्री दीवान दयाशंकर था।

सआदत खाँ के पीछे उसका दामाद मन्सूर अली उपनाम सफ़दर जंग अवध का शासक हुआ। वह भी दिल्ली के बादशाह ही के झगड़ों में फँसा रहा। ऐसे एक झगड़े का वर्णन सूदन कवि ने अपने सुजान चरित में किया है। यह अंश हमारे सिलेकशन्स फ्राम हिन्दी लिटरेचर की जिल्द १ में उद्धृत है।* इसमें मन्सूर ने सूरजमल जाट को बुला कर दिल्ली शहर लुटवाया और बादशाही सेना को परास्त किया था।

सफ़दर जंग के समय से अयोध्या के दिन फिरे। उसका प्रधान मंत्री और सेना नायक इटावे का रहने वाला सकसेना कायस्थ नवल राय था। नवल राय ने रुहेलों को अवध से मार भगाया और अन्त में फर्रुखाबाद के नवाब बंगश की लड़ाई में धोखे से मार डाला गया। नवलराय वीर तो था ही बड़ा धर्मात्मा भी था और नवाब वज़ीरों में बड़ा प्रशंसनीय गुण यह था कि अपने सेवकों और अपनी प्रजा को पूरी धार्मिक स्वतंत्रता दिये हुये थे। पण्डित माधवप्रसाद शुक्ल ने सुदर्शन पत्र में लिखा है कि मुसलमान राज में अयोध्या मुसलमान मुर्दों के लिये "करबला" हुई। मन्दिरों की जगह पर मसजिदों और मक़बरों का अधिकार हुआ। "अयोध्या का बिलकुल स्वरूप ही बदल दिया।" ऐसी आख्यायिका और मस्नवी गढ़ी गयीं जिनसे यह सिद्ध हो कि मुसलमान औलिये फ़कीरों का यहाँ "क़दीमी अधिकार है······।"

---

* Selections from Hindi Literature published by the Calcutta University, book I.

इसी समय नवाब सफ़दर जङ्ग के कृपा पात्र सुचतुर दीवान नवलराय ने अयोध्या में नागेश्वर नाथ महादेव का वर्त्तमान मन्दिर बनवाया। लक्ष्मण जी के मन्दिर के विषय में ऐसी कथा प्रसिद्ध है कि उन्हीं दिनों किसी कायस्थ ने बनवाया था। हमने जहाँ तक जाँच की है इसका भी बनवाने वाला नवलराय ही था। नवलराय का मकान नवलराय के छत्ते के नाम से अब तक सरयू-तट पर विद्यमान है। प्रयागराज में जहाँ अब तक दारागञ्ज में उनके वंशज रहते हैं नवलराय का तालाब है जिसमें आज-कल स्थानिक म्युनिसिपलिटी गन्दा पानी भर रही है।

सफ़दर जङ्ग के पीछे उसका बेटा शुजाउद्दौला बादशाह हुआ। उसने आजकल की अयोध्या से तीन मील पश्चिम फ़ैज़ाबाद नगर बसाया और उसे इतना सजाया कि उसकी शोभा देख कर अंगरेज यात्री चकित हो जाते थे। उसी ने घाघरा के तट पर ऊँचा कोट बनवाया। शुजाउद्दौला ने अंगरेजों से सन्धि कर ली। रुहेलखंड जीत लिया गया और इलाहाबाद और अवध के सूबों में मिला दिया गया।

उसी शुजाउद्दौला के समय में फ़ैज़ाबाद में तिरपौलिया आदि इमारतें बनी और अनेक बाग़ बने जैसे, लाल बाग़, ऐश बाग़, बुलंद बाग़, राजा झाऊलाल का बाग़ और अंगूरी बाग़। जवाहिर बाग़ में शुजाउद्दौला की मलका बहू बेगम का मक़बरा है। हयात बख़्श और फ़रहत बख़्श दो बाग़ अयोध्या में थे। इनमें से हयात बख़्श बादशाह के मंत्री महाराज बालकृष्ण ने अयोध्या के सुप्रसिद्ध पंडित उमापति त्रिपाठी को दिला दिया। फ़रहत बख़्श का एक भाग राजकुमारों के पास है और दूसरा भाग दिगंबरी अखाड़ेवालों को गुलाब पार्क के बदले दे दिया गया।

शुजाउद्दौला के समय में अयोध्या में खत्री आकर बस गये। ये सब अधिकांश "सूरत सिंह" के हाते में रहते थे परन्तु काल ने सब को नष्ट कर दिया। शुजाउद्दौला के शासन की एक घटना यहाँ पर दिखाने के लिये

लिखी जाती है कि मुसलमान राजा स्वतंत्र होने पर भी प्रजा को सताते तो प्रजा उसका प्रतीकार भी कर सकती थी।

शुजाउद्दौला * एक दिन हवा खाने निकले तो उनकी आँख एक जवान खत्री स्त्री पर पड़ी। उसको देखते ही नवाब साहेब उस पर लट्टू हो गये। महल में लौटने पर रात बड़ी बेचैनी से कटी। दूसरे दिन राजा हिम्मत बहादुर गोशाईं ने दो हिन्दू कुटनियाँ नवाब से मिलाईं। नवाब ने उन्हें इनाम देने का वादा करके उस स्त्री का पता लगाने भेजा। उन्होंने उसका खोज लगा कर नवाब को सूचित किया। तीन दिन बीते राजा गोशाईं ने अपने साथ के कुछ नागे उस स्त्री के घर आधी रात को भेज दिये और वे स्त्री का पलङ्ग उठा कर नवाब साहेब के पास लाये। नवाब ने अपना मनोरथ पूरा करके स्त्री को फिर अपने घर भेजवा दिया। स्त्री ने अपने घर के पुरुषों से अपनी दुर्गति की कहानी कही। घरवालों ने समझ लिया कि शुजाउद्दौला की अनुमति से नागे आये थे। उनमें कुछ लोग राजा रामनारायण दीवान के पास पहुँचे और अपनी पगड़ियाँ धरती पर डाल कर बोले "प्रजा पालन इसी का नाम है? हम लोग अब यहाँ नहीं रह सकते; देश छोड़ कर चले जायँगे।" इतना सुनते ही राजा रामनारायण अपने भतीजे राजा जगत नारायण और कई हजार खत्री नङ्गे सिर और नङ्गे पाँव इस्माइल खाँ काबुली के पास गये और कहा कि "बादशाह ने प्रजा पीड़न पर कमर बाँधी है। आप हमें आज्ञा दें तो यहाँ से निकल कर और किसी देश को चले जायें।" इस्माइल खाँ बहुत बिगड़ा और कई मुगल सरदारों को बुला कर सारा व्यौरा कह सुनाया और यह निश्चित हुआ कि हिम्मत बहादुर और उसके भाई को नवाब से ले कर दण्ड देना चाहिये। नवाब न माने तो महम्मद कुली खाँ को बुला कर सिंहासन पर बैठा देना चाहिये और नवाब को जागीर दे दी जाय। नवाब ने उत्तर दिया कि "हिम्मत बहादुर ने जो कुछ किया

---

* नजमुलग़नी खाँ कृत तारीखे अवध हिस्सा १ पृ० २८२।

हमारी आज्ञा से किया। जब तक हम जीते हैं तब तक किसी की सामर्थ्य नहीं है कि हिम्मत बहादुर को दुख दे। हमें ऐसे राज का लोभ नहीं है। तुम अपनी भीड़-भाड़ के घमण्ड में हो, हम भी तुम्हारा सामना करने को तैयार हैं।" इस पर मुग़ल सरदारों ने दर्बार में आना-जाना बन्द कर दिया और मुहम्मद क़ुली ख़ाँ को इलाहाबाद से बुलवाया। शुजाउद्दौला की माता ने यह समाचार सुना तो राजा रामनारायण को अपनी ड्योढ़ी पर बुला कर परदे की ओट में बैठ कर उससे बोलीं कि "अपने स्वामी के बेटे के साथ तुमको ऐसा बर्ताव करना उचित नहीं है। तुमने उसके बाप से लाखों रुपये पाये। एक छोटी सी बात के लिये इतना दङ्गा करना उचित नहीं है। मैं मानती हूँ कि महम्मद क़ुली ख़ाँ सफ़दर जङ्ग का भतीजा है परन्तु बाप का नाम बेटे से चलता है, भतीजे से नहीं। रामनारायण ने उत्तर दिया कि "आपके बेटे मेरी जान चाहें तो हाज़िर है। परन्तु उनकी चाल से देश उजड़ा जाता है और हित बैरी बने जाते हैं। यह सारा टंटा बखेड़ा इस प्रयोजन से किया गया कि फिर ऐसा काम न करें। इससे सारे हिन्दुस्तान में उनकी बदनामी होगी" और राजा रामनारायण ने मुग़ल सरदारों को बुला कर ऐसी बातें कहीं कि सब राज़ी हो गये और खत्रियों को समझा बुझा कर घर भेज दिया।

हम अवध के बादशाहों के समय की एक दूसरी घटना लिखते हैं जिससे विदित होगा कि उस समय में पुलिस का प्रबन्ध कैसा था। बादशाह ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के राज में बालगोविन्द महाजन के घर पर संध्या समय डाका पड़ा। उसका अपराध धूमीबेग कोतवाल के सिर मढ़ा गया। उसने यह विनय किया कि ये डाकू बाहर के न थे। रोशन अली के घर में बहुत से बदमाश रहते हैं और रोशनअली का नाम डर के मारे कोई नहीं लेता। परन्तु कोतवाल की बात सुनी न गई और कोतवाल अपनी अप्रतिष्ठा से बचने के लिये विष खा कर मर गया।

शुजाउद्दौला के मरने पर फ़ैज़ाबाद उनकी विधवा बहू बेगम की जागीर में रहा और उनके बेटे आसफ़उद्दौला ने लखनऊ को अपनी राजधानी बनाया। बहू बेगम का नगर में बड़ा आतङ्क था। जब उसकी सवारी निकलती थी तो अयोध्या और फ़ैज़ाबाद में घरों के किवाड़े बन्द हो जाते थे और जो तिलक लगाये हुये निकलता था उसको दण्ड दिया जाता था। इसी से उस समय का एक दोहा प्रसिद्ध है :—

अवध बसन को मन चहै, पै बसिये केहि ओर।
तीन दुष्ट यहि में रहैं, बानर, बेगम, चोर॥

इसी समय वारन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल के शासन में बहू बेगम और उनकी सास को नाना प्रकार के दुख देकर एक करोड़ बीस लाख रुपया ले लिया। यह घटना ईष्ट इण्डिया कंपनी के शासन पर काला धब्बा है।

आसफ़ुद्दौला के मंत्री महाराजा टिकयतराय श्रीवास्तव कायस्थ थे। पहिले टिकयतराय बहुत छोटे पदों पर रहे। पीछे अपनी नीति-निपुणता से दीवान और राजा का पद पाया। दान पुण्य में बहुत प्रसिद्ध थे। बादशाही खज़ाने से हज़ारों रुपये ब्राह्मणों को दिये जाते थे। धर्मात्मा राजा साहिब ने कई बाग़ लगवाये और अनेक पुल मन्दिर और धर्मशालायें बनवायीं। अयोध्या की हनुमानगढ़ी इन्हीं की धर्म-कीर्ति का प्रमाण-स्वरूप अब तक वर्त्तमान है। इनके दान से अब तक हजारों ब्राह्मण जी रहे हैं। लखनऊ का राजा का बाज़ार इन्हीं का बसाया हुआ है। प्रयागराज में मोती महल जिसमें आजकल दारागञ्ज हाईस्कूल है इन्हीं की बनवायी धर्मशाला थी। इस महापुरुष के विषय में तारीख़े अवध में लिखा है कि राज काज से छुट्टी पाने पर इसके यहाँ मसनवी मौलाना रूम और शेख़ सादी और हाफ़िज़ का चर्चा रहा करता था। ज्ञान प्रकाश में लिखा है कि राजा टिकयतराय ने एक मसजिद और एक इमाम बाड़ा भी बनवाया था।

आसिफुद्दौला के सेनापति राजा झाऊलाल सकसेने कायस्थ थे जिनके नाम का महल्ला लखनऊ में अबतक झाऊलाल का बाजार कहलाता है। उसी महल्ले में ग्रन्थकर्ता का मकान है। झाऊलाल के बाग का नाम फ़ैज़ाबाद के वर्णन में ऊपर आ चुका।

बहू बेगम फ़ैजाबाद में ई० १८१६ में मरी और जिस मक़बरे में वह गड़ी है वह अवध में अद्वितीय है। उसके चारों ओर सुन्दर बाग है और उसके खर्च के लिये माफ़ी लगी हुई है।

शाही दरबार लखनऊ में उठ जाने पर अयोध्या में कोई विशेष घटना नहीं हुयी। बादशाहों की छत्रछाया में महाराजा दर्शन सिंह और उनके दरबारी कायस्थों ने अनेक मन्दिर बनवाये जो अब तक विद्यमान हैं।

अन्तिम बादशाह वाजिदअली के समय में एक दुर्घटना हुई जिसका वर्णन बहू बेगम के विश्वास-पात्र दराबअली खाँ के कुल के एक सज्जन ने भेजा है।

"गुलाम हुसेन नाम का एक सुन्नी फ़क़ीर हनूमानगढ़ी के महन्तों के यहाँ से पलता था। वह एक दिन बिगड़ बैठा और सुन्नियों को यह कह कर भड़काया कि औरङ्गज़ेब ने गढ़ी में एक मसजिद बनवा दी थी उसे बैरागियों ने गिरा दिया। इस पर मुसलमानों ने जिहाद की घोषणा कर दी और गढ़ी पर धावा बोल दिया। परन्तु हिन्दुओं ने उन्हें मार भगाया और वे जन्मस्थान की मसजिद में छिप गये। कप्तान आर, मिस्टर हरसे और कोतवाल मिरजा मुनीम बेग ने झगड़ा निपटाने का बड़ा उद्योग किया। बादशाही सेना खड़ी थी परन्तु उसको आज्ञा थी कि बीच में न पड़े। हिन्दुओं ने फाटक रेल दिया और युद्ध में ११ हिन्दू और ७५ मुसलमान मारे गये। दूसरे दिन नासिरहुसेन नायब कोतवाल ने मुसलमानों को एक बड़ी क़बर में गाड़ दिया जिसे गंजशहीदाँ कहते हैं।

इसके पीछे मुसलमानों ने वाजिदअली शाह को अर्ज़ी दी कि हिन्दुओं ने मसजिद गिरा दी। इसके प्रतिकूल भी कुछ मुसलमानों ने अर्ज़ी भेजी। बादशाह के एक अर्ज़ी पर यह लिखा।

हम इश्क़ के बन्दे हैं मज़हब से नहीं वाक़िफ़।

गर काबा हुआ तो क्या, बुतखाना हुआ तो क्या?

बादशाह ने एक कमीशन बैठाया जिसने महन्तों को जिता दिया। इस न्याय से संतुष्ट होकर लार्ड डलहौज़ी ने बादशाह को मुबारक-बादी दी।

परन्तु मुसलमान सन्तुष्ट न हुये और लखनऊ ज़िले की अमेठी के मोलवी अमीरअली ने हनूमान गढ़ी पर दूसरा धावा मारने का प्रबन्ध किया। बादशाह ने मना किया परन्तु उसने न माना और रुदौली के पास शुजागञ्ज में मारा गया। इसके पीछे बादशाह तख़्त से उतार दिये गये और नवाबी का अन्त हो गया।

पन्द्रहवाँ अध्याय ।

अयोध्या के शाकद्वीपी राजा ।*

अयोध्या का इतिहास बिना शाकद्वीपी राजाओं के वर्णन के अपूर्ण रहेगा । तीस वर्ष हुये श्रीमान् महाराजा प्रतापनारायण सिंह बहादुर के० सी० आई० ई० अयोध्यानरेश ने हम से अपने वंश का इतिहास लिखने के लिये कहा था और उसके लिये कुछ सामग्री भी दी थी । फ़ैजाबाद के भूतपूर्व कमिश्नर कोर्नेगी साहेब ने अंगरेज़ी में एक हिस्ट्री अव अयोध्या ऐण्ड फ़ैजाबाद (History of Ajodhya and Fyzabad) लिखी थी जिसके एक अंश की नक़ल हमारे पास है । उन्हीं के आधार पर यह संक्षिप्त इतिहास लिखा जाता है ।

शाकद्वीपियों की उत्पत्ति

शाम्ब-पुराण अध्याय ३८ में लिखा है :—

शाकद्वीपाधिपः पूर्वमासीद्राजा प्रतर्द्दनः ।
स सदेहो रविं गन्तुञ्चक्रमे भूरिदक्षिणः ॥
विप्रास्तम् प्राहुरीशानञ्च सदेहो गमिष्यसि ।
सौरयज्ञं वयं कर्त्तुमक्षमाः सर्वकामिकम् ॥
तपस्तेपे नृपस्तीव्रं वर्षाणाञ्च शतत्रयम् ।
ततः प्रसन्नो भगवानाह भूपं वरार्थिनम् ॥
वरं वरय भूपाल, किंतेऽभीष्टं ददामि तत् ।
सौरयज्ञं करिष्यामि याजकाः सन्ति नैव मे ॥

---

* यह प्रसंग महाराजा त्रिलोकीनाथसिंह जी के लिखाये इतिहास के आधार पर लिखा गया है जो हमें महाराजा प्रतापनारायणसिंह जी से मिला था ।

यस्मिन् कृते मखे यामि सदेहस्त्वां दिवस्पते ।
ततः स भगवान् दध्यौ क्षणम्मीलितलोचनः ॥
सूर्यप्रभा मण्डलतो ब्राह्मणाः सप्त तत्क्षणात् ।
आविरासन् ब्रह्मविदो वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
ततस्तानाह भगवान् विप्रान्यज्ञान्तकर्मणि ।
युष्माकं सन्ततिर्भूमौ यथा स्यादनपायिनी ॥
पावनार्थञ्चलोकानान्तथा नीतिर्विधीयताम् ।
ततस्ते जनयामासु र्मनसा तनयाञ्छुभान् ॥
द्वे द्वे कन्ये सुतौ द्वौ द्वौ तेषां वृद्धिः क्रमादभूत् ।

"पूर्वकाल में प्रतर्दन शाकद्वीप का राजा था, उसकी यह कामना हुई कि हम सदेह सूर्य-लोक को चले जायँ। ब्राह्मणों ने उससे कहा कि हम लोग सारी कामनाओं का पूरा करनेवाला सौरयज्ञ नहीं करा सकते। इससे तुम सूर्य-लोक में सदेह न जाओगे। ब्राह्मणों के वचन सुन कर राजा ने ३०० वर्ष तक कड़ी तपस्या की। तब सूर्य भगवान प्रसन्न हो कर प्रकट हुये और उनसे बोले हे राजा ! जो चाहते हो, माँग लो, हम वही वर देंगे। राजा ने उत्तर दिया कि हम सौरयज्ञ करना चाहते हैं परन्तु हमको कोई यज्ञ करानेवाले नहीं मिलते। सौरयज्ञ कराने का हमारा प्रयोजन यह है कि हम सदेह आप के पास पहुँच जायँ। इस पर सूर्य भगवान् ने आँखें बन्द कर, एक क्षण ध्यान किया और उनके प्रभा-मण्डल से उसी क्षण सात ब्राह्मण प्रकट हुये। सातो ब्रह्म-ज्ञानी और वेद-वेदाङ्ग के पारंगत थे। उनको सूर्य भगवान् ने यज्ञ का सम्पूर्ण कर्म बताया और कहने लगे कि तुम लोगों को ऐसा आचरण करना चाहिये जिससे लोकों को पवित्र करने के लिये पृथ्वी तल पर तुम्हारी सन्तान सदा बनी रहे। इस पर उन ब्राह्मणों ने मानस-सन्तान उत्पन्न की। प्रत्येक के दो-दो पुत्र और दो-दो पुत्रियाँ हुई और क्रम से उनकी संसार में वृद्धि होती रही।"

शाकद्वीपियों के इस देश में आकर बसने का कारण

श्रीकृष्ण और जाम्बवती के पुत्र शाम्ब अपने पिता के शाप से कोढ़ी हो गये थे। इस रोग से मुक्त होने का उपाय उनको यही सूझा कि सूर्य नारायण की उपासना करें। इस विचार से उन्होंने देवर्षि नारद से सूर्य नारायण की उपासना की विधि पूछी और उत्तर को चले गये। वहाँ उन्होंने कड़ी तपस्या की और रोग से मुक्त हुये। इधर अयोध्या के राजा बृहद्बल * ने देवताओं की आराधना की विधि कुल-गुरु वसिष्ठ से पूछी। वसिष्ठ जी ने उनको सारी विधि बतलाई और नारद के उपदेश से शाम्ब के कुष्ठ रोग से मुक्त होने का बृतान्त कहा। इन घटनाओं को लेकर वेदव्यास ने शाम्ब पुराण रचा और यह पुराण सौनकादि की प्रार्थना से सूत ने नैमिषारण्य में सुनाया। शाम्ब पुराण में लिखा है कि कुष्ठ रोग से मुक्त होने पर शाम्ब चन्द्र-भागा नदी में स्नान करने के लिये गये। यहाँ उनको सूर्य नारायण की एक प्रतिमा देख पड़ी। शाम्ब सूर्य-देव के भक्त थे ही उन्होंने यह संकल्प किया कि एक मन्दिर बनवा कर मूर्त्ति की उसमें स्थापना करा दें और एक योग्य ब्राह्मण को पूजा अर्चा के लिये नियत कर दें। ऐसे ब्राह्मण के लिये उन्होंने देवर्षि नारद से पूछा तो नारद ने उत्तर दिया कि इस विषय में तुम्हें सूर्यनारायण की आज्ञा लेनी चाहिये। इस पर शाम्ब फिर सूर्यदेव की तपस्या करने लगे। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर सूर्यनारायण ने उनको दर्शन दिया और बोले कि इस देश में काल पड़ा हुआ है। शाकद्वीप में ऐसा ब्राह्मण मिल जायगा। तुम शाकद्वीप चले जाओ और वहाँ से द्वारका में उस ब्राह्मण को ले आओ। शाम्ब ने द्वारका जाकर श्रीकृष्ण जी से सारा बृत्तान्त कहा और उनकी आज्ञा से गरुड़ पर सवार होकर शाकद्वीप को गये और वहाँ से अट्ठारह ब्राह्मण लाये, जिनके नाम ये हैं :—१ मिहिरांशु,

* सूर्यवंशी राजाओं की सूची का ९४वाँ राजा जो महाभारत में अभिमन्यु के हाथ से मारा गया था।

२ शुभांशु, ३ सुधर्म्मा, ४ सुमति, ५ बसु ; ६ श्रुतिकीर्त्ति, ७ श्रुतायु, ८ भरद्वाज, ९ पराशर, १० कौण्डिन्य, ११ कश्यप, १२ गर्ग, १३ भृगु, १४ भव्यमति, १५ नल, १६ सूर्यदत्त, १७ अर्कदत्त, १८ कौशिक।

फिर मन्दिर बनवा कर उस मूर्त्ति की प्रतिष्ठा की। जब ब्राह्मण लोग प्रतिष्ठा से निवृत्त हुये तो अपने देश को चले। श्रीकृष्ण जी ने उनसे कहा कि कुछ दिन यहाँ और ठहरो। इसके पीछे गरुड़ को आज्ञा दी गई इन ब्राह्मणों को शाकद्वीप पहुँचा दो। गरुड़ ने उन लोगों से यह प्रतिज्ञा करा ली कि जब शाकद्वीप को प्रस्थान करें तो बीच में कहीं न ठहरें। ब्राह्मण लोग ३८ वर्ष तक द्वारका में रहे।

मगध में शाकद्वीपियों का निवास

इसी बीच में श्रीकृष्ण जी ने लीला सँवरण किया। तब उन ब्राह्मणों को द्वारका में रहना अच्छा न लगा और गरुड़ पर सवार हो कर शाकद्वीप की ओर चले। जब मगध-देश के ऊपर पहुँचे तो वहाँ रोना-पीटना सुन पड़ा। ब्राह्मण लोग बड़े व्यग्र थे। उनके पूछने पर गरुड़ ने कहा कि मगध-देश के राजा धूम्रकेतु को कोढ़ हो गया है इसी कारण उसने मरने की ठान ली है और चिता के लिये लकड़ियों का ढेर लगा है। राजा बड़ा धर्मात्मा है और उसके राज में सब सुखी हैं। इसी से उसकी सब प्रजा उसके लिये रो रही है। ब्राह्मणों को दया आई और उन्होंने गरुड़ से कहा कि 'क्या इस देश में ऐसा तपस्वी नहीं है जो राजा को इस रोग से मुक्त करे'? गरुड़ ने उत्तर दिया यहाँ ऐसा कोई होता तो शाम्ब आप लोगों को क्यों बुलाते। ब्राह्मणों ने गरुड़ से कहा कि पृथ्वी पर उतरो। राजा उनके दर्शनों से कृतकृत्य हो गया। मिहरांशु ने उसे अपना चरणोदक पिलाया और राजा का कोढ़ अच्छा हो गया। तब ब्राह्मणों ने गरुड़ से कहा कि हमें शाकद्वीप पहुँचा दो। गरुड़ ने कहा कि आप से प्रतिज्ञा करा चुका हूँ अब आप यहीं रहिये। कृतज्ञ राजा ने ब्राह्मणों को अपने देश में आदर से रक्खा और गङ्गा-तट पर कई गाँव दिये। ब्राह्मणों

से चार अर्थात् श्रुतिकीर्त्ति, श्रुतायु, सुधर्म्मा, और सुमति ने सन्यास ले लिया और तपस्या करने को बदरिकाश्रम चले गये। शेष १४ मगध में रहे और वसु ने अपनी बेटियाँ उनको विवाह दीं। उन्हीं की सन्तान आज-कल मगध देश में बसी है।

गोत्र और शाखा

मिहरांशु, भारद्वाज, कौण्डिन्य, कश्यप, गर्ग की सन्तान बढ़ी और प्रसिद्ध हुई। इसी कारण शाकद्वीपियों के छः घर बन गये और प्रत्येक घर के मूल-पुरुष का नाम गोत्र कहलाया। आज-कल शाकद्वीपियों के ७२ घर गिने जाते हैं, अर्थात् उर २४, आदित्य १२, मण्डल १२, अर्क ७। शेष इन्हीं की शाखायें हैं।

मिहरांशु की सन्तान ने बड़े बड़े काम किये थे इसलिये उनकी शाखा अधिक प्रतिष्ठित मानी जाती है। जो शाखा जिस गाँव में बसी उसी गाँव के नाम से प्रसिद्ध हुई। जैसे उर से उर्वार।

हमारा अभिप्राय केवल महाराजा मानसिंह के कुल का वर्णन करना है। इसलिये और कुलों के विस्तार लिखने की आवश्यकता नहीं।

अयोध्या का शाकद्वीपी राजवंश

इस वंश के पहिले प्रसिद्ध राजा महाराजा मानसिंह हुये। महाराजा साहेब गर्ग गोत्र के थे और इनके पूर्व पुरुष बिलासू गाँव में रहते थे। यह गाँव गङ्गा तट पर अब तक बसा हुआ है और राजा धृष्टकेतु से मिला था। यहाँ गर्ग गोत्र के बिलसिया ब्राह्मण रहते हैं और उनसे बिरादरी का आना जाना अब तक चला जाता है। इसी कारण महाराजा साहेब का गर्ग गोत्र बिलासियाँ पुर और द्वादश आदित्य शाखा है। बिलासी गाँव के एक बड़े प्रसिद्ध पण्डित दिल्ली पहुँचे और गुणज्ञ अकबर बादशाह ने उनको मझवारी गाँव की जिमींदारी दी। यह गाँव अकबर बादशाह के समय तक उनके पास रहा। अकबर के मरने पर मझवारी के पुराने जिमीदारों ने डाका डाल कर सारे पाठकों

को मार डाला। केवल एक स्त्री भाग कर एक चमार के घर में छिपी। वह स्त्री गर्भवती थी। चमार उसे दूलापूर ले गया। दूलापूर के जमींदार की स्त्री का मैका उसी गाँव में था जहाँ की वह ब्राह्मणी थी। इस कारण जमींदार ने उसको मैके पहुँचा दिया। मैके में ब्राह्मणी के जोड़िया लड़के पैदा हुये। एक का नाम मधुसूदन और दूसरे का टिकमन पाठक था। जब दोनों भाई सयाने हुये तो अपनी पुरानी जमींदारी लेने की उनको चिन्ता हुई और दूलापूर आये। दूलापूर के जमींदार ने उनसे सारा ब्यौरा कहा और रात को उन्हें मझवारी ले जाकर सारा गाँव दिखाया। यहाँ उनको वह चमार भी मिला जिसके घर में उनकी माता ने शरण ली थी। तब दोनों भाई दिल्ली पहुँचे और बादशाह औरंगज़ेब से फ़रयाद की। बादशाह ने उन्हें मझवारी गाँव के अतिरिक्त ९९ गाँव और दिये और उनको चौधरी की उपाधि देकर अपने देश को लौटा दिया।

महाराजा मानसिंह के पूर्वपुरुषों का फ़ैज़ाबाद के ज़िले में पलिया गाँव में आना

जब मुर्शिदाबाद के हाकिम नवाब क़ासिम अलीख़ाँ ने शाहाबाद ज़िले को अपने शासन में कर लिया उस समय उनके अत्याचार से मझवारी की ज़िमींदारी नष्ट होगई और महाराज मानसिंह के प्रपितामह अपना देश छोड़ कर गोरखपुर के ज़िले में बिडहल के पास नरहर गाँव में जाकर बसे। उनके बेटे गोपाल पाठक ने अपने बेटे पुरन्दर राम पाठक का विवाह पलिया गाँव के गङ्गाराम मिश्र की बेटी के साथ कर दिया और पलिया में आकर बस गये।

पुरन्दर राम जी के ५ बेटे थे, ओरी, शिवदीन, दर्शन इन्छा और देवीप्रसाद। ओरी ने १४ वर्ष की अवस्था में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रिसाले में नौकरी करली और लार्ड कार्नवलिस के साथ कई लड़ाइयों

राजा बख़तावर सिंह

में वीरता दिखाई। एक बार छुट्टी लेकर लखनऊ की सैर को आये और बेलीगारद के सामने अपने एक मित्र से बात-चीत कर रहे थे कि उधर से अवध के नव्वाब सआदत अली खाँ की सवारी निकली। ओरी बहुत अच्छे डील डौल के वीर पुरुष थे। नव्वाब साहब ने उनको बहुत पसन्द किया और चोबदार से बोले कि इस जवान से कहो कि हमारी सरकार में नौकरी करे। ओरी ने उत्तर दिया कि हम आपकी सेवा करने में अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं परन्तु हम अंग्रेजी सरकार के नौकर हैं। नव्वाब साहब ने तुरन्त लखनऊ के रेजिडेण्ट डेली साहब को लिखा और ओरी को ८ सवारों का दफ़ादार बना कर अपनी अर्दली में रक्खा। एक दिन नव्वाब साहब हवादार पर बाहर निकले थे। रास्ते में उन पर किसी ने तलवार चलाई। वह हवादार की तान में लगी। दूसरा वार फिर करना चाहता था कि वीर ओरी ने झपट कर उसको एक ऐसा हाथ मारा कि वह वहीं मर गया। इस पर नव्वाब साहब बहुत प्रसन्न हुये और ख़िलअत देकर पलिया उनकी जागीर कर दी और जमादारी का ओहदा देकर उनको सौ सवारों का अफ़सर बनाया। इसके कुछ ही दिन पीछे रिसालदार बना दिये गये और उनका नाम ओरी से बदल कर बख़्तावर सिंह कर दिया गया। नव्वाब सआदत अली खाँ के मरने पर जब ग़ाज़ीउद्दीन हैदर बादशाह हुये तो उन्हें राजा की उपाधि मिली। उनकी ख़ैरख़्वाही के कारण दरबार में उनकी प्रतिष्ठा और उनका अधिकार बढ़ता गया जो किसी दूसरे को प्राप्त न था। कुछ दिन बाद उन्होंने अपने भाई दर्शनसिंह को चकलेदारी दिलवायी। उन्होंने भी अपने इलाके का बहुत अच्छा प्रबन्ध किया और राजा की पदवी पायी। उन्हीं दिनों शिवदीन एक बड़ा डाकू था। बादशाह की आज्ञा से उसका दमन किया गया और राजा को बहादुर का पद मिला। इसी तरह दोनों की बादशाह नसीरुद्दीन के समय में उन्नति होती रही। राजा दर्शनसिंह ने शाहगंज में सुदृढ़ कोट, बाज़ार और महल बनवाये। श्री अयोध्या में

दर्शनेश्वरनाथ का पत्थर का शिवाला बनवाया जो अवध प्रान्त में अद्वितीय है। सूर्यकुण्ड का पक्का तलाव और उसी के पास दर्शन नगर बाजार उनके कीर्त्ति के स्तम्भ अब तक विद्यमान हैं। उनकी वीरता, उनका दान, उनका न्याय और राज-विद्रोहियों (सर्कशों) का दमन संसार में प्रसिद्ध है। इस अन्तिम काम के लिये उनको बादशाही से सरकोबे सरकशां सलतनत बहादुर (سرکوب سرکشان سلطنت بہادر) की उपाधि मिली थी।

राजा दर्शनसिंह की वीरता बखान में इतिहास का यह अंश बहुत बढ़ जायगा। राजा दर्शनसिंह ५ वर्ष तक बैसवाड़े के नाज़िम रहे। बैसवाड़े के तालुकदार क्या बड़े क्या छोटे सरकारी जमा देना जानते ही न थे। उनका बल बहुत बढ़ा हुआ था और उनकी गढ़ियों पर तोपें चढ़ी रहती थीं। दर्शनसिंह ने कुछ बड़े-बड़े ताल्लुकेदारों के नाम परवाने जारी किये जिनमें यह लिखा था कि अपनी भलाई चाहते हो तो तुरन्त उपस्थित हो कर सरकारी जमा दाखिल करो। ताल्लुकदारों ने परवाने पाकर युद्ध करना निश्चय कर दिया। राजा दर्शनसिंह ने पहिले धावा मार कर मुरारमऊ की गढ़ी तोड़ी और गढ़ी के रक्षक एक पगडण्डी के रास्ते निकल भागे। इस गढ़ी के टूटने से और ताल्लुकदारों के छक्के छूट गये।

बलरामपूर के ताल्लुकेदार राजा दिग्विजयसिंह जी सरकारी जमा नहीं देते थे। राजा दर्शनसिंह ने सेना समेत बलरामपूर की गढ़ी पर चढ़ाई कर दी। राजा गोरखपूर को भाग गये और दूसरे साल नैपाल की तराई होकर अपने देश को लौटना चाहते थे कि राजा दर्शनसिंह ने समाचार पाकर एक लम्बी दौड़ लगाई और राजा के डेरे पर धावा मार दिया।* राजा अपना प्राण बचा कर भागे। उस दिन आने जाने में ४५ कोस की दौड़ हुई। नैपाल के हाकिम गोसाईं जयकृष्ण पुरी ने सीमा पार करके नैपाल राज में प्रवेश करने के लिये दर्शनसिंह की शिकायत

* Oudh Gazetteer, p. 218.

सूर्यकुण्ड
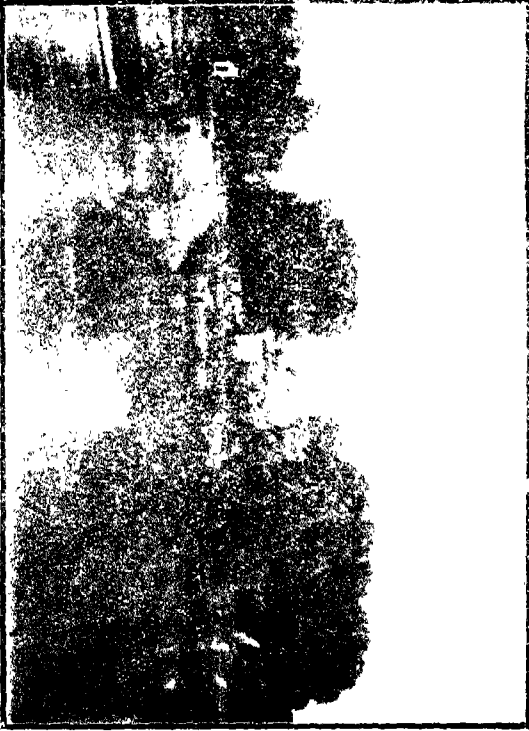
राजा दुर्जन सिंह सरकोबे सरकशाने सल्तनत बहादुर

नैपाल-दर्बार में की। नैपाल के रेज़िडेण्ट ने लखनऊ के रेज़ीडेण्ट को लिख भेजा। बादशाही दर्बार से जवाब लिया गया और यह निर्णय हुआ कि लूट पाट में नैपाल की प्रजा की जो हानि हुई है वह राजा दर्शन सिंह से दिलवा दी जाय। राजा साहब ने हानि का १४५३) तुरन्त दे दिया और फिर अपने काम पर बहाल हुये। बादशाह अमजद अली शाह के समय में जब तक नव्वाब मुनव्वरउद्दौला वज़ीर रहे सारी सल्तनत का प्रबन्ध राजा दर्शनसिंह को सौंपा गया। राजा साहब ने यहाँ तक इक़रार नामा लिख दिया कि सरकारी जमा में जो कुछ बाक़ी रहेगा उसे हम देंगे। इसी समय में उनको कचहरी करने के लिये लालबाग़ दिया गया जहाँ अयोध्या-राज का प्रासाद अब तक विद्यमान है। इसी समय बीमार हो कर अयोध्या चले आये और श्रावण सुदी ७मी को अयोध्यावास लिया। राजा दर्शनसिंह के भाई इच्छासिंह भी सुल्तानपूर, गोंडा और बहराइच के नाज़िम रहे। उनके सबसे छोटे बेटे का नाम रघुबर दयाल था। वह भी १२५३ फ़सली में गोंडा और बहराइच के नाज़िम हुये और उनको राजा रघुबर सिंह बहादुर की उपाधि मिली।

राजा बख़्तावर सिंह और राजा दर्शनसिंह का मिल कर इलाक़ा मोल लेना।

जब राजा बख़्तावर सिंह ने अपने भाइयों को ऊँचे-ऊँचे पद दिलवा दिये तो उनकी यह इच्छा हुई कि अब ज़िमींदारी लेनी चाहिये और उन्होंने अनुमान १५०० गाँव मोल ले लिये और अपने सुप्रबन्ध से प्रजा को प्रसन्न रक्खा। जब मेजर स्लीमन ने सूबे अवध का दौरा किया तो मेहदौना राज की प्रजा की स्मृद्धि देख कर बहुत प्रसन्न हुये जिसका वर्णन उनकी पुस्तक में किया गया है।

जब बादशाह नसीरउद्दीन हैदर का देहान्त हुआ और मेजर लो (Low) रेज़िडेण्ट मुहम्मद अली शाह को तख़्त पर बैठाने के लिये अपने

साथ दरे-दौलत पर लाये, उस समय बादशाह बेगम और मुन्नाजान एक हज़ार हथियारबन्द सिपाहियों को लेकर महल में घुस आये। मुन्नाजान ने कहा कि सलतनत हमारी है और तख़्त पर बैठ कर यह हुक्म दिया कि मुहम्मद अली शाह उसका बेटा अजमदअली शाह और उसके पोते वाजिदअली का बध कर दिया जाय। राजा बख़तावरसिंह ने बड़ी बुद्धिमानी से मुहम्मदअली शाह के परिवार को छिपाया। इतने में मड़िआवँ की छावनी से सेना आ गई। मुन्नाजान और बादशाह बेगम पकड़ लिये गये और मुहम्मदअली शाह तख़्त पर बैठाये गये। मुहम्मद-अली शाह ने बड़ी कृतज्ञता प्रकाश की और नानकार और गाँव और माफ़ी और जागीर देकर उन्हें मेहदौना के राजा की पदवी दी। इसी समय बख़तावर सिंह को वह तलवार दी गई जिसे कि ईरान के बादशाह नादिरशाह ने दिल्ली के बादशाह मुहम्मदअली शाह को उपहार में दिया था और मुहम्मदशाह से नव्वाब सफ़दरजंग ने पाया था।

सर महाराजा मानसिंह बहादुर, के० सी० एस० आई०, क़ायमजंग

राजा दर्शनसिंह के मरने पर सारे राज में गड़बड़ मच गया। जिन ताल्लुकेदारों का राज राजा बख़तावर सिंह ने ले लिया था, सब बिगड़ गये और अपनी-अपनी ज़िमींदारी दबा बैठे। राजा दर्शनसिंह के दो बेटे राजा रामअधीन सिंह, राजा रघुबर सिंह और कुछ और प्रतिष्ठित अधिकारियों ने यह निश्चय किया कि अपना देश छोड़ कर अंग्रेज़ी राज में चले जायँ। जो धन अपने पास है उससे दिन कट जायँगे। उस समय महाराजा मानसिंह जिनका पूरा नाम हनुमानसिंह था, केवल १८ वर्ष के थे। उनकी छोटी अवस्था के कारण उनकी कोई सुनता न था। महाराजा मानसिंह में उत्साह भरा हुआ था। उन्होंने यह सोचा कि बादशाही को छोड़ कर अँग्रेज़ी राज में जाकर रहना, खाना और पाँव फैला कर सोना बनियों का काम है। हमारे पूर्व-पुरुषों

महाराजा सर मानसिंह बहादुर, के० सी० एस० आई०

ने बड़ी वीरता दिखाई जिससे उनको इतनी प्रतिष्ठा मिली। हमको भी चाहिये कि ऐसे राज को न छोड़ें जो लाखों रुपये के व्यय से प्राप्त हुआ है। लोग यही कहेंगे कि राजा दर्शनसिंह के मरने पर उनकी सन्तान में कोई ऐसा न निकला जो राज को सँभालता और अपने घर को देखता भालता। हम लोग ऐसे उत्साहहीन हुये कि बिना लड़े भिड़े अपने बाप दादों की कमाई खो बैठे।"

ऐसा विचार कर के उन्हों ने अपने भाईयों से कहा कि आप लोग अँग्रेजी राज में जायँ, मैं यहीं रहूँगा। उनके पास उस समय न कोश था और न सेना थी। इसीसे बिना पूछे थोड़े से वीरों के साथ निकल पड़े और कुछ विरोधियों से भिड़ गये। इस में उनकी जीत हुई। इस से उनके सारे राज में उनकी धाक बंध गई। उस समय किसी कारण से राजा बख़्तावरसिंह बादशाही में नज़रबन्द थे। महाजन से ३ लाख रुपये लेकर उन्हें भी छुड़ाया और राजा बख़्तावरसिंह फिर दर्बार में पहुँच गये। महाराजा मानसिंह के सुप्रबन्ध का समाचार बादशाह के कानों तक पहुँचा। उस समय सूरजपूर का तालुक़दार बड़ा अत्याचारी था। बादशाह को यह समाचार मिला कि उसने अपनी गढ़ी में ४०० बन्दी बन्द रखे हैं जिनको वह लकड़ी इकट्ठा करके जीते जी भस्म करना चाहता है। बादशाह ने राजा बख़्तावर सिंह से कहा कि अपने भतीजे को इस दुष्ट को दण्ड देने के लिये आज्ञा दो। राजा साहब बड़ी चिन्ता में पड़ गये क्यों कि मानसिंह की उस समय उमर कम थी परन्तु बादशाह की आज्ञा कैसे टल सकती थी। महाराजा मानसिंह ने गुप्तचर भेजे तो विदित हुआ कि सूरजपूर के राजा की गढ़ी में ३ हाते हैं। तीन हज़ार सिपाही हथियारबन्द उपस्थित हैं और ग्यारह तोपें गढ़ी के बुर्जों पर चढ़ी हैं। यह भी निश्चित रूप से विदित हुआ कि परसों सब बन्दी भस्म कर दिये जायँगे। महाराजा साहब ने सोचा कि सेना लेकर चलें तो गढ़ी घिर जायगी परन्तु बन्दी

न बचेंगे। इस कारण तीन सौ वीर योद्धा लेकर कुछ रात रहे गढ़ी के पास पहुँचे और चर भेज कर यह जान लिया कि गढ़ी के एक कोने के पहरेवाले किसी काम से गये हुये हैं। महाराजा मानसिंह ने तुरन्त सीढ़ियाँ लगा कर बिना लड़े-भिड़े तीन सौ वीरों के साथ गढ़ी में प्रवेश किया और बन्दियों को और तोपों को अपने अधिकार में कर लिया। गढ़ी वाले चौंके तो चारों ओर से गोलियाँ चलाने लगे। महाराज मानसिंह ने उन्हीं की तोपें उन पर दागीं और दो घण्टे में गढ़ी टूट गई, और अत्याचारी जीता पकड़ लिया गया। गढ़ी के अन्दर एक जगह लकड़ी का ढेर लगा हुआ था। उस दिन जय की दुन्दुभी न बजती तो सारे बन्दी भस्म कर दिये जाते। बन्दी छोड़ दिये गये। उस राजा की एक गढ़ी और थी जिसमें दो हज़ार सिपाही थे और बहुत सा गोला बारूद और खाने-पीने की सामग्री रक्खी हुई थी। वहाँ ईश्वर की लीला यह हुई कि गढ़ी के रक्षक डर के मारे गढ़ी छोड़ कर भाग गये। बादशाह ने मानसिंह की वीरता से प्रसन्न हो कर उनको राजा मानसिंह बहादुर की उपाधि दी। दूसरा वीरता का काम जो बादशाह की आज्ञा से किया गया सीहीपूर के राजा का दमन था। इसपर महाराजा मानसिंह को क़ायमजंग का पद मिला और एक विलायती तलवार जो ईरान के बादशाह ने बादशाह नसीरउद्दीन हैदर को उपहार में भेजी थी उनको दी गई। उनके पीछे कर्नल स्लीमन साहब के कहने से उन्होंने भूरे खाँ डाकू को पकड़ा जो काले पानी भेजा गया। इसके उपहार में बादशाह ने महाराजा मानसिंह को ग्यारह फ़ैर तोप की सलामी दी। यह पद किसी को प्राप्त न था।

नाज़िमों की सलामी हुआ करती थी परन्तु महाराजा मानसिंह को इस अधिकार के बिना विचारे सलामी मिली। इसके बाद जब वाजिद-अली शाह बादशाह हुये तो अजब सिंह डाकू के मारने पर महाराजा मानसिंह को झालरदार शमला और ताज के आकार की टोपी मिली। जगन्नाथ चपरासी भी बड़ा प्रबल डाकू था। उसके साथ छः सात सौ

डाकू रहा करते थे। गाँवों को लूट लेता था और इस पर भी सन्तोष न करके सैकड़ों स्त्री पुरुषों को पकड़ ले जाता और बन्दूक़ के गज़ लाल करा के उनको दगवाता और उनके इष्ट बन्धुओं से बहुत सा धन लेकर उन्हें छोड़ता था। इसी अवसर पर महाराजा साहेब को एक हवादार भी मिला। तब से हवादार पर सवार हो कर बादशाही ड्योढ़ी तक जाते थे। इस डाकू के पकड़ने में महाराज मानसिंह ने बड़ी वीरता दिखाई थी। अकेले उसको पकड़ने के लिये पहुँचे। उसने कड़ाबीन सर की। वीर महाराज ने लपक कर उसका हाथ उठा दिया। गोलियाँ उनके ऊपर से निकल गईं और डाकू पकड़ लिया गया।

जब राजा बख़्तावरसिंह बूढ़े हो गये तो उन्होंने महाराजा मानसिंह को लखनऊ बुलाया और अपना पद, अपना राजा, उनके नाम लिख कर बादशाही सरकार में अर्ज़ी दे दी। अर्ज़ी मंजूर हो गई। तब से राज-प्रबन्ध महाराज मानसिंह करने लगे। १२५३ फ़सली में राजा रामाधीन सिंह के ऊपर ५१९२१=)॥। की बाक़ी थी उसे भी महाराज मानसिंह ने ख़ज़ाने में जमा करके रामाधीन सिंह का हिस्सा अपने नाम करा लिया। राजा बख़्तावर सिंह का इस्वी सन् १८४६ में स्वर्गवास हो गया।

इसके कई वर्ष पीछे जब हनुमान गढ़ी का झगड़ा उठा तो बादशाह ने महाराजा मानसिंह से कहा कि यहाँ तुम हिन्दुओं के सरदार हो। जैसे तुमसे बने इस झगड़े को निपटा दो। इस झगड़े का विवरण अध्याय १४ में दिया हुआ है। इस मामले की जाँच में मुसलमानों ने एक फ़रमान पेश किया था जिसमें लिखा था कि हनुमान गढ़ी के भीतर एक मसजिद है। महाराजा साहब को एक चर से यह समाचार मिला कि यह फ़रमान अवध के काज़ी का बनाया हुआ है और उसके पास दिल्ली के बादशाह नव्वाब शुजाउद्दौला आदि की मुहरें हैं। महराजा साहब ने काज़ी के घर की तलाशी ली तो दिल्ली के बादशाहों, नव्वाब शुजाउद्दौला, नव्वाब आसफ़उद्दौला, नव्वाब सआदतअली खाँ और कई नाज़िमों की मुहरें

निकलीं। उन मुहरों को महाराज मानसिंह ने आर् साहब को सौंप दिया। आर् साहब ने उन मुहरों को देखा तो बनावटी फ़रमान पर उन्हीं में की कुछ मुहरें लगी थीं। आर् साहब ने उन मुहरों को बादशाही दर्बार में भेज दिया। इस कारगुज़ारी के बदले बादशाह ने राजा मानसिंह को राजे-राजगान का पद दिया। इसके कुछ दिन पीछे लखनऊ की बादशाही का अन्त हो गया और अंगरेज़ी राज स्थापित हुआ।

ग़दर हो जाने पर फ़ैज़ाबाद में दो पल्टनें, एक रिसाला और दो तोपखाने बाग़ियों के हाथ में रहे और सुल्तानपूर की पल्टन भी उनसे मिलने आ रही थी। महाराजा मानसिंह के पास कोई सामान न था तो भी उन्होंने अपना धन और अपना प्राण अंग्रेज़ों को निछावर करके फ़ैज़ाबाद के तीस अंग्रेज़ों मेमों और बच्चों समेत अपने शाहगंज के क़िले में सुरक्षित रक्खा और आप विद्रोहियों का सामना करने के के लिये डटे रहे। फिर उनको अपने सिपाहियों की रक्षा में गोला गोपालपूर पहुँचा दिया। इसी अवसर में चार मेमें और आठ अंग्रेज़ी बच्चे घाघरे के मांझा में बिना अन्न-जल मारे-मारे फिरते थे। महाराजा साहब ने सवारियाँ भेज कर उन्हें बुला लिया और पन्द्रह दिन तक अपने घर में रक्खा और फिर उनके कहने पर सौ कहार और ३६ पालकी कर के उनको आसबर्न साहब के पास बस्ती भेज दिया। इस पर लारेन्स साहब बहादुर ने उनको दो लाख रुपया और जागीर देकर महाराजा का पद दिया और यह भी कहा कि महाराज के वक़ील को अवध में ज़मींदारी दी जायगी।

इसी समय बाग़ियों ने शाहगंज की गढ़ी घेर ली और महाराजा साहब के लाखों रुपये के मकान खोद डाले और जला दिये और बहुत सा धन लूट ले गये। परन्तु डेढ़ महीने के घेरे पर बड़ी वीरता से महाराजा साहब ने विद्रोहियों को मार भगाया। इसी अवसर पर राजा रघुवीर सिंह के घर का बहुत सा सामान जो अयोध्या में लाला ठाकुर प्रसाद * के घर

* राज के वकील और मेरी स्त्री के चाचा।

पर धनवावाँ से भेज दिया गया था विद्रोही लूट ले गये। इसके कुछ दिन पीछे नानपारे के मैदान में पन्द्रह हज़ार बाग़ी इकट्ठा हुये। महाराजा साहब बरगदिया के मैदान में बड़ी वीरता से उनसे भिड़ गये। उस समय गोरों की पल्टन भी आ गई थी परन्तु वह हट गई। केवल तीन तोपख़ाने महाराजा मानसिंह के साथ रहे। एक ही घण्टे के युद्ध में बाग़ी भाग गये।

महाराजा मानसिंह को अंग्रेज़ी सरकार की खैरख्वाही करने पर भी अपने देश की भलाई का विचार रहा जिसका प्रमाण एक परवाना हमारे पास है जो उन्होंने लाला ठाकुरप्रसाद को लिखा था। उसका सारांश यह है :—

"मित्रवर लाला ठाकुरप्रसाद जी। प्रकट है कि आज-कल लखनऊ ख़ास में सरकारी अमलदारी हो गई है और विद्रोह के कारण हज़ारों आदमी मारे जा रहे हैं। लखनऊ का झगड़ा हमको विदित है इस लिये तुमको लिखा जाता है कि पत्र के पाते ही हज़ार काम छोड़ कर इस काम को प्रधान मान कर हाकिमों के पास जाकर विनती करके हमको सूचना दो . . . सफलता होने पर तुम्हारी सन्तान का पालन पीढ़ी दर पीढ़ी होगा।"

महाराजा मानसिंह को इन खैरख्वाहियों के बदले गोंडा जिले का तालुक़ा विशम्भरपूर उपहार में दिया गया और सात हज़ार रुपये की खिलत मिली और महाराजा की पदवी दी गई। उस सनद की प्रतिलिपि हमारे पास अब तक रक्खी है।

महाराजा मानसिंह का ११ अक्टूबर सन् १८७० ई० को स्वर्गवास हो गया। महाराजा साहब वीर होने के अतिरिक्त बड़े राजनीतिज्ञ और बड़े विद्वान और गुणग्राहक थे। उनके दरबार में पंडित प्रवीन आदि अनेक अच्छे कवि थे और आप द्विजदेव उपनाम से कविता करते थे। उनकी रची शृङ्गारलतिका नायिकाभेद का उत्तम ग्रन्थ है। स्वर्गवासी

महाराज ने एक वसियतनामा लिखकर एक सन्दूक़चे में बन्द कर दिया था। वह सन्दूक़चा फैज़ाबाद के हाकिमों ने खोला तो उसमें लिखा था कि हमारे मरने पर हमारी विधवा महारानी सुभाव कुँवरि उत्तराधिकारिणी होगी। महारानी सहिबा ने उसी वसियतनामे के अधिकार से राजा रघुवीरसिंह के कनिष्ठ पुत्र लाल त्रिलोकीनाथ सिंह को गोद ले लिया। महाराजा मानसिंह के केवल एक बेटी श्रीमती व्रजविलास कुँवरि उपनाम बच्ची साहिबा थीं जिनका विवाह आरे के रईस बाबू नरसिंह नारायण जी के साथ हुआ था। उन्हीं के पुत्र लाल प्रताप नारायण सिंह हुये जो ददुआ साहब के नाम से प्रसिद्ध थे।

लाल प्रतापनारायण सिंह ने अदालत में दावा कर दिया कि महाराजा मानसिंह के उत्तराधिकारी हम हैं। इस पर कई वर्ष तक मुक़द्दमा चला। अन्त को सन् १८८७ में प्रिवी कौंसिल से उनको डिग्री हो गई और वे मेहदौना राज के मालिक हो गये।

महाराजा प्रतापनारायण सिंह ने बीस वर्ष राज किया। इनका समय विद्याव्यसन में बीतता था। इमारत बनवाने का बड़ा शौक़ था। अयोध्या का राजसदन और उसके भीतर कोठी मुक्ताभास उनकी सुरुचि और कारीगरी के अच्छे नमूने हैं। उनके सुप्रबन्ध से प्रसन्न होकर अंग्रेज़ी सरकार ने उनको महाराज अयोध्या (अयोध्यानरेश) की पदवी दी। विद्वत्ता के कारण उनको महामहोपाध्याय का पद मिला। महाराजा अनेक बार बड़े लाट की कौंसिल के सदस्य हुये और अपना काम बड़ी योग्यता से किया। उनके दरबार में विद्वानों की बड़ी प्रतिष्ठा होती थी। इस इतिहास के लेखक पर उनकी विशेष कृपा थी। उनके नायब राय राघवप्रसाद की भगिनी जिसका परसाल त्रिवेणी-वास हो गया इतिहास लेखक को ब्याही थी। इस कारण भी दरबार में विशेष मान था। महाराज प्रतापनारायण सिंह ने राय साहब के देहान्त होने पर मुझसे अनेक बार कहा कि अपने घर का काम देखो।

महाराजा त्रिलोकीनाथ सिंह

महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रतापनारायण सिंह बहादुर,
के० सी० आई० ई०, अयोध्या नरेश

परन्तु मेरे भाग्य में न था कि उनकी सेवा करता। पेंशन की प्रतीक्षा करता रहा। इतने में गुणग्राही महाराजा साहेब ने अयोध्यावास लिया। महाराजा साहेब का रचा हुआ रसकुसुमाकर ग्रन्थ उनके साहित्या-ज्ञान का नमूना है।

महामहोपाध्याय सर महाराजा प्रतापनारायण बहादुर के० सी० आई० ई० के देहावसान पर उनकी दूसरी पत्नी श्रीमती महारानी जगदम्बा देवी उनकी उत्तराधिकारिणी हुईं। उन्होंने महाराज के वसियतनामे के " रू " से राजा इंछासिंह के कुल से लाल जगदम्बिका प्रतापसिंह को गोद लिया परन्तु महारानी साहेब के जीते जी वे केवल नाममात्र के राजा हैं।

सोलहवाँ अध्याय।

अङ्गरेज़ी राज में अयोध्या।

हम ऊपर लिख चुके कि मुसलमान राज्य में अयोध्या अधिकांश मुसलमानों का निवास हो गया था और सरयूतट पर लक्ष्मण घाट से चक्रतीर्थ तक मुसलमानों के महल्ले अब तक विद्यमान हैं। नवाब वज़ीरों के शासनकाल में न केवल राज्य के ऊँचे अधिकारियों को ही नहीं वरन् बाहर के राजा लोगों को भी अयोध्या में मन्दिर बनाने का अधिकार मिल गया था। अंग्रेजी राज्य के आते ही मुसलमानों की प्रतिष्ठा घट गई और यद्यपि आज कल कभी कभी उनके कारण उपद्रव खड़ा होता है परन्तु अब वे अधिकांश दरिद्र हैं और दूकानदारी करके जीविका निर्वाह करते हैं। इसके प्रतिकूल हमारी ६० वर्ष की याद में अयोध्या में बड़ा परिवर्तन हो गया है। इसमें सन्देह नहीं कि अत्यन्त प्राचीन नगर होने के कारण यहाँ मनुष्य जीवन की प्राकृतिक सामग्री कुछ घट सी गई है और गृहस्थ यहाँ पनपते ही नहीं। कोई उद्योग धन्धा न होने से यहाँ के निवासी और और नगरों में जाकर बसे हैं और बड़े बड़े ऊँचे मकान खुद कर उनकी जगह मन्दिर बनते चले आते हैं। सरकार अंग्रेजी के प्रबन्ध में सकड़ी गलियाँ चौड़ी कर दी गईं और पक्की सड़कें बनाई गई हैं और यात्रियों के सुख के लिये कोई बात उठा नहीं रक्खी गई। रेल निकल जाने से यात्रा में बड़ी सुगमता हो गई है और भारतवर्ष के कोने कोने से लाखों यात्री रामनवमी, झूलन और कतकी के मेलों में आते हैं। भारतवर्ष के और प्रान्तों के राजा महाराजाओं ने बड़े-बड़े मन्दिर बनवा दिये और प्रतिवर्ष अनेक मन्दिर बनते चले आते हैं। महाराज अयोध्या के प्रासाद दर्शनेश्वर और राजराजेश्वर के मन्दिर इस नगर के समुज्ज्वल रत्न हैं। परन्तु केवल धनाढ्य ही नहीं मन्दिर धर्मशाला बनवाने में दत्तचित्त हैं।

अयोध्या का एक दृश्य

फैज़ाबाद के कायस्थों ने धर्महरि के पुराने मन्दिर के स्थान पर एक बड़ी धर्मशाला बनवा दी है। गड़रियों और अछूतों ने भी मन्दिर और धर्मशाला बनवाई है।

आजकल अयोध्या मन्दिरों का नगर है और जबतक हिन्दुओं में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के प्रति श्रद्धा और भक्ति रहेगी अयोध्या उत्तर भारत की धार्मिक राजधानी रहेगी।

आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस स्थान का शासन ऐसे हाकिमों के हाथ में रहे जो पक्षपातरहित होकर सनातन धर्मियों से सहानुभूति रक्खें।

उपसंहार (क)

अयोध्या के सोलङ्की राजा

सोलङ्की जिन्हें दक्षिण में चालूक्य और चौलूक्य कहते हैं साधारणतः अग्निकुल कहलाते हैं जिनकी उत्पत्ति आबू पर्वत पर वसिष्ठ के अग्निकुण्ड से हुई थी। परन्तु रायबहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपने सिरोहीराज के इतिहास में लिखा है कि सोलङ्की अयोध्या से पहिले दक्षिण को गये और इसके प्रमाण में हमारा ध्यान एक संस्कृत और पुराने कनाडी दानपत्र पर आकर्षित किया है जो इंडियन ऐन्टीकेरी में छपा है। यह दानपत्र शाका ९४४ (ई० सन् १०२२–२३) के पीछे का है। और इसका दाता राज-राज द्वितीय है जिसका उपनाम विष्णुवर्द्धन भी था। राज-राज द्वितीय भाद्र मास की कृष्ण द्वितीया को बृहस्पति के दिन सिंहासन पर बैठा जब कि सूर्य सिंहराशि में था। इस दानपत्र में राजा राजराज ने गुड्डवाड़ी विषय में कोरू मिल्ली गाँव भारद्वाज गोत्र और आपस्तम्ब सूत्र के ब्राह्मण चीड़मार्य को दान किया था। हम आगे उस दानपत्र के कुछ श्लोक उद्धृत करते हैं।

ॐ० श्रीधाम्नः पुरुषोत्तमस्य महतो नारायस्यप्रभो।
नाभीपङ्करुहाद्बभूव जगतः स्रष्टा स्वयंभूस्ततः॥
जज्ञे मानस सूनु रत्रिरिति यः तस्मान्मुने रत्रितः।
सोमो वंशकरस् सुधांशुरुदितः श्रीकंठ चूड़ामणिः॥
तस्मादासीत् सुधासूते र्बुधो बुधनुतस्ततः।
जातः पुरूरवा नाम चक्रवर्त्ती सविक्रमः॥

---

* Indian Antiquary, Vol. XIV, pp. 50 55.

तस्माद्वायुरयुषो नहुषः ततो य (या) तिश्चक्र-
वर्त्ती वंशकर्त्ता ततः पूरुरिति चक्रवर्त्ती।
ततो जन्मेजयोऽश्वमेध * त्रितयस्य कर्त्ता,
ततः प्राचिश† स्तस्मात् सैन्ययातिः ‡ ततो।
हयपति (:) ततस्सार्वभो (भौ) मस्ततो,
जयसेनः ततो महाभौमः तस्माद्देशानकः।
ततः क्रोधाननः ततो देवकिः देवके रिभुकः,
तस्माद् ऋत्तकः। ततो मतिवर § स्सत्रयाग।
याजी सरस्वतीनदीनाथः ततः कात्याय-
नः कात्यायनान्नीलः ततो दुष्यन्तः तत।
आर्यो गङ्गायमुनातीरे यद् विम्ब्छन्नान्नि खाय,
यूपान् क्रमशः कृत्वा तथाश्व मेधा (ध्व) नामा।
महाकर्म भरत इनि यो लभत। ततो भरताद्भू-
मान्युः तस्मात् सुहोत्रः ततो || हस्ती ततो।
विरोचनः तस्मादजामिलः ततस्संवरणः,
तस्य च तपनसुताया तपत्याश्च सुधन्वा।
ततः परीक्षित् ततो भीमसेनः ततः प्रदी-
पनः तस्माच्छान्तनुः ततो विचित्रवीर्यः।
ततः: पाण्डुराजः ततः आर्यापुत्रास्तस्य,
धर्मराज भीमार्जुन नकुल सहदेवाः पञ्चेन्द्रियवत्।

---

* जन्मेजय प्रथम।

† प्राचिन्वत और वंशावली के अनुसार।

‡ आगे के अनेक नाम और वंशावलियों में नहीं हैं।

§ मतिनर।

|| अभिमन्यु की जगह भूमन्यु कहीं कहीं है।

पञ्चस्युर्विषयग्रहिण स्तत्र,*
येनादाहि विजित्य खाण्डव मठे गाण्डीविना वज्रिणम् ।
युद्धेपाशुपतास्त्र मन्धकरिपोश्चालाभि दैत्यान्बहून् ,
इन्द्रार्द्धासनमभ्यरोहि जयिना यत् कालिकेयादिकान् ।
हत्वास्वैरमकारि वंशविपिनच्छेदः कुरूणां विभोः,
ततोऽर्जुनादभिमन्युः तत परीक्षितः ततो जन्मेजयः ।
ततः क्षेमकः ततो नरवाहनः ततः शतानीकः तस्मादुदयनः ,
ततः परम् तत् प्रभृतिष्वविच्छिन्न संतानेष्वयो ।
ध्या सिंहासनमासीनेष्व एकादूनषष्टि चक्रवर्तिषु,
तद्वंश्यो विजयादित्यो नाम राजा प्रविजिगीषया ।
दक्षिणापथं गत्वा† त्रिलोचनपल्लवमधिक्षिप्य ,
दैव दुरीहया लोकान्तरमगमत् । . . . .

❀ ❀ ❀

अपिच् सूर्यान्यये सुरपति प्रतिमः प्रभावैः,
श्री राजराज इतियो जगतिव्यराजत् ।
नाथः समस्त नरनाथकिरीट कोटि-
रत्नप्रभा पटलपाटलपादपीठः ।

(अनुवाद)

"श्रीधाम पुरुषोत्तम नारायण के नाभी कमल से स्वयंभू ब्रह्मा का जन्म हुआ। उनसे मानस पुत्र अत्रि जन्मे । उन मुनि से चन्द्र की उत्पत्ति हुई जिससे चन्द्रवंश चला । उस अमृत के उत्पन्न करनेवाले चन्द्र से बुध हुआ, जिसे देवता नमस्कार करते हैं । उससे चक्रवर्ती वीर पुरूरवा का जन्म हुआ । उसका बेटा आयुष, उसका नहुष्, उससे चक्रवर्ती ययाति हुआ जिससे अनेक वंश चले । उससे पूरु चक्रवर्ती हुआ । उसका बेटा

---

* इस वंशावली में वंश के राजाओं का क्रम सूचित नहीं होता ।

† सूर्यवंशी दक्षिण में कब गये इसका पता नहीं लगता ।

जन्मेजय हुआ जिसने तीन अश्वमेध यज्ञ किये, उससे प्राविश, उससे सैन्ययाति, उससे हयपति, उससे सार्वभौम, उससे जयसेन, उससे महाभौम, उससे देशानक हुआ। उससे क्रोधानन, उससे देवकि, उससे त्ररभुक, उससे त्ररक्षक, उससे सत्रयाग करनेवाला मतिवर, जो सरस्वती नदी का स्वामी था, उससे कात्यायन हुआ। कात्यायन से नील, नील से दुष्यन्त हुआ। उसका पुत्र भरत हुआ जिसने गंगा यमुना के किनारे अविच्छिन्न यूप गाड़ कर यज्ञ किये। भरत से भूमान्यु, उससे सुहोत्र उससे हस्ति हुआ। उससे विरोचन, उससे अजामिल, उससे संवरण, उससे और तपन की बेटी तपनी से सुधन्वा, उससे परीक्षित उससे भीमसेन, उससे प्रदीपन, उससे शान्तनु, उससे विचित्रवीर्य हुआ। उससे पाण्डुराज, उससे धर्मराज भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, पाँच इन्द्रियों के समान पाँच विषयों* के ग्रहण करनेवाले हुये।

गांडीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुन ने खाण्डव बन जला दिया, और अन्धक रिपु इन्द्र से पाशुपत अस्त्र पाकर बहुत से दैत्य मारे, और इन्द्र के साथ आधे आसन पर बैठा जिसने कालिकेय आदि को जीतकर कौरवों का वंश नष्ट कर दिया।

अर्जुन का बेटा अभिमन्यु हुआ, अभिमन्यु का परीक्षित, परीक्षित से जन्मेजय, उससे क्षेमक, उससे नरवाहन, उससे शतानीक, उससे उदयन। "उसके पीछे उसकी अविच्छिन्न सन्तान एक कम साठ पीढ़ी तक अयोध्या के सिंहासन पर विराजी। उसी कुल का विजयादित्य नाम राजा दिग्विजय की इच्छा से दक्षिणापथ को गया, वहाँ उसने त्रिलोचन पल्लव पर चढ़ाई की और मारा गया . . .।"

इसके बाद दानपत्र में लिखा है कि विजयादित्य की रानी के गर्भ था। रानी की एक ब्राह्मण ने रक्षा की, पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़े होने

* विषय का अर्थ देश का एक भाग भी है।

पर पुत्र ने जिसका नाम विष्णुवर्द्धन था। कदंबों और गाङ्गों को जीत लिया, और नर्मदा से सेतु तक का राजा बन बैठा। इसके बाद विमलादित्य तक पूर्वीय चालुक्य राजाओं के नाम गिनाये गये हैं।

तब सूर्यवंशी राज राजप्रभाव में इन्द्र के समान पृथिवी पर राजा हुआ जिसके पाद पीठ पर सारे राजाओं के मुकुटों के रत्नों की ज्योति पड़ती थी।

उसका बेटा बड़ा प्रतापी राजेन्द्र चोल था। राजेन्द्र चोल की बहिन विमलादित्य को ब्याही थी।

इससे निकलता है कि चोलराजा सूर्यवंशी थे। इस दानपत्र में सोलंकियों को ५९ पीढ़ी तक अयोध्या में राज करना लिखा है।

इसकी पुष्टि बिल्हणकृत विक्रमाङ्कदेवचरित के निम्नलिखित श्लोकों से होती है।

प्रसाध्य तं रावणमध्युवास यां मैथिलीशः कुलराजधानीम्।
ते क्षत्रिया स्तामवदातकीर्तिं पुरीमयोध्यां विदधुर्निवासम्॥
जिगीषवः कोपि विजित्य विश्वं विलास दीक्षा रसिकाः क्रमेण।
चक्रुः पदं नागरखंडचुम्बि पूगद्रुमायां दिशि दक्षिणस्याम्॥

"जिस अयोध्यापुरी को सँवार कर श्री रामचन्द्र जी रावण को मारकर रहे थे उसी में (चालुक्य) क्षत्रिय जा कर बसे। वहाँ एक पुरुष विश्व को जीत कर दक्षिण देश में आये।"

परन्तु इन लेखों से यह पता नहीं चलता कि अयोध्या में सोलङ्की राज कब रहा। इसकी जाँच आगे की खोज से विद्वान् कर सकेंगे। इसी से हमने यह प्रसंग उपसंहार में रख दिया है।

उपसंहार (ख)

सूर्यवंश

दिष्ट-वंश

१ मनु
२ इक्ष्वाकु
३ दिष्ट या नेदिष्ट
४ नाभाग
५ भलन्दन
६ वत्सप्री
७ प्रांशु
८ प्रजानि
९ खनित्र
१० क्षुप
११ विंश
१२ विविंश
१३ खनिनेत्र
१४ करन्धम
१५ अवीक्षित
१६ मरुत्त *
१७ नारिष्यन्त

---

* शतपथ ब्राह्मण १३, ५, ४६ में लिखा है कि विशाल से पहिले यहाँ अयोगव राजा मरुत्त राज करता था। मनुस्मृति में अयोगव उसे कहते हैं जो शूद्र पुरुष और वैश्य पत्नी से उत्पन्न हो,

शूद्रादयोगवः क्षत्ता चाण्डालश्चाधमो नृणाम्।
वैश्य राजन्य विप्रासु जायन्ते वर्णसंकराः॥

१८ दम
१९ राज्यवर्द्धन
२० सुधृति
२१ नर
२२ केवल
२३ बन्धुमत्
२४ वेगवत्
२५ बुद्ध
२६ तृणविन्दु
२७ विशाल
२८ हेमचन्द्र
२९ सुचन्द्र
३० धूम्राश्व
३१ सृञ्जय
३२ सहदेव
३३ कृशाश्व (कुशाश्व वा० रा०)
३४ सोमदत्त
३५ जन्मेजय (काकुत्स्थ वा० रा०)
३६ प्रमति या सुमति (अयोध्या के दशरथ का समकालीन)

वा० रा० के अनुसार राजा विशाल इक्ष्वाकु और अलंबुषा के पुत्र थे, * और इन्होंने विशाला नगरी बसाई थी।

जब विश्वामित्र राम लक्ष्मण को साथ लिये हुये महाराज जनक के यज्ञवाट को जाते थे तो एक रात विशाला में रहे थे और राजा सुमति उनकी पहुनाई की थी।

---

* बालकाण्ड, ४७।

उपसंहार (ग)

सूर्यवंश

विदेह-शाखा

१ मनु
२ इक्ष्वाकु
३ निमि
४ मिथि-जनक *
५ उदावसु
६ नन्दिवर्द्धन
७ सुकेतु
८ देवरात
९ बृहदुक्थ (बृहद्रथ, वा० रा०)
१० महावीर्य (महावीर, वा० रा०)
११ सुधृति
१२ धृष्टकेतु
१३ हर्यश्व
१४ मरु
१५ प्रतीन्धक
१६ कृतिरथ (कीर्तिरथ, वा० रा०)
१७ देवमीढ
१८ विबुध
१९ महाधृति (महाध्रक, वा० रा०)
२० कृतिरात (कीर्तिरात, वा० रा०)

---

* वा० रा० अध्याय ७१ में जनक मिथि का बेटा है।

२१ महारोमन्
२२ स्वर्ण रोमन्
२३ ह्रस्वरोमन्
२४ सीरध्वज (अयोध्या के दशरथ के समकालीन)
२५ भानुमत्
२६ शतद्युम्न
२७ शुचि
२८ उर्ज्जवह
२९ सनद्वाय
३० कुनि
३१ अञ्जन
३२ कुलजित् (ऋतुजित)
३३ अरिष्टनेमि
३४ श्रुतायुष्
३५ सूर्याश्व
३६ संजय
३७ क्षेमारि
३८ अनेनस
३९ समरथ (मीनरथ)
४० सत्यरथ
४१ सत्यरथि
४२ उपगुरु
४३ उपगुप्त
४४ स्वागत
४५ स्वनर
४६ सुवर्चस

४७ सुभास
४८ सुश्रुत
४९ जय
५० विजय
५१ ऋत
५२ सुतय
५३ वीतहव्य
५४ धृति
५५ वहुलाश्व
५६ कृति

महाभारत के पीछे इस राजवंश का पता नहीं लगता। इस राजवंश में इन दो राजाओं के नाम प्रसिद्ध हैं।

१ मिथि—श्रीमद्भागवतपुराण में लिखा है कि राजा मिथि ने यज्ञ आरम्भ करके वसिष्ठ को ऋत्विक् बनाया। वसिष्ठ ने कहा कि इन्द्र हमको वरण कर चुके हैं, जब तक उनका यज्ञ पूरा न हो जाय तुम ठहरे रहो। निमि ने कुछ न कहा और वसिष्ठ इन्द्र का यज्ञ कराने लगे। निमि ने वसिष्ठ की राह न देख कर दूसरे पुरोहित को बुला लिया, और यज्ञ करने लगे। इन्द्र का यज्ञ समाप्त करके वसिष्ठ जी लौटे तो निमि पर बहुत बिगड़े और उनको शाप दिया कि तुम्हारी देह पतित हो जाय। राजा ने भी उनको शाप दिया, और कहा तुमने लोभ के मारे धर्म का विचार नहीं किया। राजा और गुरु दोनों ने शरीर छोड़े। वसिष्ठ तो फिर उर्वशी के गर्भ से जन्मे और निमि की देह को मुनियों ने गन्ध-द्रव्य में रख दिया, और यज्ञ समाप्त होने पर देवताओं से कहने लगे कि आप लोग कहें तो निमि जिला दिये जाँय। निमि बोल उठे कि मैं अब देह के जंजाल में न फँसूँगा। देवताओं ने कहा अब यह विदेह होकर

सब के नेत्रों में वास करें और उन्मेष निमेष रूप से प्रकट होने लगें। फिर मुनियों ने निमि के देह को मथा। उसमें से एक सुकुमार पुरुष उत्पन्न हुआ। इस असाधारण रीति से जन्म होने के कारण उसका नाम जनक विदेह हुआ। उसने मिथिला नगरी बसाई।

हमें यह कथा मिथिला शब्द की उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए गढ़ी हुई जान पड़ती है। महाभाष्य में मिथिला शब्द की उत्पत्ति यों दी हुई है:—

मथ्यन्ते रिपवो मिथिला नगरी।

मिथिला जिसमें बैरी मथ डाले जायँ। मिथिला भी इक्ष्वाकु के एक पुत्र की बसाई हुई है। ज्येष्ठ पुत्र की राजधानी अयोध्या थी, उसी की जोड़ का यह नाम रक्खा हुआ प्रतीत होता है।

ह्रस्वरोमन के दो बेटे थे, सीरध्वज और कुशध्वज। सीरध्वज का स्पष्ट अर्थ है जिसकी ध्वजा में सीर अर्थात् हल का चिह्न हो परन्तु श्रीमद्भागवत में लिखा है कि राजा ह्रस्वरोमन यज्ञ करने के निमित्त हल चलाते थे, इसी से पुत्र जन्मा जिसका नाम सीरध्वज रक्खा गया। श्रीमद्‌भागवत में कुशध्वज सीरध्वज का बेटा है।

२ सीरध्वज—यह बड़े नामी पुरुष थे और इनके गुरु याज्ञवल्क्य थे। इनके यहां शिवजी का धनुष पूजा जाता था। इनके दो बेटियां थीं, एक श्री सीताजी जिनका जन्म यज्ञभूमि में हुआ था, और दूसरी ऊर्मिला। सीरध्वज ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो वीर पुरुष इस धनुष को तोड़ दे उसी के साथ सीता का ब्याह हो। धनुष तोड़ कर सीता जी को बरने के लिए बड़े बड़े वीर आये, परन्तु सब अपना सा मुँह ले कर लौट गये। मध्यदेश में सांकास्य एक राज्य था जिसकी जगह अब फ़र्रुखाबाद जिले में संकिस्सा बसन्तपुर नाम एक गाँव बसा हुआ है। उन दिनों इसका राजा सुधन्वा था। सुधन्वा ने राजा सीरध्वज से

कहला भेजा कि धनुष और सीता दोनों हमें दे दो। सीरध्वज ने न माना। इसपर सुधन्वा ने मिथिला पर चढ़ाई कर दी। सीरध्वज ने उसको मार कर उसका राज्य अपने छोटे भाई कुशध्वज को दे दिया। कुशध्वज की दो बेटियां मांडवी और श्रुतिकीर्ति श्रीरामचन्द्र जी के छोटे भाई भरत और शत्रुघ्न को ब्याही थीं।

उपसंहार (घ)।

रघु का दिग्विजय।

महाराज रघु बड़े प्रतापी राजा थे। उन्हीं से रघुवंश चला। उनके दिग्विजय का विवरण रघुवंश के चौथे सर्ग में दिया हुआ है। हम उसके पद्यात्मक अनुवाद से मुख्य अंश उद्धृत करते हैं।*

पूर्व देस जीतत नृप वीरा।
पहुँच्यो महासिन्धु के तीरा॥
घनताली-बन बस जो ठामा।
चहुँ दिसि छवि पावत अति श्यामा॥
जर सन अरिहि उखारत जोई।
तेहि लखि सुह्म बेत सम होई॥
काँपत रिपुगन सीस झुकाई।
रघु-सरि सुन निज जाति बचाई॥
लड़त नाव चढ़ि बङ्गनिवासी।
तासु शक्ति निज भुजबल नासी॥
गंगा-स्रोत द्वीप महँ जाई।
गाड़े निज जयखंभ सुहाई॥

❀ ❀ ❀ ❀

चलत बाँधि मग महँ गज-सेतू।
सेना सहित भानुकुल-केतू॥
कपिशा उतरि कलिंगहि आवा।
उत्कलनृप तेहि पंथ बतावा॥

---

* रघुवंश-भाषा, लाला सीताराम कृत, सर्ग ४।

चढ़ि गज सरिस महेन्द्र पहाड़ा ।
निज प्रताप अंकुस तहँ गाड़ा ॥
लै गज-यूथन अस्त्र चलाई ।
मिल्यो कलिंग-भूप तेहि आई ॥

❀ ❀ ❀ ❀

सुलभ जानि जिन जीति न मांगी ।
महा सिन्धु तीरहि तहँ लागी ॥
पूग वृक्ष जहँ सोह विशाला ।
गयो अगस्त्य दिशा नरपाला ॥

❀ ❀ ❀ ❀

भई कावेरी महँ सोई देखी ।
संका सरिपति-चित्त बिसेखी ॥
चलि भड़काइ मरीच विहंगा ।
परी मलयगिरि तट चतुरंगा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

पै रविकुल शशि तेज अनूपा ।
नहि सहि सक्यो पाण्ड्य-कुल भूपा ॥
मिलत सिन्धु जहँ ताम्रपर्णि सरि ।
तहँ नृपविनय सहित रघुपद परि ॥
मानहुँ निज जस संचित कीन्हा ।
तहँ उपजत मोती तेहि दीन्हा ॥
चल्यो नरेश शत्रुबल-कन्दन ।
लगे जासु ऊपर बहु चन्दन ॥
दर्दुर मलय नाम गिरि दोई ।
दिसि के कुचन बीच जनु होई ॥

दुसह अग्नि कहँ जासु प्रकासू ।
सो नृप तज्यो सिन्धु-तट तासू ॥
महि-नितम्ब सम वस्त्र बिहाये ।
सोइ गिरि सह्य निकट चलि आये ॥
पश्चिम दिसि नृप जीतन काजा ।
चलत अवध-नृप सहित समाजा ॥
परस राम बस सिन्धु हटावा ।
लग्यो मनहुं गिरितट फिरि आवा ॥
निरखि ताहि केरल-पुरनारी ।
भूषन दिये त्रास बस डारी ॥

❀ ❀ ❀ ❀

चलि मुरलासरि मारुत संगा ।
परि मुरि दलबीरन के अंगा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

मांगे रहन हेत कछु ठामा ।
महासिंधु सन पायो रामा ॥
अपरान्तक नृप मिस सोइ सागर ।
अवध-नरेस रघुहि दीन्हो कर ॥
करि गज-दसन छिद्र जयचीन्हा ।
निज जय खम्भ त्रिकूटहि कीन्हा ॥*
पुनि पारस जीतन थल राहा ।
चल्यो सेन संग कोसलनाहा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

* त्रिकूट लंका में था। समझ में नहीं आता कि पाण्ड्य देश से रघु लंका क्यों न गये ।

पश्चिम दिसि सोई यवनन संगा।
चलत युद्ध महँ चढ़े तुरंगा ॥
बिपुल धूरि सुनि धनु-टंकारा।
तासु घोर रन लोग बिचारा ॥
तासु वीर तहँ मालन मारी।
दाढ़ी लसत सीस महि डारी ॥

❀ ❀ ❀ ❀

चहुँदिसि लसत दाख तरु जाके।
चाम बिछाइ सूर रनबाँके ॥
करत पान बारुनी सुबासा।
कीन्हों बैठि समरश्रम नासा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

तजि दच्छिन सोई भानु समाना।
दिसि कुबेर कहँ कीन्ह पयाना ॥

❀ ❀ ❀ ❀

तहँ सँहारि हूनकुल बीरा।
बल दिखाइ निज रघु रनधीरा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

रन कम्बोज देस नरपाला।
सके न सहि रघु तेज बिशाला ॥
कटत छाल परि गज-आलाना।
दबे भूप अखरोट सामाना ॥

❀ ❀ ❀ ❀

रविकुल-चन्द तुरंग असवारा।
चढ़्यो हिमालय नाम पहारा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

लगी गंगजल-सीकर संगा ।
सोई वायु सेनन के अंगा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

बैठि सुमेरु छांह तेहि ठामा ।
रघुदल वीर लह्यो विश्रामा ॥
जो जंजीर सन नृप-दल-वारन ।
बाँधे देवदारु तरु डारन ॥
जोति डारि तहँ औषधि नाना ।
भई तेल बिन दीप समाना ॥

❀ ❀ ❀ ❀

चलत दुहूँ दिसि गोफन बाना ।
उड़त आगि जहँ लगत पखाना ॥
घोर युद्ध गिरिबासिन साथा ।
यहि विधि कीन्हि भानुकुल-नाथा ॥
निज बानन उतसव-संकेतन ।
करि इमि मन्द भानु-कुल-केतन ॥

❀ ❀ ❀ ❀

जाकी जर पौलस्त्य हिलाई ।
नृप सन जनु सोई अचल डेराई ॥
निज जस अचल राज तहँ धारी ।
सोई गिरि सन निज सेन उतारी ॥
लौहित्या उतरत चतुरंगा ।
काला गुरु सन बँधत मतंगा ॥
लखि मनुवंश-भानु परतापा ।
प्रागज्योति कर नरपति काँपा ॥

❀ ❀ ❀ ❀

गयो सरन दै तोषन काजा ।
सोइ गज कामरूप-नरराजा ॥

इस से प्रकट है कि रघु ने पहिले पूर्व की यात्रा की और राह के राजाओं को जड़ से उखाड़ते हुये समुद्र के तट पर पहुंचे जो ताड़ के बन से काला हो रहा था। यहाँ सुह्म देश था। सुह्म देश को कुछ विद्वान आजकल का अराकान मानते हैं परन्तु हम उन लोगों से सहमत हैं जो इसे वंग के पश्चिम का प्रान्त बताते हैं। इसकी राजधानी ताम्रलिप्त थी। ताम्रलिप्त को आजकल तामलुक कहते हैं। सुह्म के राजा ने रघु की आधीनता स्वीकार कर ली।

यहाँ यह विचारने की बात है कि उत्तर कोशल और सुह्म के बीच में मगध और अंग राज्य थे। उनका क्या हुआ? ये दोनों राज्य न तो कोशल के अन्तर्गत थे न उसके आधीन थे। इसका प्रमाण यह है कि इन्दुमती के स्वयंवर में जिसमें रघु का बेटा अज भी गया था और जिसका वर्णन रघुवंश के छठे सर्ग में है, मगध और अंग के राजा दोनों आये थे। मगध के राजा का नाम परन्तप है। दोनों की बड़ी प्रशंसा की गई है। हमारे मित्र बाबू क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्याय ने अपने विद्वत्तापूर्ण लेख "Date of Kalidasa" में लिखा है कि इसका कारण यही हो सकता है कि महाकवि मगध और अंग दोनों देश के राजाओं से प्रेम रखता था और उनका जी दुखाना नहीं चाहता था। छठे सर्ग में अवसर पाकर दोनों की बड़ाई कर दी।*

---

*अंगराज के विषय में रघुवंश सर्ग ६ में लिखा है।

"श्री, वाणी इन महँ मिलि रहहीं"

इससे ध्वनित है कि अंगराज कम से कम विद्वानों और कवियों का आदर करता था और संभव है कि उसने महाकवि को भी पूजा हो।

सुह्म से आगे चलकर बंगालियों से रघु की मुठभेर हुई। ये लोग नाव पर चढ़ कर लड़ते थे। रघु ने इन की शक्ति नष्ट करदी। महाकवि जिन शब्दों में बंगनिवासियों की हार का वर्णन करता है। वह आजकल के कुछ बंगाली विद्वानों के इस कथन का खंडन करता है कि बङ्गाल कालिदास की जन्मभूमि थी। इस विषय में हमने भी अपने विचार "कालिदास की जन्मभूमि और ऋतुसंहार" शीर्षक लेख में प्रकट किये थे जो कई वर्ष हुये माधुरी में छपा था। "Date of Kalidasa" उसके कई वर्ष पीछे लिखा गया और हमको उसके पढ़ने से बड़ा आनन्द हुआ क्योंकि उसमें भी हमारे ही कथन की पुष्टि है। बंगालियों को जीत कर गंगा स्रोत (गंगा सागर) के पास एक द्वीप में रघु ने अपना जयस्तम्भ गाड़ा।

यहां से कपिशा (आजकल की सुवर्णरेखा) उतर कर रघु कलिंग देश में पहुँचे। कलिंग देश, बैतरणी के दक्षिण गोदावरी तक फैला हुआ था। पुरातत्ववेत्ता कनिंघम का मत है कि यह देश उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर में था। इसके दक्षिण-पश्चिम में गोदावरी और पश्चिम-उत्तर में इन्द्रावती थी। महाभारत के समय में उड़ीसा भी इसी के अन्तर्गत था। मणिपूर* और राज महेन्द्री इसके मुख्य नगर थे। परन्तु रघु के दिग्विजय के समय में उड़ीसा (उत्कल) इससे भिन्न था और उत्कल के राजा ने रघु के आधीन होकर उनको राह बतायी थी।

इस के आगे रघु महेन्द्रगिरि पर गये जहाँ महाभारत के समय में भी परशुरामजी रहते थे। कलिंग के राजा सदा से वीर रहे हैं। कलिंगवालों ने अशोक के भी दांत खट्टे कर दिये थे यद्यपि अन्त को हार गये। रघु से कलिंगराज लड़ा परन्तु हार गया। उसकी सेना में

---

*मणिपुर आजकल चिलका झील के पास मानिकपत्तन है और एक बन्दरगाह है।

हाथी बहुत थे। कलिंग से रघु दक्षिण गये और कावेरी उतरे। यहां पाण्ड्य देश था। मलयपर्वत और ताम्रपर्णी नदी इस देश की स्थिति निश्चित करते हैं। आजकल के तिन्नवली और रामेश्वरम् इसी के अन्तर्गत थे। इसकी राजधानी "उरगाख्यपुर" लिखी है। उरग का अर्थ नाग है और मदुरा का टामील नाम अलवाय (नाग) है। इससे विद्वान लोग अनुमान करते हैं कि पाण्ड्य देश की राजधानी मदुरा थी।

ताम्रपर्णी जहां समुद्र में गिरती है वहाँ मोती निकलते थे, सो पाण्ड्यराज ने रघु को सम्राट मान कर मोती भेंट में दिये।

उन दिनों पूर्वी घाट के दक्षिणी भाग को दर्दुर कहते थे। उसके और मलयगिरि के बीच में चल कर रघु सह्य पर्वत पर आये। सह्य कावेरी के उत्तर पश्चिमी घाट का नाम है। यहीं मलय (कनाड़ा केरल) देश था। उसने भी रघु का लोहा मान लिया। इसकी मुख्य नदी मुरला थी जिसे अब काली नदी कहते हैं।

वहां से उत्तर चलने पर अपरान्त देश मिला, जिसका एक अंश आज कल कोंकण के नाम से प्रसिद्ध है। मलाबार का एक अंश भी इसी के अन्तर्गत था, वहां के राजा ने भी रघु को कर दिया।

आगे चल कर रघु ने त्रिकूट को अपना जयस्तम्भ बनाया। त्रिकूट लंका का प्रसिद्ध पर्वत है जिसके ऊपर रावण की राजधानी बसी हुई थी। तुलसीकृत रामायण किष्किन्धा कांड में हनूमान् जी कहते हैं—

आनौं इहाँ त्रिकूट उपारी।

लंका जीत कर, रघु स्थल मार्ग से * पारसीकों को जीतने गये। बीच के राजा क्या हुये ? रघुवंश के छठे सर्ग में इस प्रान्त के विदर्भ के अतिरिक्त जहां भोजवंशी राजा राज करते थे और जिस कुल की बेटी

* इस से सूचित होता है कि जलमार्ग भी था।

इन्दुमती रघु के बेटे को ब्याही थी, अवन्ति * अनूप † और शूरसेन ‡ देश भी थे। इन से छेड़ छाड़ न करने का कारण यही हो सकता है कि इन से मेल था। हम अध्याय ७ में लिख चुके हैं कि उन्हीं दिनों मधु शूरसेन का राजा था और उसके वंशजों ने अनूपदेश भी अपने आधीन कर लिया था और मधु ने अपनी बेटी एक इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार को ब्याह दी थी। संभव है कि उन दिनों अनूपदेश जिसके अन्तर्गति भृगुकच्छ (आज का भड़ोच) भी था, हैहय वंशियों के आधीन रहा हो।

पारसीक पारस देश के रहनेवाले थे। अध्याय ७ में हमने लिखा है कि सूर्यवंशी राजा सगर ने पह्लवों को श्मश्रुधारी बना दिया था। पारसी और पह्लवी आजकल भी पर्यायवाची शब्द है। पारसवाले घोड़ों पर चढ़ कर लड़ते थे और उनके दाढ़ी थी। संभव है कि इन्हीं यवनों में अश्वकान (घोड़ा चढ़नेवाले) भी थे। विद्वानों का मत है कि अफ़ग़ान शब्द अश्वकान से बिगड़ कर बना है। ईरान (पारस) में अब भी अंगूर बहुत होते हैं और शीराज़ की अंगूरी शराब प्रसिद्ध है। यही शराब रघु के सैनिकों ने पी थी।

यहाँ से रघु कुबेर दिशा अर्थात उत्तर को गये। कुबेर का निवास स्थान कैलास है। इसी से उत्तर दिशा को कौबेरी दिशा कहते हैं। हिन्दोस्तान के नक़शे में कश्मीर के उत्तर हूनदेश (Hundes) है। हून लोग पीछे बड़े प्रबल हो गय थे § और इन्हीं की राह में कश्मीर देश था जिसके केसर के खेतों में चलने से घोड़ों के शरीर में भी केसर लग गयो। रघु ने हूनों को परास्त किया। और काम्बोजों को दबाया। काम्बोज देश बल्ख़ और गिलघिट घाटी के बीच

* मालवा जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

† मालवा के पश्चिम समुद्रतट तक फैला था। इसे सागरानूप भी कहते थे।

‡ मथुरा के आस पास का देश।

§ इन्हीं के आक्रमणों से गुप्तों का राज छिन्नभिन्न हो गया था।

में था और लदाख भी इसी के अन्तर्गत था। यहां के घोड़े और अख-रोट प्रसिद्ध थे। काम्बोज के रहनेवाले कुछ तो मुसलमान हो कर काबुल में बसे, कुछ भारतवर्ष में आये। यहाँ जो मुसलमान हो गये वे कंबोह कहलाते हैं और जो हिन्दू हैं वे अपने को कंबोह या कंबुज कहते हैं।

यहां से रघु की सेना हिमालय प्रान्त में घुसी और गंगा के किनारे ठहरी। यहीं कस्तूरी मृग की सुगंध से हवा बसी हुई थी और यहीं पहाड़ियों (संभवतः गढ़वालियों) से लड़ाई हुई जो गोफनों से पत्थर फेंक कर लड़ते थे। उनको जीत कर रघु आगे बढ़े तो उत्सव संकेत पहाड़ी मिले जिन्हें आप्ते महाशय जंगली बतलाते हैं। संभव है कि ये नैपाली हों। यहां से ऐसा जान पड़ता है कि रघु कैलास भी गये और लौहित्या (ब्रह्मपुत्र) उतर कर प्राग्ज्योतिषपुर आये जहां का राजा डर के मारे कांपने लगा।

इस के आगे कामरूप देश था, वहां के राजा ने हाथी भेंट दे कर रघु के पावँ पूजे।

यहीं दिग्विजय समाप्त हुआ।

रघु का दिग्विजय समुद्रगुप्त के दिग्विजय से मिलाया जाता है, और इससे यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है कि कालिदास समुद्रगुप्त के दरबार के कवि न थे, और न उनके समकालीन थे। समुद्रगुप्त की प्रशस्ति जिसमें उनका दिग्विजय लिखा है हरिषेण की रची है और इलाहाबाद के क़िले के भीतर अशोक की लाट पर अशोक की धर्मलिपियों के नीचे खुदी है। हमने कई बरस हुये इस की छाप का फ़ोटोग्राफ़ लेकर सरस्वती में छपवाया था। इसकी पूरी जांच करने से यह लेख बहुत बढ़ जायगा। इसके विषय में इतना ही कहना है कि समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन रघु के दिग्विजय की भाँति क्रमबद्ध नहीं है। दूसरी बात यह है कि भारत के

सम्राट सब दिग्विजय किया करते थे। संभव है कि रघु का दिग्विजय महाकवि के आश्रयदाता चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का दिग्विजय हो। महाकवि उनके साथ था इसी से जिस जिस देश में विजयी सेना गयी वहाँ वहाँ की विशिष्ट बातें लिख दीं।

उपसंहार (ङ)

वसिष्ठ

ब्रह्मर्षि वसिष्ठ इक्ष्वाकुवंशियों के कुलगुरु थे, परन्तु इतिहास को इस बात के मानने में बड़ा संकोच है कि एक ही वसिष्ठ इक्ष्वाकु से श्रीरामचन्द्र तक ६२ पीढ़ी के कुलगुरु रहें और प्रधान मंत्री का काम करें। सूर्यवंश के इतिहास में वसिष्ठ का नाम सब से पहले विकुक्षि के साथ आया है। विष्णुपुराण में लिखा है कि राजा इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को अष्टका श्राद्ध के लिए मांस लाने भेजा। उसने बन में जाकर अनेक पशु मारे, परन्तु जब वह थक गया और उसे बड़ी भूख लगी तो एक खरहा खा गया। घर लौट कर उसने सारा मांस राजा के सामने रख दिया। राजा ने अपने कुलगुरु वसिष्ठ से श्राद्ध के लिए मांस धोने को कहा। वसिष्ठ ने उत्तर दिया कि यह मांस दूषित हो गया है क्योंकि तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने इस में से एक शशक भक्षण कर लिया है।

यही वसिष्ठ श्रीमद्भागवत के अनुसार इक्ष्वाकु के पुत्र विदेहराज स्थापन करनेवाले राजा निमि के यज्ञ में ऋत्विक् बनाये गये थे जिसका वर्णन उपसंहार (ग) में है।

ये दोनों वसिष्ठ एक ही हो सकते हैं।

इसके बाद वसिष्ठ इक्ष्वाकु की ३०वीं पीढ़ी पर त्रय्यारुण के राज में प्रकट होते हैं। हम पहिले लिख चुके हैं कि एक साधारण अपराध के लिए त्रय्यारुण ने अपने बेटे सत्यव्रत को देशनिकाला दे दिया था, और आप दुःखी होकर बन को चला गया। तब वसिष्ठ ने बारह वर्ष तक अयोध्या का शासन किया। त्रय्यारुण के पीछे सत्यव्रत को विश्वामित्र ने गद्दी पर बैठाया। सत्यव्रत त्रिशंकु के नाम से प्रसिद्ध हैं। इसने सदेह स्वर्ग जाने की अभिलाषा पहिले वसिष्ठ से कही, फिर वसिष्ठपुत्रों से

कही। सत्यव्रत के मरने पर हरिश्चन्द्र राजा हुआ। इसके राज्य के आरम्भ में विश्वामित्र प्रबल थे। परन्तु उन्हें अयोध्या से हट जाना पड़ा और तपस्या करने पुष्कर चले गये। हरिश्चन्द्र के राज्य में वसिष्ठ फिर घुसे, और उन्हों की चाल से राजकुमार रोहित को फिर विश्वामित्र की शरण जाना पड़ा।

ये दोनों वसिष्ठ भी एक ही थे।

मत्स्यपुराण में लिखा है कि कार्तवीर्य अर्जुन ने आपव वसिष्ठ के आश्रम को जला दिया, जिससे आपव ने उसको शाप दिया और वह परशुराम के हाथ से मारा गया। इस वसिष्ठ का नाम देवराज था।

हरिश्चन्द्र से आठ पीढ़ी पीछे बाहु के राज में फिर एक वसिष्ठ प्रकट हुए और जब बाहु के पुत्र सगर ने शकों यवनों को परास्त किया तो वसिष्ठ ने बीच में पड़कर उनके प्राण बचा लिये और उनको जीवन-मृत-प्राय करा दिया। इस वसिष्ठ का उपनाम अथर्वनिधि भी है।

पांचवें वसिष्ठ कल्माषपाद के समय में थे। अर्बुदमाहात्म्य में लिखा है कि एक दिन राजा मित्रसह कल्माषपाद* शिकार को जा रहे थे रास्ते में वसिष्ठ के बेटे शक्तृ से तकरार हो गई जिससे कल्माषपाद राक्षस हो गया और शक्तृ और उसके भाइयों को खा गया। पद्मपुराण और रघुवंश के अनुसार दिलीप वसिष्ठ के आश्रम में गाय चराने गये जिसके आशीर्वाद से रघु का जन्म हुआ। इस वसिष्ठ की भी उपाधि अथर्वनिधि है। दशरथ और श्रीरामचन्द्र के दरबार में भी वसिष्ठ कुल-गुरु थे। इनके अतिरिक्त एक वसिष्ठ भरतों के राजा संवरण के पास वहां पहुँचे जहां संवरण पांचाल राजा सुदास से हारकर सिन्धु महानद के तट से पर्वत के निकट तक एक फुलवारी में सौ बरस से रहते थे।

---

* अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारिपुरः पुरा।
अर्घ्यामर्घपतिर्वाचमाददे वदतां वरः। विष्णुपुराण १'५६।

वसिष्ठ ने उनको फिर पुराने राज्य पर अभिषिक्त किया।* इन्हीं वसिष्ठ ने राजा का तपती के साथ ब्याह कराया जिससे कुरु का जन्म हुआ और इन्हीं वसिष्ठ ने राजा के राज में पानी बरसाया।†

वंशावलियों के मिलाने से यह संवरण उत्तर पांचाल के सुदास और अयोध्या के कुशपुत्र अतिथि का समकालीन निकलता है। परन्तु ऋग्वेद ७, १८ का ऋषि वसिष्ठ का पोता पराशर है; जिससे प्रकट है कि वसिष्ठ उस समय बहुत बुड्ढे हो गये थे। एक वसिष्ठ पिजवन-पुत्र सुदास के भी पुरोहित थे। सुदास ने एक यज्ञ किया। इसमें वसिष्ठ पुत्र शक्तृ ने विश्वामित्र को परास्त कर दिया परन्तु जामदग्न्यों ने कौशिकों की सहायता की। कहीं कहीं यह भी लिखा है कि विश्वा-मित्र के कहने से राजा के सेवकों ने शक्तृ को दावानल में डाल दिया। कुछ भी हो इस में सन्देह नहीं कि शक्तृ मारा गया और उसके मरने पर उसकी स्त्री अदृश्यन्ती के पराशर पुत्र उत्पन्न हुआ। इससे प्रकट है कि एक वसिष्ठ उत्तर पाञ्चाल के राजा सुदास के भी पुरोहित थे। अर्बुदमाहात्म्य में लिखा है कि एक वसिष्ठ उस पर्वत पर रहते थे जिसे आज कल आबू पहाड़ कहते हैं। यह स्थान गोमुख के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें गोमुखरूपी टोंटी से नीचे के कुंड में पानी गिरता है। इसी के पास वसिष्ठ का मन्दिर है। इस मन्दिर में सिंहासन पर वसिष्ठ की मूर्ति के दाहिने बायें राम लक्ष्मण की मूर्तियां, वसिष्ठ पत्नी अरुन्धती और बछरे समेत नन्दिनी गाय की मूर्तियाँ हैं। यहीं अग्निकुण्ड है जिसमें से वसिष्ठ के यज्ञ करने पर अग्निकुल क्षत्रिय उत्पन्न हुये थे। जब परशुराम ने पृथ्वी निःक्षत्रिया कर दी तो ब्राह्मण भी

---

* विष्णुपुराण के अनुसार कल्माषपाद के नरमांस परसने की कथा इतिहास में दी हुई है। महाभारत आदिपर्व में यह कथा बड़े विस्तार के साथ लिखी है।

† महाभारत आदिपर्व अ० १७४।

व्याकुल हो गये क्योंकि उनका रक्षण करनेवाला कोई न रह गया। इस पर, वसिष्ठ ने आबू पहाड़ पर सब देवताओं का आह्वान किया और गोमुख के पास अग्निकुण्ड में एक यज्ञ किया जिसकी समाप्ति पर चार देवताओं ने चार क्षत्रियकुल उत्पन्न किये। इन्द्र ने परमार-कुल, ब्रह्मा ने चालुक्य-कुल, शिव ने परिहार-कुल, और विष्णु ने चौहान-कुल। इसी से चारों कुल अग्निकुल कहलाये।

हमारे इस लिखने का प्रयोजन यही है कि वसिष्ठ के वंशज भी वसिष्ठ कहलाते थे, और यद्यपि इस कुल का सम्बन्ध साठ पीढ़ी तक अयोध्या राजवंश से रहा परन्तु और राजाओं के यहाँ भी वसिष्ठ और उनके वंशज पहुँचते थे।

उपसंहार (च)

हनूमान

हनूमानजी श्रीरघुनाथ जी के परमभक्त बड़े वीर और बड़े ज्ञानी थे। इनके जन्म की कथा वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड में यों लिखी है कि जब सीताजी की खोज करते-करते वानरसेना समुद्र-तट पर पहुँची तो अथाह जल देख कर सब घबरा गये। अङ्गद ने धीरज धरके उनसे कहा कि यह समय विक्रम का है विषाद का नहीं। विषाद से पुरुष का तेज नष्ट हो जाता है और तेजहीन पुरुष का कोई काम सिद्ध नहीं होता। तुम लोग हमें यह बताओ कि तुममें से कौन वीर समुद्र फाँद सकता है ? इस पर अनेक वानर बोल उठे; किसी ने कहा कि हम तीस योजन फाँद सकते हैं, किसी ने कहा चालीस योजन; जाम्बवान ने नब्बे योजन फाँदने का बल बताया। इस पर अङ्गद ने कहा कि समुद्र की चौड़ाई सौ योजन है, सो हम फाँदने को तो फाँद जायँगे किन्तु यह निश्चय नहीं है कि लौट भी सकेंगे। जाम्बवान् बोला कि आप सब के स्वामी हैं, आप को न जाना चाहिये। इस पर अङ्गद ने उत्तर दिया कि न हम जायें और न कोई जाय तो हम लोगों को यहीं मर जाना चाहिये, क्योंकि सुग्रीव की आज्ञा है कि बिना सीताजी की खोज लगाये हमको मुँह न दिखाना। जब यह बातें हो रही थीं तो हनूमानजी एकान्त में चुप बैठे थे। जाम्बवान् ने कहा कि तुम चुप-चाप क्यों बैठे हो ? तुम्हारी भुजाओं में इतना बल है जितना गरुड़ के पंखों में है। तुम्हारी माता अञ्जना पहिले पुञ्जिकस्थला-नाम अप्सरा थीं; वह ऋषि के शाप के कारण वानर हो गईं और कुञ्जर नाम वानर-श्रेष्ठ के घर में जन्मी; उनका विवाह केशरी के साथ हुआ था। एक बार वर्षा ऋतु में वह एक पहाड़ पर घूम रही थीं कि पवन ने उनका अञ्चल

उड़ा दिया। अञ्जना ने कहा कि हमारा पतिव्रत-धर्म कौन नष्ट करना चाहता है? इस पर पवन ने उत्तर दिया कि तुम्हारा पतिव्रत-धर्म भङ्ग न होगा। हमारे संसर्ग से तुम महासत्व, महातेजस्वी और महापराक्रमी पुत्र जनोगी। वही पुत्र तुम हो। जब तुम बालक ही थे, तुमने वन में सूर्य्य को उदय होते ही देख कर यह समझा कि फल है, और उसके खाने को दौड़े थे। इस पर इन्द्र ने तुम्हारे ऊपर वज्र प्रहार किया और तुम्हारी बाईं हनु (डाढ़) टूट गई। तब से तुम्हारा नाम हनूमान पड़ा। *

ब्रह्मपुराण में यह कथा विशेष विस्तार के साथ दी हुई है।

गोदावरी और फेना (पेनगङ्गा) के संगम पर एक बड़ा तीर्थ है † जिसमें स्नान दान करने से पुनर्जन्म नहीं होता। इस तीर्थ के अनेक नाम हैं, वृषाकपि, हनूमत, मार्जार और अब्जक। यह तीर्थ गोदावरी के दक्षिण तट पर है और इसकी कथा यह है।

"केशरी के दो स्त्रियाँ थीं, अञ्जना और अद्रिका। दोनों पहिले अप्सरायें थीं। शाप के बस अञ्जना का मुँह वानर का सा हो गया था और अद्रिका का बिल्ली का सा। दोनों अञ्जन पर्वत पर रहती थीं। एक बार अगस्त्य मुनि वहाँ पहुँचे। दोनों ने उनकी पूजा की और मुनि ने प्रसन्न हो कर दोनों को एक एक पुत्र का वर दिया। दोनों उसी पर्वत पर नाचती गाती रहीं। वहीं वायुदेव और निर्ऋतिदेव पहुँच गये। वायु के संसर्ग से अञ्जना के हनूमान पुत्र हुये और निर्ऋति के संयोग से अद्रिका के अद्रि नाम पिशाचराज पुत्र हुआ। पीछे गोदावरी में स्नान करने से दोनों की शाप-निवृत्ति हुई। जहाँ अद्रि ने अञ्जना को नहलाया। उस तीर्थ का नाम आंजन और पैशाच पड़ा और जहाँ हनूमानजी

---

* वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड ६६।

† यह संगम अकोला के दक्षिण निज़ामराज में है।

ने अद्रिका को स्नान कराया था वह मार्जार, हनूमत और वृषाकपि के नामों से प्रसिद्ध हुआ। *

वृषाकपि का अर्थ है जिसका संबन्ध वृषकपि से हो और वृषाकपि की कथा अध्याय १२९ में ही हुई है।

"दैत्यों का पूर्वज बड़ा बलवान हिरण्य, तपस्या के बल से देवताओं का अजेय हो गया था। उसका बेटा महाशनि भी बड़ा बली था। उसने एक युद्ध में इन्द्र को हाथी में बाँध कर अपने पिता को भेंट कर दिया। पिता ने इन्द्र को बन्द रक्खा। पीछे महाशनि ने वरुण पर चढ़ाई कर दी परन्तु वरुण देव ने उसे अपनी बेटी देकर संधि कर ली। इन्द्र के बँध जाने से देवता बहुत दुखी हुये और विष्णु से सहायता माँगी। विष्णु ने उत्तर दिया कि वरुणदेव की सहायता के बिना हम कुछ नहीं कर सकते। तब देवता वरुण के पास गये। वरुण के कहने से महाशनि ने इन्द्र को छोड़ तो दिया परन्तु उनको बहुत फटकारा और उनसे कहा कि तुम वरुण को आज से गुरु मानो। इन्द्र मुंह लटकाये अपने घर आये और इन्द्राणी से अपनी दुर्दशा कही। इन्द्राणी ने कहा कि हिरण्य हमारा चचा था तो भी हम अपने चचेरे भाई की मृत्यु का उपाय बताती हैं। तपस्या और यज्ञ से सब कुछ हो सकता है। तुम दंडकवन से शिव और विष्णु की आराधना करो, इन्द्र ने शिव की पूजा की। शिव ने कहा कि हम अकेले कुछ नहीं कर सकते। तुम विष्णु की पूजा करो। तब इन्द्र इन्द्राणी ने आपस्तम्ब के साथ गोदावरी के दक्षिण तट पर गोदावरी और फेना के संगम पर विष्णु भगवान की आराधना की। शिव और विष्णु के प्रसाद से जल में से शिव विष्णु दोनों का स्वरूप धारण किये हुये अर्थात् चक्रपाणि और शूलधर दोनों, एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने

---

* ब्रह्म पुराण अध्याय ८४।

रसातल में जाकर महाशनि को मारा। वह इन्द्र का प्यारा मित्र अब्जक वृषाकपि कहलाया।

वृषाकपि अरिन्दम का नाम अध्याय ७० में उन लोगों के साथ भी आया है जिन्होंने गोदावरीतट पर तीर्थ स्थापन किये थे।

विचारने से यह ध्वनित होता है कि वृषाकपि और हनुमन्त एक ही थे।* वृषाकपि का अर्थ है पुलिंग बन्दर। तो क्या हनूमान जी ऐसे ही बन्दर थे जैसे आजकल अयोध्या आदि नगरों में उपद्रव करते हैं। जो ऐसे ही थे तो क्या कारण है जो आजकल कोई बन्दर ज्ञानी नहीं निकलता ?

हम तो यह समझते हैं कि हनूमान जी और उनके सैनिक दक्षिण देश के निवासो थे। आजकल के विज्ञान से यह सिद्ध होता है कि हजारों बरस पहिले दक्षिण भारत का प्रान्त अफ़ीका से मिला हुआ था। पीछे धरती बैठ जाने से अरब सागर बन गया, अफ़्रीका के हबशियों का मुंह बन्दरों से बहुत मिलता जुलता है। दोनों की चिपटी नाक, दबे मत्थे और थूथन की भांति आगे निकले हुये मुंह अब भी देखे जाते हैं। क्या इस बात के मानने में कोई आपत्ति हो सकती है कि ये वानर उन्हीं हबशियों के भाई हों जो अफ़्रीका में अब तक बसे हैं और भारत में नष्ट हो गये या वर्णसंकर होकर यहां के निवासियों में मिल गये। इसमें एक शंका हो सकती है कि रामायण के बन्दर पिंगल वर्ण थे और अफ़्रीका के हबशी काले होते हैं परन्तु यह आबहवा का प्रभाव है।

अब रहा नाम हनूमन्त। जो हम यह मान लें कि हनूमान और उनके सैनिक प्राचीन द्रविड़ थे तो संभव है कि रावण की भांति हनूमान भी किसी टामिल शब्द का संस्कृत रूप हो और जब हनूमान शब्द बना तो उसकी उत्पत्ति दिखाने को इन्द्र के वज्र से दाढ़ी टूटने की कथा गढ़ी

---

* क्योंकि हनूमान के संसर्गसे वह वृषाकपितीर्थ कहलाया।

गई। इस कथा से भी यह ध्वनित होता है कि हनूमान जी पहले ऐसे कुरूप न थे। दाढ़ टूट जाने से मुँह बन्दर का सा हो गया। ऐसी ही वृषाकपि भी किसी द्रविड़ शब्द का संस्कृत अनुवाद हो सकता है क्योंकि यह तो सिद्ध ही है कि वानर गोदावरी के दक्षिण के रहनेवाले थे जहां कनाड़ी या टामील भाषा बोली जाती है। हम इस विषय में १९१३ के जर्नल रायल एशियाटिक सोसाइटी से प्रसिद्ध विद्वान मिस्टर पार्जिटर का मत उद्धृत करते हैं।

वृषा पुलिंग के लिये द्रविड़ शब्द 'आण' है और यह शब्द कन्नाड़ी और टामील और मड़यालम् तीनों भाषाओं में बोला जाता है। तिलगू में इसके बदले मग और पोटु बोलते हैं। कपि बन्दर के लिये इन चारों भाषाओं में दो शब्द हैं, १ कुरंगु, २ मंडी। बन्दरवाची शब्द कुरंगु टामील भाषा का है, शेष तीनों में कुरंग हिरन को कहते हैं। मड़यालम में इस शब्द के दो रूप हैं कुरंग=हिरन, और कुरन्नु=बन्दर*। टामील भाषा में मंडी विशेष कर बँदरिया को कहते हैं। मड़याड़म में मंडी काले मुँह के बन्दरों के अर्थ में बोला जाता है। कन्नाड़ी और तिलगू में मंडी संयुक्त शब्दों में हिन्दी "लोग" के अर्थ में आता है। यह अर्थ विचारने के योग्य है। कन्नाड़ी में बन्दर के लिये दो शब्द हैं, कांटि और तिम्मा और दोनों नये हैं। यह बात सर्वसम्मत है कि टामील में प्राचीन शब्द बहुत हैं।

अब आण और मंडी को मिलाने से वृषाकपि के अर्थ का द्राविड़ शब्द बन जाता है और वृषाकपि उसका संस्कृतानुवाद होता है।

आणमंडि का संस्कृत रूप हुआ हनुमंत। द्रविड़ शब्दों के संस्कृत रूप बनाने में बहुधा एक "ह" पहले जोड़ दिया जाता है। इसके कई

---

* बन्दर के लिये संस्कृत में शाखामृग शब्द का प्रयोग इसका उदाहरण है।

उदाहरण मिस्टर पार्जिटर ने दिये हैं। जैसे टामील भाषा में इडुम्वी का अर्थ है "गर्बीली स्त्री"। यही नाम उस स्त्री का था जो संस्कृत में हिडिम्बा कहलाई।

आजकल हनूमान को टामील में अनुमण्डम कहते हैं जिससे प्रकट है कि टामील में संस्कृत का "ह" गिर जाता है।

इससे यह सिद्ध होता है कि श्री हनूमान जी दक्षिण देश के प्राचीन निवासी थे और उनका असली नाम आणमंडी था जिसका अक्षरार्थ लेकर संस्कृत में वृषाकपि* बनाया गया और संस्कृत रूप हनुमंत हुआ।

हम यहां इतना और कहना चाहते हैं कि प्राचीन यूरप में एक असभ्य लड़ाकी जाति वंडल (Vandal) थी जिसके आक्रमणों से रोम-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। बन्दर और वंडल शब्द बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। बच्चे बहुधा बन्दर को वंडल कहते हैं।

---

* आधुनिक संस्कृत में वृषाकपि के अनेक अर्थ हैं, इन्द्र, शिव, विष्णु आदि।

उपसंहार (छ)

चन्द्रवंश

यदुवंश

१ मनु
२ इला
३ पुरूरवस्
४ आयुष्
५ नहुष
६ ययाति
७ यदु
८ क्रोष्टु
९ वृजिनीवन्
१० स्वाहि
११ रुषगु (रुशादु या रुशेकु)
१२ चित्ररथ
१३ शशबिंदु
१४ पृथुयशस् (पृथुश्रवा)
१५ पृथुकर्मन् (पृथुधर्मन्)
१६ पृथुञ्जय
१७ पृथुकीर्ति
१८ पृथुदान
१९ पृथुश्रवस्
२० पृथुसत्तम

२१ अन्तर
२२ सुयज्ञ
२३ उशनस्
२४ सिनेयु
२५ मरुत्त
२६ कम्बलवर्हिष्
२७ रुक्म, (कवच)
२८ परावृट् (पुरु १)
२९ ज्यामघ
३० विदर्भ
३१ क्रथ
३२ कुन्ति
३३ धृष्टि
३४ निर्वृति
३५ विदूरथ
३६ दशार्ह
३७ व्योमन्
३८ जीमूत
३९ विकृति
४० भीमरथ
४१ नवरथ
४२ दशरथ
४३ शकुनि
४४ करंभ
४५ देवरात
४६ देवक्षत्र

४७ मधु
४८ कुरुवश
४९ अनु
५० पुरुद्वत्
५१ पुरुहोत्र
५२ अंशु
५३ सत्व
५४ सात्वत
५५ अन्धक
५६ कुकुर
५७ वृष्णि
५८ धृति
५९ कपोतरोमन्
६० तिलोमन्
६१ तित्तरि
६२ तैत्तिरि
६३ नल
६४ अभिजित
६५ पुनवर्सु
६६ आहुक
६७ उग्रसेन
६८ कंस
६९ (श्री कृष्ण)

नहुष का वंश*

२४—चन्द्रवंश में यदि आगे राजगद्दी का अधिकारी किसी का वंश हुआ तो राजकुमार नहुष का वंश हुआ। इसका विवरण इस प्रकार है।

महाराज ययाति

नहुष के छः पुत्र हुये, यति, ययाति, संयाति, आयति, वियति और कृत। इनमें से राजकुमार यति ने देखा कि पुरुष राजलक्ष्मी में पड़कर माया में फंस जाता है। वह इस आत्मा का ज्ञान नहीं कर सकता। इस कारण उसने राज्य की इच्छा ही नहीं की। उसका विवाह सूर्यवंशी राजा ककुत्स्थ की कन्या गो से हुआ। राजकुमार संयाति ब्रह्म की उपासना में लगकर उसी में मग्न हो गया। ययाति का विवाह उशना (शुक्राचार्य) की कन्या देवयानी और असुर राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से हुआ। देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु पैदा हुये और शर्मिष्ठा से द्रुह्यु, अनु और पूरु पैदा हुये।

नहुष नाग

राजा नहुष स्वयं बड़े प्रतापी राजा हुये थे। उन्होंने सम्पूर्ण पृथ्वी का विजय किया।† उन्होंने अपने बाहुबल से इतना यश प्राप्त किया था कि देव लोगों ने भी इन्हें अपना प्रधान राजा बना कर इन्द्र का पद दे दिया। परन्तु इतना उच्चासन पाकर नहुप को मद आ गया। उन्होंने सोचा कि मैं इन्द्र के पद पर पहुँच गया हूँ, मैं इन्द्र की पत्नी शची का भी भोग करूँ। उसको लाने के लिये राजा नहुष पालकी पर सवार हो कर चले

---

* जयसवाल जाति के इतिहास से प्रकाशक की आज्ञा से उद्धृत।

† उसने दस्युओं को मारकर ऋषियों से भी कर लेना शुरू किया था और उसमें यशस्वी होकर उनसे अपनी सेवा भी कराई। देवताओं को जीतकर उसने उनका इन्द्रासन भी ले लिया। महाभारत आदिपर्व ७५।२०।

तब सप्तर्षियों ने उनकी पालकी उठाई। उनमें अगस्त्य कुछ मन्द मन्द चलते थे। उनको तेज चलाने के लिये मद में आकर नहुष ने "सर्प सर्प" कहा। बस अगस्त्य कुपित होकर बोले "स्वयं सर्प हो जाओ।" इस प्रकार वह राजा अजगर हो कर स्वर्ग से गिर गया।

पुराणकार की इस कथा का एक ऐतिहासिक गूढ़ार्थ निकलता है। वह यह है कि राजा नहुष अपने बाहुबल से निःसन्देह बड़ा भारी राजा हो गया। यहां तक कि प्रसिद्ध महर्षि लोग भी उसकी सेवा करना अपना अहोभाग्य समझते थे। परन्तु उसके मदोन्मत्त हो जाने पर अगस्त्य ने उसे साम्राज्य पद से च्युत करके जंगलों में प्रवास का दण्ड दिया। वह बाधित हो कर नागवंशियों में जा मिला और नाग कहाने लगा। इस बात का प्रमाण ग्रीक इतिहासलेखक हेरोडोटस के लेख से भी मिलता है। उसने मिसर या इजिप्ट के प्राचीन इतिहास में लिखा है कि वहाँ का प्राचीन राजा डायोनिसस था जो पूर्व देश से आकर रहा। वहाँ उसने बड़ी भारी विजय की और वहाँ के लोगों को जो बहुत असभ्य थे खेती बाड़ी करने तथा नगर बसाने की शिक्षा दी और सभ्य बनाया, इत्यादि। हमें हेरोडोटस का डायोनिसस देव नहुष ही प्रतीत होता है।

अस्तु, इस प्रकार नहुष के अजगर या नाग बनकर राज्य से भ्रष्ट हो जाने पर ययाति ही राजगद्दी पर बैठा। ययाति भी बड़ा प्रसिद्ध राजा हुआ। इस के राज्य के चिन्ह अभी तक भी भारत में विद्यमान हैं।

ययातिनगर का अवशेष

जयपुर रियासत में साम्भर झील के तट पर साम्भर नगर बसा हुआ है। वहां दो तालाब और दो मन्दिर हैं, एक शर्मिष्ठा का और दूसरा देवयानी का। वहाँ से ११ मील पर ययाति के यौवनपुर की स्थिति है। जोबरेन का ठिकाना ययाति का यौवनपुर ही है। इस नगरी का भग्नावशेष केवल एक थम्भामात्र अभी तक शेष है जो वहां के मैदान में जोबरेन के बिल्कुल समीप कुछ किसानों की झोपड़ी के समीप गड़ा

हुआ है। कहते हैं यह थम्भा प्राचीन नगर के द्वारस्थान पर है और ५०० वर्ष पूर्व यहाँ का दृश्य बहुत ही सुन्दर था। पास ही माता का मन्दिर है। यह एक पर्वत पर है। पहिले इस पर्वत से बहुत सुन्दर सुन्दर झरने निकलते थे। वहाँ का दृश्य बहुत ही रमणीक था, अब भी वह पहाड़ी कम सुन्दर नहीं। इस स्थान के पहाड़ में कई प्राचीन इमारतों के भग्नावशेष विद्यमान हैं जिनको देखने से प्रतीत होता है कि यहां पहिले विशाल भवन बने थे।*

दिग्विजय

रुद्रमहाराज ने भक्ति से प्रसन्न होकर राजा ययाति को अत्यन्त दिव्य प्रकाशमान् सुवर्ण का रथ† और दो अक्षय तूणीर (तर्कस) दिये थे। इन तर्कसों में के बाण कभी समाप्त नहीं होते थे। ययाति ने उसी रथ पर चढ़कर सम्पूर्ण पृथ्वी का विजय किया। ययाति का प्रताप भी अपने पिता नहुष से कम नहीं था। देव दानव और मानव भी उसके मुक़ाबले पर न ठहर सके।

राजा ययाति के भोगविलास से न तृप्त होकर अपने पुत्रों से जवानी मांगने की कथा प्रसिद्ध है। संभव है कि सब से छोटा पुत्र

---

* मैं स्वंय इस स्थान पर ३ मास रहा हूँ और सब स्थान अपनी आँखों देखे हैं। —लेखक।

† ययाति का रथ उसके बाद पुरुवंश के राजाओं के पास रहा और कुरुवंश की सम्पत्ति बना। वह बराबर जनमेजय तक चला आया। एक बार जनमेजय उस रथ पर चढ़कर मदमत्त होकर जा रहा था कि मार्ग में गार्ग्य नामक एक ब्राह्मण का बालक रथ के नीचे आकर कुचल गया। उसी ब्राह्मण के शाप से जनमेजय के हाथ से वह रथ निकल गया। फिर इन्द्र को प्रसन्न कर के बृहद्रथ ने यह रथ पाया। भीम ने उसे मार कर श्री कृष्ण को वही रथ दिया। इस प्रकार वह रथ सदा चक्रवर्ती राजाओं के पास रहा।

उनका आज्ञाकारी था और उसकी मां छोटी रानी शर्मिष्ठा के आग्रह से उसे राज मिला जिसका उदाहरण रामायण में है। जांच से यह विदित होता है कि पूरु को प्रतिष्ठानपुर मिला, परन्तु यदुवंशी भी राज से वर्जित न थे।

१३—शशविन्दु सूर्यवंशी युवनाश्व का समकालीन इसकी बेटी विन्दुमती चैत्ररथी जिसके कई भाई थे, युवनाश्व १ के पुत्र मान्धाता को ब्याही थी।

३०—विदर्भ ने दक्षिण में विदर्भराज्य स्थापित किया। चेदी के राजा भी इसी के वंशज थे। इसकी बेटी अयोध्या के राजा सगर को ब्याही थी।

४७—मधु को पार्जिटर महाशय मथुरा का मधु मानते हैं।

उपसंहार (ज)

चन्द्रवंश

पुरुवंश

१ युधिष्ठिर
२ परीक्षित
३ जनमेजय
४ शतानीक
५ अधिसोम कृष्ण (अधि-सीम कृष्ण)
६ निचक्षु (विवक्षु निर्वक्रा या नेमिवक्र)
७ उष्ण या भूरि
८ चित्ररथ
९ शुचिद्रव
१० वृष्णिमन्
११ सुषेण
१२ सुनीथ या सुतीर्थ
१३ रुच
१४ नृचक्षु
१५ सुखीवल
१६ परिप्लव
१७ सुतपस्
१८ मेधाविन
१९ पुरंजय

२० उर्व
२१ तिगात्मन
२२ बृहद्रथ
२३ वसुदामन
२४ शतानीक
२५ उद्भव
२६ वाहीनर
२७ दण्डपाणि
२८ निरमित्र
२९ क्षेमक

२—परीक्षित अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु का बेटा था। महाभारत में अभिमन्यु मारा गया उस समय यह गर्भ में था।

३—जनमेजय ने नागयज्ञ किया।

६—निचक्षु के समय में हस्तिनापूर गङ्गा की बाढ़ में डूब गया और राजधानी कौशाम्बी को उठ आयी। हम समझते हैं कि महाभारत ऐसा सर्वनाशी युद्ध हुआ था कि फिर पुरुवंशियों के पाँव पश्चिम में न जमे। इसका उदाहरण अयोध्या का गुप्तवंश है।

अन्तिम राजा महापद्मनन्द के समय की राज्यक्रान्ति में मारा गया। (४२२ ई० पू०)

उपसंहार (झ)

चन्द्रवंश

यदुवंश (मगधराज वंश)

वसु (चैद्योपरिचर-गिरिका)
|
महारथ—जिसने वृहद्रथ के नाम से मगध राज स्थापित किया।
|
कुशाग्र
|
वृषभ (ऋषभ)
|
पुण्यवत्
|
पुण्य
|
सत्यधृति (सत्यहित)
|
धनुष
|
सर्व
|
संभव
|
वृहद्रथ २
|
जरासन्ध
|
सहदेव (महाभारत में मारा गया)
|
सोमवित्
|
श्रुतश्रवस्

इनमें जरासन्ध बड़ा प्रतापी राजा था। इसके प्रताप का वर्णन महाभारत सभापर्व अध्याय १४ में श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से किया है। इसी के डर के मारे (पूर्व) कोशल के राजा दक्षिण भाग गये थे, और उन्होंने कदाचित् वहाँ दक्षिण कोशल राज स्थापित किया। इसकी दो

बेटियाँ कंस को ब्याही थीं। कंसवध के पीछे जरासंध कृष्ण का कट्टर बैरी हो गया और उसी के डर से श्रीकृष्ण यदुवंशियों को लेकर द्वारका (कुशस्थली) भाग गये थे। जरासंध के मारे जाने पर उसका राज छिन्न-भिन्न हो गया। सहदेव को मगध के पश्चिम का अंश मिला। उसी के साथ साथ मगध के दो और राजाओं के नाम हैं दंडधार और दंड, जो गिरिव्रज में राज करते थे। सहदेव के भाई नयसेन के पास भी कुछ राज था।

———

उपसंहार (ञ)

चन्द्रवंश

आयुष वंश

१ मनु

२ इला—इसका पति बुध था जो चन्द्र और बृहस्पति की स्त्री तारा का बेटा था।

३ पुरूरवस्

४ आयुष—इसकी स्त्री सूर्यवंशी राजा वाहु की बेटी थी।

नहुष	क्षत्रवृद्ध	रम्भ	रजि	अनेनस्
		निःसंतान मरा		

क्षत्रवृद्ध
|
सुहोत्र

काश	लश	गृत्समद
काशिराज		शौनक (चारों वर्णों के प्रवर्त्तयिता)

काश
|
काशिराज
|
दीर्घतमा
|
धन्वन्तरि (आयुर्वेद के आचार्य)
|
दिवोदास
|
प्रतर्दन शत्रुजित या वत्स या चतुरध्वज, कुवलयाश्व (मदश्रेण्य वंश को नष्ट किया)
|
अलर्क
|
सन्तति
|
सुनीथ
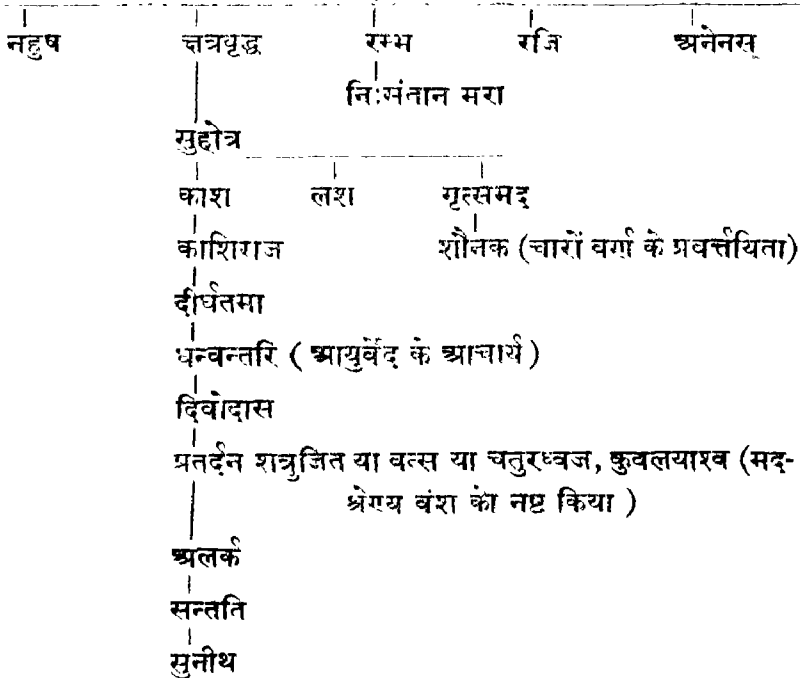
|
सुकेतु
|
धर्मकेतु
|
विभु
|
सुविभु
|
सुकुमार
|
धृष्टकेतु
|
वैनहोत्र
|
भार्ग
|
भार्गभूमि

उपसंहार (ट)

चन्द्रवंश

कान्यकुब्ज राजवंश

१ मनु
२ इला
३ पुरूरवस्
४ आमावसु
५ भीम
६ कंचनप्रभ
७ सुहोत्र
८ जह्नु *
९ सुमन्त (सुजह्नु)
१० अजक
११ बालाकाश्व
१२ कुश
१३ कुशाश्व
१४ कुशिक
१५ गाधि
१६ विश्वामित्र (इनका क्षत्रिय नाम विश्वरथ था)
१७ अष्टक

---

* जह्नु ने अपने यज्ञस्थान को गङ्गाजल में डूबता देखकर समाधिबल से सारा गङ्गाजल पान कर लिया । उस समय देवर्षियों ने उन्हें प्रसन्न करके गङ्गा को पुत्रीरूप से स्वीकार कराया तब जह्नु ने उनको छोड़ दिया ।

१२—राजा कुश बड़े धर्मज्ञ और तपस्वी थे। उनका विवाह विदर्भ-कुल की एक राजकुमारी के साथ हुआ था जिससे चार बेटे हुये, कुशाम्ब, कुशनाभ, अमूर्तरजस और वसु। कुश ने अपने बेटों से कहा कि जाओ धर्म से प्रजापालन करो। इस पर कुशाम्ब ने कौशाम्बी * नगरी बसाई। कुशनाभ महोदयपुर † में जाकर रहे अमूर्त्तरजस धर्मारण्य ‡ में जा कर बसे और वसु गिरिव्रज § का राजा हुआ। यह गिरिव्रज मागधी नदी के तट पर था और इसके चारों ओर पाँच पहाड़ियाँ थीं। कुशनाभ के घृताची अप्सरा से सौ बेटियाँ हुईं। जब लड़कियाँ सयानी हुईं तो गहने कपड़े पहने बाग़ में नाचती गाती फिरती थीं। उनका विवाह कुशनाभ ने चूली मुनि के पुत्र ब्रह्मदत्त के साथ कर दिया। ब्रह्मदत्त कंपिलापुरी || का राजा था।

१६—विश्वामित्र—इनका चरित्र अपूर्व है। वाल्मीकीय रामायण में इनके विषय में जो कुछ लिखा है वह संक्षेप से यों है।

विश्वामित्र ने बहुत दिनों तक राज किया। एक बार बड़ी सेना लेकर यात्रा करते हुये वसिष्ठ के आश्रम को गये। वसिष्ठ ने उनका स्वागत किया और कुशल क्षेम पूछा। विश्वामित्र ने कहा सब कुशल

---

* कौशाम्बी यमुना के उत्तर तट पर चन्द्रवंशी राजाओं की प्रसिद्ध राजधानी थी। जब हस्तिनापूर गङ्गा की बाढ़ से कट गया तो राजा निचक्षु राजधानी कौशाम्बी उठा लाया।

† महोदयपुर कान्यकुब्ज का पुराना नाम है।

‡ कुछ लोग अनुमान करते हैं कि बलिया और ग़ाज़ीपूर का कुछ अंश धर्मारण्य कहलाता था।

§ गिरिव्रज—राजगृह का पुराना नाम है। यह नगर पाँच पहाड़ियों के बीच में बसा था, जिनके नाम समय समय पर बदला किये हैं। यह नगर फल्गु के तट पर बसा हुआ था।

|| कंपिला—आज-कल का कंपिल नाम नगर एटाजिले में है।

है और कुछ दिन वहाँ रहे। एक दिन वसिष्ठ जी हंसकर बोले हम आपकी पहुनाई करना चाहते हैं, आप स्वीकार कीजिये। विश्वामित्र ने उत्तर दिया कि आप की मीठी बातों ही से पहुनाई हो चुकी। अब हमको आज्ञा दीजिये हम जायँ। परन्तु वसिष्ठ जी ने आग्रह किया और विश्वामित्र ठहर गये। तब वसिष्ठ ने अपनी होम धेनु को बुलाया और कहा, "हम इस राजा की पहुनाई करना चाहते हैं, तुम खाने पीने की अच्छी से अच्छी सामग्री से सेना समेत राजा को भोजन कराओ।" धेनु ने बात की बात में अच्छे से अच्छे भोजन पान सब इकट्ठा कर दिये। जब विश्वामित्र अपने मंत्री आदि के साथ खा पी कर तृप्त हो गये तो कहने लगे कि आप हमसे लाख गायें ले लीजिये और अपनी होमधेनु हमें दे डालिये। वसिष्ठ बोले हम करोड़ गायों के बदले अपनी धेनु न देंगे। इसीसे हमारे सारे काम चलते हैं। इस पर विश्वामित्र ने कहा हजार हाथी ले लीजिये, जितना चाहिये रत्न और सोना लीजिये, परन्तु वसिष्ठ ने न माना, और कहा, यही हमारा सर्वस्व है, यही हमारा जीवन प्राण है, हम इसे न देंगे। इस पर विश्वामित्र ने वरजोरी से गाय को पकड़ना चाहा परन्तु तत्क्षण बड़े बड़े योधा निकल आये और विश्वामित्र की सेना को मार भगाया। पीछे बहुत दिनों तक लड़ाई होती रही परन्तु वसिष्ठ के ब्रह्मबल ने विश्वामित्र के क्षत्रियबल को परास्त कर दिया। तब विश्वामित्र ने यह संकल्प किया कि ब्राह्मण बनना चाहिये और कठिन तपस्या करने चले गये। यहीं उनके पास त्रिशंकु पहुँचा जिसकी कथा ऊपर लिखी जा चुकी है। वाल्मीकीय रामायण में लिखा है कि त्रिशंकु को स्वर्ग पहुँचाकर विश्वामित्रजी पुष्कर चले गये। यहां उनको मेनका मिली जिसके फंद में पड़कर विश्वामित्र के शकुन्तला नाम की लड़की पैदा हुई जिसकी कथा संसार में प्रसिद्ध है। यहां से विश्वामित्र कौशिकी नदी के तट पर जाकर तपस्या करने लगे। यहां उनकी तपस्या बिगाड़ने को रम्भा नाम की अप्सरा

पहुँची। विश्वामित्र जी ने जो एक बार मेनका के फन्द में पड़कर फल पा चुके थे उसको शाप दिया कि तू पत्थर हो जा। यहीं बहुत कड़ी तपस्या करने से उनको ब्रह्मर्षि का पद मिला और वसिष्ठ जी ने भी उन्हें ब्राह्मण स्वीकार कर लिया। विश्वामित्र के कई बेटे थे मधुच्छन्दस्, कट, ऋषभ, रेणु, अष्टक और गालव। विश्वामित्र के ब्रह्मर्षि बनने पर अष्टक कान्यकुब्ज का राजा हुआ। विश्वामित्र ने शुनःशेप को अपन पुत्र मान लिया क्योंकि शुनःशेप बिक चुका था और उसका अपने पैत्रिक कुल से कोई संबंध न था। विश्वामित्र ने शुनःशेप को देवरात की पदवी देकर अपने पुत्रों में जेठा बनाथा।

इतिहास की जांच से प्रकट होता है कि विश्वामित्र ब्राह्मण कुल का नाम था और उसी वंश के अनेक ब्रह्मर्षि भिन्न भिन्न अवसरों पर वसिष्ठों से लड़ते रहे।

विश्वामित्र की बहिन सत्यवती कौशकी भार्गव ऋचीक को ब्याही थी; जिसका लड़का जमदग्नि था। यह विवाह बड़े झगड़े से हुआ था। ऋचीक ने गाधिराज से कन्या मांगी। गाधिराज न चाहते थे कि सत्यवती उनके साथ ब्याही जाय और उनसे एक हज़ार श्यामकर्ण घोड़े मांगे। ऋचीक ने वरुणदेव से एक हज़ार घोड़े मांग कर राजा को दे दिये। यह कौशिकी पीछे नदीरूप में प्रकट हुई। जमदग्नि की स्त्री रेणुका इक्ष्वाकुवंशी राजा रेणु की बेटी कही जाती है। परन्तु इस नाम का कोई राजा अयोध्या राजवंश में नहीं है।

उपसंहार (ठ)

प्रद्योत-वंश

वार्हद्रथ वंश के अन्तिम राजा रिपुंजय को मार कर उसके मंत्री सुनिक ने अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बना कर यह वंश स्थापित किया।

१—प्रद्योत २३ वर्ष (ई० पू० ९२० से ई० पू० ८९७ तक)।

२—पालक २४ वर्ष (ई० पू० ८९७ से ई० पू० ८७३ तक)।

३—विशाखायूप ५० वर्ष (ई० पू० ८७३ से ई० पू० ८२३ तक)।

४—अजक (जनक) २१ वर्ष (ई० पू० ८२३ से ई० पू० ८०२ तक)।

५—नन्दिवर्द्धन २० वर्ष (ई० पू० ८०२ से ई० पू० ७८२) तक।

इस वंश में ५ राजा हुये जिन्होंने सब मिलकर १३८ वर्ष राज किया।

उपसंहार (ड)

शिशुनाक वंश

१—शिशुनाक * ४० वर्ष (ई० पू० ७८२ से ई० पू० ७४२ तक)।

२—काकवर्म (शकवर्म) ३६ वर्ष (ई० पू० ७४२ से ७०६ तक)।

३—क्षेमधर्मन् ३८ वर्ष (ई० पू० ७०६ से ई० पू० ६६८ तक)।

४—क्षत्रोजस् (क्षेत्रज्ञ) ४० वर्ष (ई० पू० ६६८ से ई० पू० ६२८ तक)।

५—बिम्बिसार ३८ वर्ष (ई० पू० ६२८ से ई० पू० ५९० तक)।

६—अजातशत्रु २७ वर्ष (ई० पू० ५९० से ई० पू० ५६३ तक)।

७—दर्शक (दर्भक) २५ वर्ष (ई० पू० ५६३ से ई० पू० ५३८ तक)।

८—उदयिन (उदयाश्व) ३३ वर्ष (ई० पू० ५३८ से ई० पू० ५०५ तक)। इसी ने कुसुमपुर बसाया था ।

९—नन्दिवर्द्धन ४२ वर्ष (ई० पू० ५०५ से ई० पू० ४६३ तक)।

१०—महानन्दिन् † ४३ वर्ष (ई० पू० ४६३ से ई० पू० ४२० तक)।

इस वंश में १० राजा हुये जिन्होंने सब मिल कर १६२ वर्ष राज किया।

---

* विष्णुपुराण में शिशुनाक नन्दिवर्द्धन का पुत्र लिखा है।

† महानन्दिन् के शूद्रा के गर्भ से अति लोभी महापद्मनन्द हुआ जिसने क्षत्रियवंश का नाश किया।

उपसंहार (ढ)

नन्दवंश

१—महापद्मनन्द ८८ वर्ष (ई० पू० ४२२ से ई० पू० ३३४ तक)।

२—सुकल्प आदि ८ पुत्र १२ वर्ष (ई० पू० ३३४ से ई० पू० ३२२ तक)।

कौटिल्य ब्राह्मण ने इनका नाश करके मौर्यवंश स्थापित किया।

उपसंहार (ण)

मौर्यवंश

१—चन्द्रगुप्त २४ वर्ष (ई० पू० ३२२ से ई० पू० २९८ तक)।

२—विन्दुसार (भद्रसार) २५ वर्ष (ई० पू० २९८ से ई० पू० २७३ तक)।

३—अशोक ३६ वर्ष (ई० पू० २७३ से ई० पू० २३७ तक)।

४—दशरथ (वन्धुपालित) ८ वर्ष (ई० पू० २३७ से ई० पू० २२९ तक)।

५—सम्प्रति (संगत या इन्द्रपालित) ९ वर्ष (ई० पू० २२९ से ई० पू० २२० तक)।

६—शालिशूक १३ वर्ष (ई० पू० २२० से ई० पू० २०७ तक)।

७—देवधर्म।

८—शतधन्वन्।

९—वृहद्रथ ७ वर्ष (ई० पू० १९२ से ई० पू० १८५ तक)।

वृहद्रथ को उसके सेनापति पुष्यमित्र ने मार डाला और आप राजा बन बैठा। उसी से शुङ्गवंश चला।

उपसंहार (त)

शुङ्गवंश

१—पुष्यमित्र ३६ वर्ष (ई० पू० १८५ से ई० पू० १४९ तक)।

२—अग्निमित्र ८ वर्ष।

३—वसुश्रेष्ठ ७ वर्ष (ई० पू० १४९ से ई० पू० १४२ तक)।

४—वसुमित्र १० वर्ष (ई० पू० १४२ से ई० पू० १३२ तक)।

५—अन्धक (अन्तक) २ वर्ष (ई० पू० १३२ से ई० पू० १३० तक)।

६—पुलिन्दक ३ वर्ष (ई० पू० १२७ से ई० पू० १२४ तक)।

७—घोष ३ वर्ष।

८—वज्रमित्र ९ वर्ष (ई० पू० १२४ से ई० पू० ११५ तक)।

९—समभाग या भगदत्त ३२ वर्ष (ई० पू० ११५ से ई० पू० ८३ तक)।

१०—देवभूमि (क्षेमभूमि) १० वर्ष (ई० पू० ८३ से ई० पू० ७३ तक)।

देवभूमि को व्यसन में आसक्त पाकर उसके मंत्री देवभूति ने मार कर कन्वराज स्थापित किया।

इस वंश में १० राजा हुये जिन्होंने सब मिल कर ११२ वर्ष राज किया।

उपसंहार (थ)

अयोध्या का वर्णन

हेमचन्द्राचार्य कृत त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र प्रथम पर्व (सर्ग २)
"आदीश्वरचरित्रं" से उद्धृत।

विनीता साध्वमी तेन विनीताख्यां प्रभोः पुरीम्।
निर्मातुं धीदमादिश्य मघवा त्रिदिवं ययौ ॥ ९११ ॥

द्वादशयोजनायामां नवयोजन-विस्तृताम्।
अयोध्येत्यपराभिख्यां विनीतां सोऽकरोत्पुरीम् ॥ ९१२ ॥

तां च निर्माय निर्मायः पूरयामास यक्षराट्।
अक्षय्यवस्त्रनेपथ्य-धन-धान्यैर्निरंतरम् ॥ ९१३ ॥

वज्रेंद्रनीलवैडूर्यहर्म्य-किर्मीररश्मिभिः।
भित्तिं विनापि खे तत्र चित्रकर्म विरच्यते ॥ ९१४ ॥

तत्रोच्चैः कांचनैर्हर्म्यैर्मेरुशैलशिरांस्यभिः।
पत्रालंबनलीलेव ध्वजव्याजाद्वितन्यते ॥ ९१५ ॥

तद्वप्रे दीप्तमाणिक्य-कपिशीर्षपरंपराः।
अयत्ना दर्शतां यान्ति चिरं खेचरयोषिताम् ॥ ९१६ ॥

तस्यां गृहांगणभुवि स्वस्तिकन्यस्तमौक्तिकैः।
स्वैरं कर्करिकक्रीमां कुरुते वालिकाजनः ॥ ९१७ ॥

तत्रोद्यानोच्चवृक्षाग्रस्खलत्यमानान्यहर्निशम्।
खेचरीणां विमानानि क्षणं यांति कुलायताम् ॥ ९१८ ॥

---

* इस ग्रन्थ को जैनधर्मप्रचारक सभा भावनगर ने प्रकाशित किया था।

तत्र दृष्ट्वाट्टहर्म्येषु रत्नराशीन् समुत्थितान्।
तद्वारककूटोऽयं तर्क्यंते रोहणाचलः ॥ ६१६ ॥

जलकेलिरतस्त्रीणां त्रुटितैर्हारमौक्तिकैः।
ताम्रपर्णीश्रियं तत्र दधते गृहदीर्घिकाः ॥ ६२० ॥

तत्रेभ्याः संति ते येषां कस्याप्येकतमस्य सः।
व्यवहर्तुं गतो मन्ये वणिक्पुत्रो धनाधिपः ॥ ६२१ ॥

नक्तमिंदुद्दृषद्भित्ति-मंदिरस्यंदिवारिभिः।
प्रशांतपांशवो रथ्याः क्रियंते तत्र सर्वतः ॥ ६२२ ॥

वापीकूपसरोलक्षैः सुधास्रोदरवारिभिः।
नागलोकं नवसुधाकुंभं परिबभूव सा ॥ ६२३ ॥

इतोऽस्य जम्बुद्वीपस्य द्वीपस्य भरते पुरी।
अस्ति नाम्ना विनीतेति शिरोमणिरिवावनेः ॥ १ ॥ पर्व २ सर्ग २।

उपसंहार (द)

अयोध्या का वर्णन

धनपालकृत तिलकमंजरी* से

अस्ति रम्यतानिरस्त-सकलसुरलोका स्वपदापहारशङ्कितशतक्रतु प्रार्थितेन शततमक्रतुवाञ्छाविच्छेदार्थमिव पार्थिवानामिक्ष्वाकूणामुत्पादिता प्रजापतिना, वृत्तोज्ज्वलवर्णशालिनी कर्णिकेवाम्भोरुहस्य मध्यभागमलंकृत्य स्थिता भारतवर्षस्य, तुषारधवलभित्तिना विशालवप्रेण परिगता प्राकारेण, विपुलसोपानसुगमावतारवापीशतसमाकुला, मनोरथानामपि दुर्विलङ्घ्येन प्लवमानकरिमकरकुम्भीरभीषणोर्मिणा जलप्रति बिम्बितप्राकारच्छलेन जलराशिशङ्कया मैनाकमन्वेष्टुमन्तः प्रविष्टहिमवतेव महता खातवलयेन वेष्टिता, पवनपटुचलितधवलध्वजकलापैर्जामदग्न्यमार्गणाहतक्रौञ्चाद्रिच्छिद्रैरिवोद्भ्रान्तराजहंसैराशानिर्गममार्गायमाणैश्चतुर्भिरत्युच्चैर्गोपुरैरुपेता, प्रांशुशिखराप्रज्वलत्कनककलशैः सुधापङ्कधवल प्राकारवलयितैरमरमन्दिरमण्डलैर्मण्डलित—भोगमध्यप्रवेशितोन्मणिफणा सहस्रं शेषाहिमुपहसद्भिरुद्भासितचत्वरा, त्वरापतच्छलविशरशारिणी सिक्तसान्द्रबालद्रुमैर्द्रुमतलनिषादिना परिश्रान्तपथिकलोकेन दिवसमाकर्ण्यमानमधुरतारघटीयन्त्रचीत्कारैः परित्यक्तसकलव्यापारेण पौरवनिता मुखार्थितदृष्टिना सविक्रियंप्रजल्पता पठता गायता च भुजंगजनसमाजेन क्षणमप्यमुच्यमानमनोभव भवभावनीभवनैः प्रतिदिवसमधिकाधिकोन्मीलभीलकान्तिभिः स्वसंततिप्रभवपार्थिवप्रीतये दिनकरेणेवाकृष्य संचार्यमाण सकलशार्वरीतिमिरैरमरकाननानुकारिभिरारामैः श्यामायमानपरिसरा, गिरिशिखरततिनिभसातकुम्भप्रासादमालाध्यासितोभयविभागैः स्फुट-

---

* इस ग्रन्थ को पं० भवदत्त शास्त्री और पं० काशिनाथ पांडुरंग परब ने संपादित किया। बम्बई के तुकाराम जावाजी ने प्रकाशित किया।

विभाव्यमान मरकतेन्द्रनीलवज्रवैडूर्यराशिभिश्चामीकराचलतटीव चण्डांशुरथचक्रमार्गैः पृथुलायतैर्विपणिपथैः प्रसधिता, धृतोद्धुरप्राकारपरिवेषैरभ्रंकष प्रतोलिभिरुत्तङ्गमकरतोरणावनद्धहरितचन्दनमालैर्दोलाविभूषिताङ्गणवेदिभिरश्रान्तकालागुरुधूपधूमाश्लेषभयपलायमानदन्तवलभिकभित्तिचित्रानिव विचित्रमयूखजालकमुचो माणिक्यजालकान् कलयद्भिरद्भुताकारैरनेकभूमिकाभ्राजिष्णुभिः सौधैः प्रवर्तिताविरतचान्द्रोदया प्रतिमहस्वच्छधवलायताभिर्दृग्भिरिव दिदृक्षारसेन वसुधया व्यापारिताभिः क्रीडासरसिभिः संविलता, मृदुपवनचलितमृद्वीकालतावलयेषु वियति विलसतामसितागुरुधूपधूमयोनीनामासारवारिणेवोपसीच्यमानेष्वाते नीलसुरभिषु गृहोपवनेषु वनितासखैः विलासिभिरनुभूयमानमधुपानोत्सवा, मद्यतकोशलविलासिनी नितम्बास्फालनस्फारितरङ्गया गृहीतसरलमृणालयष्टिभिः पूर्वार्णवविलीर्णैर्वृद्धकञ्चुकिभिरिव राजहंसैः क्षणमथमुक्तपार्श्वया कपिलकोपानलेन्धनीकृतसगरतनयस्वर्गवार्तामिव प्रष्टुं भागीरथीमुपस्थिया सरिता सरय्वाख्यया कृतपर्यन्तसख्या, सततगृहव्यापार निषण्णमानसाभिर्निसर्गतो गुरुवचनानुरागिणीभिरमुल्वणोज्ज्वलवेषाभिः स्वकुलाचारकौशलशालिनीभिः शालीनतया सुकुमारतया च कुचकुम्भयोरपि कदर्थ्यमानाभिरुद्वत्या मणिभूषणानामपि खिद्यमानाभिर्मुखरतया रतेष्वपि ताम्यन्तीभिर्षेया (जा) त्यपरिगृहेण स्वप्नेऽप्यलंघयन्तीभिर्द्वारतोरणमङ्गीकृत सतीव्रताभिरप्यसतीव्रताभिरलसाभिर्नितम्बभरवहने तुच्छाभिरुदरे तरलाभिश्चक्षुषि कुटिलाभिर्भ्रुवोरतृप्ताभिरङ्गशोभाया मुद्धताभिस्तारुण्ये कृतकुसङ्गाभिश्चरणयोर्न स्वभावे को ये ऽ प्यदृष्ट मुखविकाराभिर्व्यलीकेऽप्यनुज्झितविनयाभिः खेदेऽप्यखण्डितोचित प्रतिपत्तिभिः कलहेऽप्यनिष्ठुरभाषिणीभिः सकलपुरुषार्थसिद्धिभिरिव शरीरबद्धाभिः कुलप्रसूताभिरलंकृता वधूभिः, इतराभिरपि त्रिभुवनपताकायमानाभिः कुबेरपुरपुण्याङ्गनाभिरिव कृतपुण्यजनोचिताभिः पादशोभयापि न्यक्कृतपद्माभिरूरुश्रियापि लघूकृतरम्भास्तम्भाभिर्गीत्यापि

छायया सौभाग्यहेतोरुपासिताभिरिन्दुनापि प्रतिदिनं प्रतिपन्नकालन्तरेण प्रार्थ्यमानमुखकमलकान्तिभिर्मकरध्वजेनापि दर्शिताधिना लब्धहृदय—प्रवेशमहोत्सवाभिरप्रयुक्तयोगाभिरेकावयवप्रकटाननमरुतामपि गतिं स्तम्भयन्तीभिरव्यापारितमन्त्राभिः सकृदाह्वाननेन नरेन्द्राणामपि सर्वस्वमाकर्षयन्तीभिरसदोषधीपरिग्रहाभिरीषत्कटाक्षपातेनाचलानपि द्राव यन्तीभिः सुरतशिल्पप्रगल्भतावष्टम्भेन रूपमपि निरुपयोगमवगच्छन्तीभिस्तारुण्यमपि तृणलघुगणयन्तीभिर्विलासानपि हास्यकोटौ कलयन्तीभिराभरणसंभारमपि भारवमधारयन्तीभिः प्रसाधनाडम्बरमपि विडम्बनापक्षे स्थापयन्तीभिरुपचारमथाचारबुद्ध्या प्रपञ्चयन्तीभिः कैश्चिदधरैरिव शतशः खण्डितैरप्यखण्डितरागैरनिशमुपयुज्यमानवदननिश्वासपरिमलाभिरपरैस्तु चषकैरिव कदाचिद्दानप्रणयितामानीय प्रगुनैरप्रसन्नैरणन्मधुकरध्वनिना मन्दं मन्दं रणरणायमानैः कामिभिर शून्य मन्दिरद्वाराभिर्नवसुरतेषु बद्धरागाभिरपि नीचरतेष्वशक्ताभिर्लक्ष्मी मनोवृत्तिभिरिव पुरुषोत्तमगुणहार्याभिर्न पुनरेकान्ततोऽर्थानुरागिणीभिः संसारेऽपि सारताबुद्धिनिबन्धनभूताभिः कुलक्रमायतवैशिक कलाकलाप वैचक्षण्याभिः साक्षादिव कामसूत्र विद्याविभिलासिनीभिर्वितीर्ण त्रिभुवन–जिगीषुकुसुमसायकसहायका, अकलिताढ्या नाढ्यविवेकैरगृहीतपरिष्ठ-तापण्डितविभक्तिभिरनवबुद्धसाध्वसाधुविशेषैरनवधारितधार्मिकाधार्मिक पारीच्छत्तिभिः सर्वैरप्युदारविशेषैः सर्वैरपिच्छेकोक्तिकोविदैः सर्वैरपि परोपकारप्रवणैः सर्वैरपि सन्मार्गवर्त्तिभिः ज्ञातनिःशेषपुराणेतिहाससारैः दृष्टसकलकाव्यनाटकप्रबन्धैःपरिचितनिखिलाख्यायिकाख्यानव्याख्यानैः प्रमाणविद्भिरप्यप्रमाणविद्भिरधीतनीतिभिरप्यकुटिलैरभ्यस्तनाट्यशास्त्रैरप्यदर्शितभ्रूनेत्रविकारैः कामसूत्रपारगैरप्यविदितवैशिकैः सर्वभाषाविचक्षणैरप्यशिक्षितलाटोक्तिभिः सात्विकैरपि राजसभावाप्तख्यातिभिरोजस्विभिरपि प्रसन्नैः पूर्वाभिभाषिभिरुत्तरास्यलापनिपुणैः सकलरसभावनैः अविषादिभिः न्याय-

दर्शनानुरागिभिरपि न रौद्रैः परानुपहासिभिर्नर्मशीलैः सर्वस्य गुणग्राहिभिः संतुष्टैर्व्यसनेष्वपरित्यागिभिः सर्वदा संविभागपरैः परोपकारिभिरात्मलाभोद्यतैः कतिपयकलापरिग्रहं ग्रहपतिमप्युपहसद्भिर्मित्रमण्डल पराङ्मुखमनूरुमपि निरस्यद्भिर्लक्ष्मीप्राप्तये गाढधृतभूभृत्पादं वासुदेवमपि विलावयद्भिः स्नेहशून्यमानसं जिनमप्यवजानद्भिर्निवासिलोकैः संकला, विरचितालकेव मखानलधूमकोटिभिः स्पष्टिताञ्जनतिलकविन्दुरिव वालोद्यानैः आविष्कृतविलाससहासेव दन्तवलभीभिः आगृहीतदर्पणेव सरोभिः सकृतयुगेव सत्पुरुषव्यवहारैः स्वमकरध्वजराज्येव पुरन्ध्रिविव्वोकैः सब्रह्मलोकेव द्विजसमाजैः ससमुद्रमथनेव जनसंघातकलकलेनविततप्रभावर्षिभिराभरणपाषाणखण्डैरिव पाषण्डैर्मुषितकल्मषा, जयानुरागिभि रूपवनैरिव श्रोत्रियजनैः सच्छाया विचित्राकार वेदिभिरङ्गणैरिव नागरिकगणालंकृतगृहा, सवनराजिभिः सामस्वरैरिव क्रीडापर्वतकपरिसरैरानन्दितद्विजा, विश्वकर्मसहस्रैरिव निर्मितप्रासादा, लक्ष्मीसहस्रैरिव परिगृहीतगृहा, देवतासहस्रैरिवाधिष्ठितप्रदेशा; महापार्थिववरूथिनीवानेकरथ्यासंकुला, राज्यनीतिरिव सन्निप्रतिपाद्यमाना वार्ताधिगतार्था, अर्हद्दर्शनस्थितिरिव नैगमव्यवहारातिप्रलोका, रसातलविवक्षुरविरथचक्र भ्रान्तिरिव चीत्कार मुखरित महाकूपारघट्टा, सर्वाश्चर्यनिधानमुत्तरकौशलेष्वयोध्येति यथार्थाभिधाना नगरी । या सितांशुकरसंपर्काद परिस्फुटस्फटिकदोलासु बद्धासनैर्विलासिमिथुनैरवागाह्यमानगगनान्तरा यस्यां समन्तादन्तरिक्ष संचरत्खेचरमिथुनस्य शुचिप्रदोषेषु शोभामधरीचकार विद्याधरलोकस्य । यस्याश्च गगनशिखोल्लेखिना प्राकारशिखरेण स्खलितवर्मा प्रस्तुतचाटुरिव प्रत्यग्रवन्दनमाला श्यामलामधिगोपुरं विलम्बयामास वासरमुखेषु रविरथाश्वपङ्क्तिक्रमरण: । यस्यां च प्रियतमाभिसारप्रचलितानां पण्याङ्गनानामङ्गलावण्यसंवर्धिताभिराभरणरत्नांशुसंततिभिः स्तम्भिततिमिरोदया भवनदीर्घिकासरोज वन निद्राभिरन्वमीयन्त रजनीसमारम्भाः । या च दक्षिणानिलतरङ्गितानां

प्रतिभवनमुच्छ्रितानामनङ्गध्वजानामङ्गुलीविभ्रमाभिरालोहितांशुकवैजयन्तीभिः कृतमकरध्वजसोषमहापातकस्य शूलपाणेर्दत्तावकाशामलकापुरीमिव तर्जयन्ती मधुसमये संलक्ष्यते। यस्यां च मुदितगृहशिखण्डिकेकारवमुखरिताभिस्तरुणजलदपङ्क्तिभिः परिवारितप्रान्ताः सुप्रासादशिखरमालासु प्रावृषि कृतस्थितयो ग्रीष्मकालपरिभुक्तानामुपवनोपरुद्धपर्यन्तभुवामधस्तनभूमिकानां नोदकण्ठन्त सुकृतिनः। यस्यां च जलधरसमयनिर्धौतरेणुपटल निर्मलानामुदग्रसौधाग्रपद्मरागग्राव्णां प्रतिभाभिरनुरञ्जितः शरत्कालरजनीपौरजनीवदनपराजयलज्जया प्रतिपन्नकाषाय इव व्यराजत पार्वणो रजनीजानिः। यस्यां च तुषारसंपर्कपटुतरैस्तरुणीकुचोष्मभिरितस्ततस्ताड्यमाना हैमिनीष्वपि क्षणादास्वमन्दीकृतचन्दनाङ्गरागगौरवमदत्ताङ्गारशकटिका सेवादरम सुष्टकेलिवापिका पङ्कजवनमधुप्रभञ्जनाः। यस्यां च वीथीगृहाणां राजपथातिक्रमः, दोलाक्रीडासु दिगन्तरयात्रा, कुमुदखण्डानां राज्ञा सर्वस्वापहरणमनङ्गमार्गणानां मर्मट्टघनव्यसनं वैष्णवानां कृष्णवर्त्मनि प्रवेशः, सूर्योपलानां मित्रोदयेन ज्वलनम्, वैशेषिकमते द्रव्यस्य कूटस्थवेत्यता। यत्र च भोगस्पृहया दानप्रवृत्तयः, दुरितप्रशान्तये शान्तिककर्मणि भयेन प्रणतयः, कार्यापेक्षयोपचारकरणानि, अतृप्त्या द्रविणोपार्जनानि, विनयाधानाय वृद्धोपास्तयः पुंसामासन्॥

उपसंहार (ध)

ओयूटो (अयोध्या) *

इस राज्य का क्षेत्रफल ५००० ली और राजधानी का क्षेत्रफल २० ली है। यहां पर अन्न बहुत उत्पन्न होता है तथा सब प्रकार के फल-फूलों की अधिकता है। प्रकृति कोमल तथा सह्य और मनुष्यों का आचरण शुद्ध और सुशील है। यहां के लोग धार्मिक कृत्य से बड़ा प्रेम रखते हैं, तथा विद्याभ्यास में विशेष परिश्रम करते हैं। सम्पूर्ण देश भर में कोई १०० संघाराम और ३०० साधु हैं, जो हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदायों की पुस्तकों का अध्ययन करते हैं। कोई दस देवमन्दिर हैं जिनमें अनेक पंथों के अनुयायी (बौद्धधर्म के विरोधी) निवास करते हैं, परन्तु उनकी संख्या थोड़ी है।

राजधानी में एक प्राचीन संघाराम है। यह वह स्थान है जहां पर वसुबंधु बोधिसत्व ने कई वर्ष के कठिन परिश्रम से अनेक शास्त्र, हीनयान और महायान दोनों सम्प्रदाय-विषयक निर्माण किये थे। इसके पास ही कुछ उजड़ी पुजड़ी दीवारें अब तक वर्तमान हैं। ये दीवारें उस मकान की हैं जिसमें वसुवन्धु बोधिसत्व ने धर्म के सिद्धान्तों को प्रकट किया था तथा अनेक देश के राजाओं, बड़े आदमियों, श्रमणों और ब्राह्मणों के उपकार के निमित्त धर्मोपदेश किया था।

नगर के उत्तर ४० ली दूर गङ्गा† के किनारे एक बड़ा संघाराम है जिसके भीतर अशोक राजा का बनवाया हुआ एक स्तूप २०० फीट ऊंचा है। यह वह स्थान है जहां पर तथागत भगवान् ने देवसमाज के

---

* इंडियन प्रेस प्रकाशित "हुआन च्वांग" से प्रेस के अध्यक्ष की आज्ञा से उद्धृत।

† यह भ्रम है। सरयू होना चाहिये जिसे वैष्णव रामगंगा कहते हैं।

उपकार के लिये तीन मास तक धर्म के उत्तमोत्तम सिद्धान्तों का विवेचन किया था। स्मारकस्वरूप स्तूप के निकट बहुत से चिह्न गत चारों बुद्धों के उठने बैठने आदि के पाये जाते हैं।

संघाराम के पश्चिम ४-५ ली दूर एक स्तूप है जिसमें तथागत भगवान् के नख और बाल रक्खे हैं। इस स्तूप के उत्तर एक संघाराम उजड़ा हुआ पड़ा है। इस स्थान पर श्रीलब्ध शास्त्री ने सौत्रान्तिक सम्प्रदायसम्बन्धी विभाषाशास्त्र का निर्माण किया था।

नगर के दक्षिण-पश्चिम ५-६ ली की दूरी पर एक बड़ी आम्र-वाटिका में एक पुराना संघाराम है। यह वह स्थान है जहां असङ्ग बोधिसत्व ने विद्याध्ययन किया था। फिर भी उसका अध्ययन जब परिपूर्णता को नहीं पहुँचा तब वह रात्रि में मैत्रेय बोधिसत्व के स्थान को जो स्वर्ग में था, गया और वहां पर योगधर्म शास्त्र, महायान सूत्रालङ्कार टीका, मध्यान्त विभङ्ग शास्त्र आदि को उसने प्राप्त किया और अपने गूढ़ सिद्धान्तों को जो अध्ययन से प्राप्त हुये थे समाज में प्रकट किया।

आम्रवाटिका से पश्चिमोत्तर दिशा में लगभग १०० क़दम की दूरी पर एक स्तूप है जिसमें तथागत भगवान् के नख और बाल रक्खे हैं। इसके निकट ही कुछ पुरानी दीवारों की बुनियाद है। यह वह स्थान है जहां पर वसुबन्धु बोधिसत्व तुषितस्वर्ग से उतर कर असङ्ग बोधिसत्व को मिला था। असङ्ग बोधिसत्व गन्धार प्रदेश का निवासी था। बुद्ध भगवान् के शरीरावसान के पांच सौ वर्ष पीछे इसका जन्म हुआ था। तथा अपनी अनुपम प्रतिभा के बल से वह बहुत शीघ्र बौद्ध सिद्धान्तों में ज्ञानवान हो गया था। प्रथम यह मही-शासक सम्प्रदाय का सुप्रसिद्ध अनुयायी था परन्तु पीछे से इसका विचार बदल गया और यह महायान समुदाय का अनुगामी बन गया। इसका भाई वसुबन्धु सर्वास्तिवाद समुदाय का सूक्ष्मबुद्धि भक्त, दृढ़-

बिचार और अत्तम प्रतिभा के लिये उसकी बहुत ख्याति थी। असङ्ग का शिष्य बुद्धसिंह जिस प्रकार बड़ा बुद्धिमान और सुप्रसिद्ध हुआ उसी प्रकार उसके गुप्त और उत्तम चरित्रों की थाह भी किसी को नहीं मिली।

ये दोनों या तीनों महात्मा प्रायः आपस में कहा करते थे कि हम सब लोग अपने चरित्रों को इस प्रकार सुधार रहे हैं कि जिसमें मृत्यु के बाद मैत्रेय भगवान के सामने बैठ सकें। हम में से जो कोई प्रथम मृत्यु को प्राप्त हो कर इस अवस्था को पहुंचे (अर्थात् मैत्रेय के स्वर्ग में जन्म पावे) वह एक बार वहां से लौट कर अवश्य सूचना देवेगा कि हम उसका वहां पहुँचा मालूम कर सकें।

सब से पहिले बुद्धसिंह का देहान्त हुआ। तीन वर्ष तक उसका कुछ समाचार किसी को मालूम नहीं हुआ। इतने में वसुबन्धु बोधि-सत्व भी स्वर्गगामी हो गया। छः मास इसको भी व्यतीत हो गये परन्तु इसका भी कोई समाचार किसी को विदित नहीं हुआ। जिन लोगों का विश्वास नहीं था वह अनेक प्रकार की बातें बना कर हंसी उड़ाने लगे कि वसुबन्धु और बुद्धसिंह का जन्म नीच योनि में हो गया होगा इसी से कुछ दैवी चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता।

एक समय असङ्ग बोधिसत्व रात्रि के प्रथम भाग में अपने शिष्यों को बता रहे थे कि समाधि का प्रभाव अन्य पुरुषों पर किस प्रकार होता है, उसी समय अकस्मात् दीपक की ज्योति ठंढी हो गई और उसके स्थान में बड़ा भारी प्रकाश फैल गया। फिर ऋषिदेव आकाश से नीचे उतरा और मकान की सीढ़ियों पर चढ़ कर असङ्ग के निकट आया और प्रणाम करने लगा। असङ्ग बोधिसत्व ने बड़े प्रेम से पूछा कि तुम्हारे आने में क्यों देर हुई? तुम्हारा अब नाम क्या है? उत्तर में उसने कहा "मरते ही मैं तुषित स्वर्ग में मैत्रेय भगवान् के भीतरी

समाज में पहुँचा और वहां एक कमल के फूल में उत्पन्न हुआ। शीघ्र ही कमल पुष्प के खोले जाने पर मैत्रेय ने बड़े शब्द से मुझसे कहा, "ऐ महाविद्वान ! स्वागत, हे महाविद्वान स्वागत ! इसके उपरान्त मैंने प्रदक्षिणा कर के बड़ी भक्ति से उनको प्रणाम किया और फिर अपना वृत्तान्त कहने के लिये सीधा यहां चला आया। असङ्ग ने पूछा "आर बुद्धसिंह कहां है ?" उसने उत्तर दिया "जब मैं मैत्रेय भगवान की प्रदक्षिणा कर रहा था उस समय मैंने। उसको बाहिरी भीड़ में देखा था, वह सुख और आनन्द में लिप्त था। उसने मेरी ओर देखा तक नहीं फिर क्या उम्मेद की जा सकती है कि वह यहां तक अपना हाल कहने आवेगा ?" असङ्ग ने कहा "यह तो तय हो गया, परन्तु अब यह बताओ कि मैत्रेय भगवान् का स्वरूप कैसा है ? और कौन से धर्म की शिक्षा वह देते हैं।" उसने उत्तर दिया कि "जिह्वा आर शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं है जो उनकी सुन्दरता का बखान किया जा सके। मैत्रेय भगवान् क्या धर्म सिखाते हैं उसके विषय में इतना ही यथेष्ट है कि उनके सिद्धान्त हम लोगों से भिन्न नहीं हैं। बोधिसत्व की सुस्पष्ट बचनावली ऐसी शुद्ध कोमल और मधुर है जिसके सुनने में कभी थकावट नहीं होती और न सुननेवाले की कभी तृप्ति ही होती है।"

असङ्ग बोधिसत्व के भग्नस्थान से लगभग ४० ली उत्तर-पश्चिम चल कर हम एक प्राचीन संघाराम में पहुँचे जिसके उत्तर तरफ़ गंगा नदी बहती है। इसके भीतरी भाग में ईंटों का बना हुआ एक स्तूप लगभग १०० फीट ऊँचा खड़ा है। यही स्थान है जहां पर वसुबन्धु बोधिसत्व को सर्वप्रथम महायान सम्प्रदाय के सिद्धान्तों के अध्ययन करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई थी। उत्तरी भारत से चल कर जिस समय वसुबन्धु इस स्थान पर पहुँचा उस समय असङ्ग बोधिसत्व ने अपने अनुयायियों को उससे मिलने के लिये भेजा और वे लोग इस

स्थान पर आकर उससे मिले। असङ्ग का शिष्य जो बोधिसत्व के द्वार के बाहर लेटा था, वह रात्रि के पिछले पहर में दशभूमि सूत्र का पाठ करने लगा। वसुबन्धु उसको सुन कर और उसके अर्थ को समझ कर बहुत विस्मित हो गया। उसने बड़े शोक से कहा कि यह उत्तम और शुद्ध सिद्धान्त यदि पहले से मेरे कान में पड़ा होता तो मैं महायान सम्प्रदाय की निन्दा कर के अपनी जिह्वा को क्यों कलङ्कित कर पाप का भागी बनता? इस प्रकार शोक करते हुये उसने कहा कि अब मैं अपनी जिह्वा को काट डालूंगा। जिस समय छुरी लेकर वह जिह्वा काटने के लिये उद्यत हुआ उसी समय उसने देखा कि असङ्ग बोधिसत्व उसके सामने खड़ा है और कहता है कि "वास्तव में महायान-सम्प्रदाय के सिद्धान्त बहुत शुद्ध और परिपूर्ण हैं; सब बुद्धदेवों ने जिस प्रकार इसकी प्रशंसा की है उसी प्रकार सब महात्माओं ने इसको परिवर्द्धित किया है। मैं तुमको इसके सिद्धान्त सिखाऊंगा। परन्तु तुम खुद इसके तत्व को अब समझ गये हो और जब इसको समझ गये और इसके महत्व को मान गये तब क्या कारण है कि बुद्ध भगवान की पुनीत शिक्षा के प्राप्त होने पर भी तुम अपनी जिह्वा को काटना चाहते हो। इससे कुछ लाभ नहीं है ऐसा मत करो। यदि तुमको पछतावा है कि तुमने महायान सम्प्रदाय की निन्दा क्यों की तो तुम अब उसी ज़बान से उसकी प्रशंसा भी कर सकते हो। अपने व्यवहार को बदल दो और नवीन ढंग से काम करो यही एक बात तुम्हारे करने योग्य है। अपने मुख को बन्द कर लेने से अथवा शाब्दिक शक्ति को रोक देने से कुछ लाभ नहीं होगा।" यह कहकर वह अन्तर्ध्यान हो गया।

वसुबन्धु ने उसके बचनों की प्रतिष्ठा करके अपनी जिह्वा काटने का विचार परित्याग कर दिया और दूसरे ही दिन से असङ्ग बोधिसत्व के पास जाकर महायान सम्प्रदाय के उपदेशों का अध्ययन करने लगा। इसके सिद्धान्तों को भली भांति मनन करके उसने एक सौ से अधिक

सूत्र महायान सम्प्रदाय की पुष्टि के लिये लिखे जो कि बहुत प्रसिद्ध है और सर्वत्र प्रचलित हैं।

यहां से पूर्व दिशा में ३०० ली चलकर गंगा के उत्तरी किनारे पर हम 'आयोमुखी' को पंहुचे ।

उपसंहार (न)

पिसोकिया (विशाखा)

इस राज्य का क्षेत्रफल ४००० ली और राजधानी का १६ ली है। अन्नादि इस देश में जिस प्रकार अधिक होते हैं उसी प्रकार फल फूल की भी बहुतायत है। प्रकृति कोमल और उत्तम है तथा मनुष्य शुद्ध और धर्मिष्ठ हैं। ये लोग विद्याभ्यास करने में परिश्रमी और धार्मिक कामों के सम्पादन करने में बिना विलम्ब योग देनेवाले होते हैं। कोई २० संघाराम ३००० सन्यासियों के सहित हैं जो हीनयान सम्प्रदाय की सम्मतीय संस्था का प्रतिपालन करते हैं। कोई पचास देवमन्दिर और अगणित विरोधी उनके उपासक हैं।

नगर के दक्षिण में सड़क के बांई ओर एक बड़ा संघाराम है। इस स्थान में देवाश्रम अरहन् ने "शीह शिननल" नामक शास्त्र लिखकर इस बात का प्रतिवाद किया है कि व्यक्तिरूप में अहम् कुछ नहीं है। गोप अरहट ने भी इस स्थान पर "शिङ्ग कियोइउशीलन" नामक ग्रंथ को बना कर इस बात का प्रतिवाद किया है कि व्यक्तिविशेष रूप में अहम् ही सब कुछ है। इन सिद्धान्तों ने अनेक विवादग्रस्त विषयों को खड़ा कर दिया है। धर्मपाल बोधिसत्व ने भी यहां पर सात दिन में हीनयान सम्प्रदाय के एक सौ विद्वानों को परास्त किया था।

संघाराम के निकट एक स्तूप २०० फीट ऊँचा राजा अशोक का बनवाया हुआ है। प्राचीन काल में बुद्धदेव ने छः वर्ष तक यहां निवास किया था और धर्मोपदेश करके अनेक मनुष्यों को अपना अनुयायी बनाया था। स्तूप के निकट ही एक अद्भुत वृक्ष ६-७ फीट ऊंचा लगा हुआ है। कितने ही वर्ष व्यतीत हो गये परन्तु यह ज्यों का त्यों बना हुआ है, न घटता है और न बढ़ता है। किसी समय में बुद्ध

दव ने अपने दांतों को स्वच्छ करके दातुन को फेंक दिया था। वह दातुन जम गई और उसमें बहुत से पत्ते निकल आये, वही यह वृत्त है। ब्राह्मणों और विरोधियों ने अनेक बार धावा कर के इस वृत्त को काट डाला परन्तु यह फिर पहिले के समान पल्लवित हो गया।

इस स्थान के निकट ही चारों बुद्धों के आने जाने के चिह्न पाये जाते हैं तथा नख और बालों सहित एक स्तूप भी है। पुनीत स्थान यहां पर एक के बाद एक बहुत फैले चले गये हैं तथा जंगल और झीलें भी बहुतायत से हैं।

यहां के पूर्वोत्तर ५०० ली चल कर हम "शीसाहलो फुसिह्ताई" राज्य में पहुँचे।

उपसंहार (५)

गढ़वा का शिलालेख

गढ़वा प्रयागराज से २५ मील दक्षिण शिवराजपूर स्टेशन से ४ मील पश्चिमोत्तर है। इस में कई शिलालेख हैं। नीचे लिखा हुआ शिलालेख मन्दिर के खंभे पर खुदा है।

श्री नवग्राम भट्टग्रामीय श्रीवास्तव्य कायस्थ
ठक्कुर श्री कुन्दपालपुत्र ठक्कुर श्री रणपालस्य
मूर्तिः गणित कारोयं संवत् ११९९

यह मूर्ति नवग्राम भट्टग्राम के रहनेवाले श्रीवास्तव्य कायस्थ ठक्कुर श्री कुन्दपाल के पुत्र ठक्कुर श्री रणपाल की है। यह गणितकार थे संवत ११९९।

इससे विदित है कि यह मन्दिर ठाकुर रणपाल श्रीवास्तव्य का बनवाया हुआ है। भट्टग्राम कदाचित् आजकल का बरगढ़ हो जो यहां से १½ मील उत्तर है।

मेवहड़ का शिलालेख

मेवहड़ भी इसी जिले में कोसम (पुरानी कौशाम्बी) से सात मील है। इसमें मन्दिर के सामने पत्थर का चौखट पड़ा था जिसपर यह लेख खुदा हुआ है :—

ॐ परमभट्टारकेत्यादि राजावली पञ्चतयोपेताश्वपति गजपति नरपति राजत्रयाधिपति विविधि (विचारवाचस्पति) श्री मज्जयच्चन्द्रराज्ये संवत् १२४५ अद्येह कौशाम्बपत्तलायां मेहवड़ ग्राम वास्तोक श्रीवास्तव्य ठक्कुर . . . (सि) द्धेश्वरस्य प्रासादमकारयत।

ओम् परम भट्टारक इत्यादि पांच राजावली युक्त अश्वपति गजपति नरपति, तीन राज्यों के स्वामी नाना प्रकार की विद्या विचार के वाचस्पति श्रीमान् जयचन्द्र के राज्य में कौशाम्बी पत्तला (परगने) के मेवहड़ गावँ के रहनेवाले श्रीवास्तव्य ठक्कुर . . . ने सिद्धेश्वर का मन्दिर बनवाया।"

उपसंहार (फ)

बूढेदाने के चौधरी

एन० डब्लु० पी० गजेटियर (N.W.P. Gazetteer) में लिखा है कि सम्वत १२४० (ई० ११८६) में अयोध्या से उदयकरण श्रीवास्तव्य, महाराज पृथिवीराज के दर्बार में गये। वहां उन्होंने बड़ी वीरता दिखाई। महाराज ने उन्हें मेवजाति के सर करने को फफूंद भेज दिया। मेवों के परास्त होने पर सं० १२४२ में उनको पचीस हज़ार की जागीर की सनद और चौधरी की उपाधि दी गई।

शब्दानुक्रमणिका

आ

इ

ई

उ

थ

द

न

भ

म

ल

स

ह

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१६	जैसे	जैसी
४	६	के	की
६	६	में।	में,
,,	१७	ननृतुः मुदा	ननृतुर्मुदा
,,	२१	निश्चित है	निश्चित नहीं है
७	४	ने का	ने
,,	,,	कोशल	कोशल का
८	१३	राजाओं	राजाओं के
,,	२२	(ओकाकु इक्ष्वाकु)	ओकाकु (इक्ष्वाकु)
१७	१	प्रचीन	प्राचीन
,,	६	रुमिने दई	रुम्मिनदेई
,,	११	कुशीनगर	कुशिनगर
,,	२३	मिसरिख	मिसरिख
१८	२४	हमारी छपाई	हमारे छपाये
२१	१५	रामायणी	रामायण
,,	१६	से*	से
२२	५	कनिघंम	कनिंघम
२६	५	आदि	आदि की
३२	८	उसे	इसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४	७	अभिसारिकार	अभिसारिका
,,	२१	त्रिष्टष्टि शलाका	त्रिषष्ठिशलाका
३५	नोट की पहली पंक्ति	लङ्का	दक्षिण की एक नदी
३७	१०	रूढिरथप्स्या	रूढिरप्सस्या
३९	३	वृहद्दल	वृहद्दल
४२	१७	आर	और
५४	नोट में	मामवेन्द्रेण	मानवेन्द्रेण
५९	११	सरस्वतीः	सरस्वती
,,	१२	रायो	रापो
,,	,,	घृतअत	घृतवत्
६०	१६	पक्षेषु	यक्षेषु
,,	१७	पूर्वं	पूर्व्यं
,,	२१	विधातुना	त्रिधातुना
,,	,,	शर्मेणा	शर्मेणा
६५	१८	बाहु	वाहु
७६	६	नाम्रा	नाम्ना
७७	६	विम्हामणि	चिन्तामणि
८२	नोट में	दिशाऐं	दिशाएँ
,,	,,	ककुंदं	ककुदं
८३	१५	(वंशावली उपसंहार से उद्धृत)	
,,	नोट में	लगा	लग
८५	६	मसुकुन्द	मुचकुन्द
९१	नोट में	(घ)	(ङ)
९२	६	और	और वह
९३	२०	कोइ	कोई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४	१४	यवनो	यवनों
,,	२१	विद्रर्भराज	विद्रर्भराज की
,,	नोट में	कार्तवीर्य	कार्तवीर्य
६६	६	उल्लंघित	उल्लंघित
,,	१७	पराक्रमा थ	पराक्रमी था
६७	४	थी	था
९८	१५, १८, २१	कल्माषद्	कल्माषपाद
,,	२२	इसके	इससे
९९	३	बनाकर	बनकर
,,	११	विष्णु, पुराण	विष्णुपुराण
,,	१५	पीढो	पीढी
१००	१२	के	का
,,	२३	पारसी	पारसीक
,,	,,	संकेत	संकेतन
,,	२५	(क)	(ख)
१०१	५	करने के	करने की
,,	२६	भी	×
१०३	३	चित्रकोट	चित्रकूट
१०४	१३	जैमिनी	जैमिनि
१०५	८	तीर्थकर	तीर्थंकर
१०६	२	ओर	और
,,	नोट	स्थाम	स्याम
१०७	१	सातवाँ अध्याय	×
१०८	२४	पुष्पमित्र	पुष्यमित्र
,,	२६	,,	,,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०६	६	समृद्धि	समृद्ध
,,	१८	झूटे	झूठे
,,	नोट में	पुष्पमित्र	पुष्यमित्र
११०	१५	७	६
१११	४	पर्व	पूर्व
११४	१०	क्रौअ	क्रौञ्च
,,	२१	में	ने
११८	२१	फ़ाइहान	फ़ाहियान
,,	,,	हुआन	ह्वान
१२१	१४	नार्भ	नाभ
,,	२२	आधीनता	अधीनता
,,	२४	।"	।
१२२	८	व्यापारी	व्यापारियों
,,	,,	लोग	लोगों
१२३	१६	वर्षिका	वार्षिका
१२४	८	शुद्धोधन	शुद्धोदन
१२७	२१	बात यह है	बात है
,,	२५	उठ	उठा
१२९	२३	स्वाग	स्वांग
१३३	४	व्योपार	व्यौपार
,,	नोट में	पश्य	पश्यन्
,,	,,	तोथे	तीर्थे
,,	,,	गजसेसुत	गजसेतु
,,	,,	प्रतीपं	प्रतीप
१३४	१	इन	उन

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२४	उज्जयिना	उज्जयिनी
१३५	८	शटद्	शब्द
१३६	१	कहने	करने
,,	१०	मालविका	मालविकाग्निमित्र
,,	१८	चारण	चरण
१४०	नोट में	आसफ़द्दौला	आसिफ़ुद्दौला
१४१	५	शिलालेखा	शिलालेख में
,,	१६	लिया ।	लिया
१४२	७	राजत्रपाधिपति	राजत्रयाधिपति
१४४	१०	इन	इस
,,	२१	हैं	है
१४५	७	।	×
,,	८	शिर	सिर
,,	६	के	को
,,	१८	में	ने
१४६	७	आधीन	अधीन
,,	६	ग़ारी	ग़ोरी
,,	७	आधीन	अधीन
,,	६	आधीनता	अधीनता
,,	१२	आधीन	अधीन
,,	१४	शाहजादा	शाहज़ादा
१४८	१८	था	था †
१४६	३	❀	‖
,,	नोट	पहिला नोट	यह नोट पृ० १४८ के नीचे आना चाहिये ।
१५०	नोट	दोबारा छप गया है	

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५७	२५	पर	पर वह
१५८	६	गोशाई	गोसाईं
,,	९	,,	,,
,,	२३	महम्मद	मुहम्मद
१५९	१०	,,	,,
१६०	११	लिया	लिया गया
,,	२४	का	की
१६४	३	प्रमा	प्रभा
१६६	१	बसु	वसु
१६८	१९	बिड्हल	बिठ्हल
,,	२३	इन्छा	इच्छा
१७०	८	बखान	बखानने
१७१	१२	इंच्छासिंह	इंछासिंह
१७२	१२	मुहम्मद अलीशाह	मुहम्मद शाह
,,	२५	बादशाही	"बादशाही
१७३	७	भाईयों	भाइयों
१७४	२३	वाज़िदअली	वाजिदअली
१७५	१८	हो।	हो,
१६६	१२	के के	के
,,	१४	घाघरे	घाघरा
,,	१५	मांझा	मांझे
,,	२०	वक़ील	वकील
१७७	११	जी।	जी,
१७९	८	इंच्छासिंह	इंछासिंह
१८०	३	मुसलमान	मुसलमानी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२४	हैं।	हैं,
१८२	३	चालूक्य	चालुक्य
,,	६	किया	किया गया
,,	१७	नारायस्य	नारायणस्य
१८८	२४	सुमति	सुमति ने
१६१	१७	का	को
१६२	८	मध्यन्ते	मध्यन्ते
१६८	३	सुमेरू	सुमेरु
११६	६	आधीनता	अधीनता
,,	१२	आधीन	अधीन
२००	३	हैं।	हैं
,,	१६	इद्रावती	इन्द्रावती
,,	१६	आधीन	अधीन
२०२	४	,,	,,
,,	६	अन्तर्गति	अन्तर्गत
,,	७	आधीन	अधीन
,,	१६	गय	गये
२११	४	ही	ही
२१२	२३	टामिल	टामील
,,	२२	हनुमन्त	हनूमन्त
२१८	नोट में	जयसवाल	जायसवाल
२२०	नोट में	राधाओं	राजाओं
२२१	२	समकालीन	समकालीन था
२२१	६	अपन	अपना
,,	८	पैत्रिक	पैतृक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१३	कौशकी	कौशिकी
२३९	नोट	भगास्सेवृत्त	भर्गोवृत्त
२४४	नोट में	ठुआन	ह्वान
२४५	२१	पाच	पाँच
२४६	१०	उसका	उसको
२४७	६	आर	और
२४७	७	मैंने ।	मैंने
,,	१४	आर	और
२४८	हेडिङ्ग	इलिहाल	इतिहास
२४६	,,	योयूटो	ओयूटो
,,	१	है	हैं
२५०	११	सड़क के	सड़क की
२५१	सब से ऊपर	विाखा	विशाखा
२५२	८	गणित कारोयं	गणितकारोयं
,,	२२	श्नीवास्तव्य	श्रीवास्तव्य
,,	२५	राज्य में	राज्य में, सं० १२४५ में